

श्रीहरि:

श्रीमदानन्दरामायणस्थविषयानुक्रमणिका

विषय

सारकाण्ड

प्रथम सर्ग

मङ्गलाचरण

रघुवंशकी संक्षिप्त वंशावली

रावणका ब्रह्मासे अपने भरणका हेतु पूछना, ब्रह्माका रामके हाथों रावणके भरणका भविष्य बतलाना और रावणका कौसल्याको सन्दूकमें बंद करके समुद्रनिवासी तिमिगलको सौंपना

महाराज दशरथके साथ कौसल्याका गांधवं विवाह

दशरथजीका सुमित्रा-कैकेयीके साथ विवाह, महाराज दशरथका देव-दानवयुद्धमें जाना

उस युद्धमें कैकेयीका रथकी टूटी धूरीमें अपना हाथ लगाकर राजा दशरथके प्राण बचाना, जिससे दशरथजीका कैकेयीको दो वरदान देना तथा अयोध्याको सकुशल लौटना

राजा दशरथ द्वारा श्रवणका वध और श्रवणके अंधे माता-पिताका शाप देना

ऋष्यशृङ्ग द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न होना और अग्निका प्रकट होकर हवि देना

द्वितीय सर्ग

पृथ्वीका दुःखित होकर देवताओंके पास जाना और सब देवताओंका क्षीरसागर जाकर विष्णुभगवान्मी स्तुति करना और भगवान्मी आकाशवाणी सुनना, राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका जन्म और उन पुत्रोंकी बाल-लीला

गुरु वसिष्ठका रामादि चारों माइयोंको शास्त्रीय शिक्षा देना

तृतीय सर्ग

महामुनि विश्वामित्रका राजा दशरथकी समामें जाकर यज्ञरक्षार्थ राम-लक्ष्मणको माँगना, मार्गमें विश्वामित्रका दोनों बालकोंको शस्त्रास्त्रको शिक्षा देना और श्रीरामके हाथों ताङुकावध

प्रथम विषय

१	राम-लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्रका जनक-पुरको प्रस्थान और बह्ल्योद्वार	पृष्ठ ११
२	रामके आगमनसे जनकपुरनिवासिनी लल-नाभोंका हृष्टलासु	१३
३	राजा जनक द्वारा अपनी प्रतिज्ञाकी घोषणा	१४
४	रावण द्वारा घनुष उठानेका प्रयास और उसमें विफलता, समामें रामका आगमन	१५
५	सीताका रामको देखना और मुख्य होकर मन ही मन देवताओंसे प्रार्थना करना	१७
६	रामके हाथों शिवघनुष लूटना	१८
७	राजा जनकके आज्ञानुसार सीताका राजसमामें आना और रामके गलेमें वरमाला डालना	१९
८	राजा जनकका महाराज दशरथके पास निमंत्रण भेजना, रामादि चारों भ्रताओंके विवाहका निश्चय और सोताके जन्मका वृत्तान्त	२१
९	राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका क्रमशः सीता-उमिला-माण्डवी और श्रुतकीर्तिके साथ विवाह और एक मास बाद महाराज दशरथका अयोध्याको प्रस्थान	२०
१०	मार्गमें राम-परशुरामका साक्षात्कार	३१
११	राम द्वारा परशुरामका गर्वमञ्जन और परशुराम-का रामको आत्मकथा सुनाना	३२
१२	महाराज दशरथका अयोध्यामें पहुँचना और उत्सव मनाना	३३
	चतुर्थ सर्ग	
१३	दीपावलीके अवसरपर पुनः राजा जनकका महाराज दशरथको बुलाना और तदनुसार उनका प्रस्थान	३४
१४	जनकपुरमें राजा दशरथका सत्कार और जनक-पुरसे लौटते समय रास्तेमें उनको बहुतेरे बेरी राजाओंका घेरना	३५
१५	रामका उन राजाओंके साथ और युद्ध और भरतका मूर्छित होना	३६
१६	रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणका मुद्रल मुनिके आव्रम्ममें सञ्जीवनों बूटों लेने जाना और आश्रमवासियों द्वारा उपस्थित की गयी	३७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
बाधाओंको दूर करके हठात् संजीवनी लाकर भरतके जीवित करना	२७	सप्तम सर्ग	६२
महाराज दशरथका मुनि मुद्रलसे रामके मविष्यका प्रश्न और उसका संतोषजनक उत्तर पाना	३८	रामके द्वारा विराघका वध सुतीष्णके आश्रमपर रामका जाना और वहाँसे बगस्त्यके आश्रमपर होते हुए पञ्चवटी पहुँचना, वहाँ जटायुसे मिलन और लक्ष्मणके हाथों सूर्पणखाके पुत्र साम्बका मरण	६३
वृदाका वृत्तांत और उसके द्वारा विष्णु भगवान्- के शापित होनेका इतिहास	३६	लक्ष्मणका सूर्पणखाके नाक-कान काटना	६४
सीराष्ट्रके एक भिक्षु ब्राह्मण तथा उसको स्त्री कलहाका उपाख्यान	४१	रामके हाथों खरदूषण-त्रिशिरा और उनकी बोदह हजार राक्षसों सेनाका निधन तथा सूर्पणखाका लंकामें रावणके पास जाना	६५
पञ्चम सर्ग		सप्तम सर्ग	
घमंदत्त विप्र द्वारा कलहाका उद्धार	४५	सीताके अनुरोधसे रामका मृग मारीचके वधको जाना और रावण द्वारा सीताका हरण	६७
रामका सीताके साथ अयोध्यामें सानन्द निवास	४८	जटायु-रावणयुद्ध, पञ्चवटीकी कुछ विशेष कथाएँ	६८
रामकी संक्षिप्त दिनचर्या	४९	राम-लक्ष्मणका लौटकर आश्रम पहुँचना, वहाँ मरणोन्मुख जटायुसे रावण द्वारा सीताहरणका वृत्तांत सुनना और रामका मृत जटायुको अपने हाथों दाहक्रिया करना	६९
महाराज दशरथका रामसे ज्ञानोपदेश सुनाने की प्रार्थना करना और रामका ज्ञानोपदेश देना	५१	सीताको व्यग्रमावस स्खोजते हुए रामको देखकर पांचतोका वहाँ पहुँचना और उनके ईश्वरत्वकी परीक्षा करना, कवन्धवध और कवन्धको आत्मकथा	७१
षष्ठि सर्ग		रामका शबरीके आश्रमपर पहुँचना और शबरीको मुक्ति प्राप्त होना, वहाँसे रामका सम्पासरोवर जाना	७१
भारदका रामको देवताओंका संदेश सुनाना	५२	अष्टम सर्ग	
राम-सीताका परस्पर वनगमनसम्बन्धी परामर्श	५४	राम-सुग्रीवको मित्रता और सुग्रीवका रामको अपना दुःख सुनाना	७२
रामके राजथाभिषेकको तैयारी, गुह वसिष्ठ- का रामके महलोंमें जाना और उपदेश देना, आग्निषेककी तैयारी देखकर मन्त्रराका दुःखित होना	५५	वालि-सुग्रीवयुद्ध और रामके हाथों वालिका मरण तथा रामका वालिको वरदान	७५
मन्त्रराका केकेयीके पास जाकर उसे उत्ते- जित करना और धरोहरस्वरूप रक्षे दोनों वरदान माँगनेको प्रेरित करना, तदनुसार केकेयीका कोपमवनप्रवेश, राजा दशरथका उसके पास पहुँचना और वरदानकी बात सुनकर विकल होना, प्रातःकाल रामका पिताके पास जाकर धूंयं देना	५६	रामका प्रवर्णण पवंतपर निवास, कालांतरमें सुग्रीवको सीताकी स्खोजके विषयमें निश्चिन्त देखकर रामका लक्ष्मणको भेजना	७६
केकेयीके रामवनगमनसम्बन्धी वरदान माँगने- के समाचारसे पुरवासियोंकी व्याकुलता दूर करनेके लिए वामदेवको रामको प्रतिज्ञा तथा नारदके आगमनकी बात बताना	५७	सुग्रीवका बहुतेरे वानरोंको सीताकी स्खोजके लिये भेजना और हनुमान-अङ्गद आदिका एक तपस्त्वनीसे मिलना	७७
राम-लक्ष्मण-सीताका वनगमन	५७	अङ्गद आदिका सम्पातीसे मिलना और सम्पातीका अपना पूर्ववृत्तांत बताते हुए सीताके मिलनेका उपाय बताना	७९
प्रयाग होते हुए रामका चित्रकूट पहुँचना, जयंतकी कथा तथा दशरथमरण	५८	नवम सर्ग	
भरतका ननिहालसे आकर पिताकी क्रिया करनेके बाद चित्रकूट जाना और रामके अनुरोधसे उनकी चरणपादुका लेकर अयोध्या लौटना	६०	हनुमान द्वारा समुद्रलङ्घन और मार्गमें नागमाता सुरसासे साक्षात्कार	७९
रामका अत्रिके आश्रमपर जाना	६०		

विषय

हनुमान्‌जीके द्वारा सिहिकावध, समुद्रपार पहुँच-
कर रात्रिके समय हनुमान्‌जीका लक्ष्मा में प्रवेश और
लक्ष्मीसे साक्षात्कार

हनुमान्‌का रावणके भवनमें जाकर उसकी
दाढ़ी-मूँछ जलाना, मन्दोदरीको सीताके सदृश सुन्दरी
देखकर हनुमान्‌का चक्राना, सीता और मन्दोदरीके
साहश्यका कारण

हनुमान्‌जीका सीताके समक्ष पहुँचना

उसी समय रावणका सीताके पास जाकर
विविध प्रलोभन देना और सीताका रावणको
फटकारना

बाठोंसे हारकर रावणका सीताको मारनेके
लिए उद्यत होना और मन्दोदरीका
रोकना

बहुतेरी राक्षसियोंको सीताको डराने-
अमर्कानेके लिए नियुक्त करके रावणका अपने
घर जाना

प्रिजटाका सीताको बाघासन, हनुमान्-
द्वारा रामयण वर्णन और प्रकट होकर राममुद्रिका-
प्रदान

हनुमान्‌का अशोकवाटिका उजाड़ना

हनुमान्‌का रावणके भेजे हुए बहुतेरे
सेनिकोंको मारना

मेघनादके ब्रह्मपाशमें बैधकर हनुमान्‌का
रावणके समक्ष जाना

हनुमान्‌का रावणको सदुपदेश और रावणका
दैत्योंको हनुमान्‌की पूँछ जलानेका आदेश देना

हनुमान्‌द्वारा लक्ष्मादहन

लक्ष्मा भस्म कर देनेपर सीताके भी जल मरने-
को बात सोचकर हनुमान्‌का दुःखी होना और
आकाशवाणी सुनकर धीरज घरना

लक्ष्मा का प्राचीन इतिहास, गज-ग्राहकयोंके
प्रसंगमें ग्राहके पूर्वजन्मकी कथा, गज-ग्राहका
सहस्रवर्षध्यापी युद्ध और मगवान् द्वारा गजका
उद्धार

गरुड़का एक गजको लेकर भक्षण करनेके लिए
त्रिकूट पर्वतपर पहुँचना और हनुमान्‌का अशोक-
वाटिकामें सीतासे फिर भिलना

लक्ष्मासे लौटते समय एक मुनिके द्वारा
हनुमान्‌का गर्वापहार

समुद्रके इस पार आकर हनुमान्‌का अज्ञद

पृष्ठ विषय

८० हनुमान्‌जीके द्वारा सिहिकावध, समुद्रपार पहुँच-
कर रात्रिके समय हनुमान्‌जीका लक्ष्मा में प्रवेश और
लक्ष्मीसे साक्षात्कार

९८ आदिसे मिलना और वहाँसे चलकर मधुवन
होते हुए रामके पास पहुँचकर उन्हें सीताका हाल
सुनाना

१०८

दशम सर्ग

१११ हनुमान्‌का रामको लक्ष्मा का स्वरूप
बताना

११० रामका लक्ष्मा को प्रस्थान

१०१ उधर लक्ष्मा में हनुमान्‌का पराक्रम देखकर
रावणका घबड़ाना और राजसभामें जाकर परामर्श
करना, विमोचणका समझाना और रावणसे
तिरस्कृत होकर रामकी शरणमें जाना

१०१

१०३ राम-विमोचणमें मंत्री, रामका कुपित होकर
समुद्रपर आमनेय बाण बलानेको उद्यत होना
और समुद्रका सेतुबन्धके लिए उपाय बताना,
रामका समुद्रतटपर शिवलिंग स्थापित करनेका
निश्चय करके हनुमान्‌को शिवलिंग लानेके लिए
काशी भेजना

१०३

१०४ शिवजीका हनुमान्‌को एक प्राचीन इतिहास
बताना

१०४

१०६ विघ्यपर्वतकी वृद्धिसे देवताओं तथा मनुष्योंकी
घबड़ाहट और अगस्त्य मुनिका विघ्यके कोपको
शांत करनेके लिए काशीका त्याग

१०६

१०७ राम द्वारा हनुमान्‌का गर्वहरण

१०७

१०८ हनुमान्‌का अपनी लायी मूर्तिको अलग

१०८ स्थापित करना और रामका वरदान देना

१०८

१११ शिवजीका रामको एक प्राचीन इतिहास
बताना और रामके आज्ञानुसार नलका सेतुरचना
करना

१११

११२ रावणको शुकका सदुपदेश और उसके द्वारा
शुकका तिरस्कृत होना, शुकके पूर्वजन्मकी कथा

११२

११३ रामके आदेशसे अज्ञदका लक्ष्मा जाना और

लौटते समय रावणका एक महल उठाते लाना

११३

११४ अज्ञदके मुखसे रावणकी दर्पोत्तिसुनकर
मुग्रीवका रावणके पास जाना और उसके साथ
मल्लयुद्ध करना

११४

११५ माल्यवान्‌का रावणको उपदेश

११५

११६ एकादश सर्ग

११६

११६ राम-रावणका युद्धारम्भ

११६

११७ बानरी सेनापर मेघनादका शक्तिप्रयोग और

रामकी आज्ञासे हनुमान् द्वारा लायी हुई द्रोणगिरि-

की ओषधिसे सबकी मूर्छा दूर होना

११७

विषय

रावणका लक्षणपर शक्तिप्रयोग और हनुमानका द्वीणगिरि लाते समय कालनेमिसे भेंट

तड़ागपर जल पीनेके लिए गये हुए हनुमानको मगरीका पकड़ना, हनुमानके हाथों कालनेमिका वध और वहसे चलकर हनुमानका भरतके बाणप्रहारसे भूचित होकर गिरना

ऐरावण-मेरावण द्वारा राम-लक्षणका हरण

हनुमानका राम-लक्षणको खोजने पाताल जाना, वहाँ मकरध्वजसे भेंट, मकरध्वजका अपनी जन्मकथा मुनाना और हनुमानका कामाल्पादेवीके मंदिरमें प्रवेश

हनुमानका मेरावणकी पत्नीसे ऐरावण-मेरावण-के मरणका उपाय पूछना और उस नागकन्याका उन दोनोंकी मृत्युका उपाय बताना

रामके द्वारा ऐरावण-मेरावणका वध

उस नागकन्याको रामका वरदान, रावणका कुम्भकर्णको जगाना, रावणकी प्रेरणासे उसका समरभूमिमें जाना और रामके हाथों कुम्भकर्णका निधन

मेघनादका निकुम्भिला देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमान् तथा लक्षण द्वारा यज्ञविघ्वस

लक्षण द्वारा मेघनादका वध

सुलोचनाका सर्ती होना

रावणका सीताको रामका कटा हुआ नकली सिर दिखाना

मन्दोदरीका रावणको समझाना और रावणका रामके समक्ष नकली सीताको काटना

राम-रावणका मीषण पुद्ध

रामके हाथों रावणका वध

द्वादश सर्ग

राम-सीताका मिलन

रामकी अयोध्या लौटनेकी तैयारी और विमीषणके प्रश्न

रामका विजटाको वरदान

रामका अवध-प्रस्थान, मार्गमें सम्पातीसे भेंट और रामका सीताको विविष दृश्य दिखाना

उधर अवधि बीतते देखकर भरतका चितामें कहनेको तैयार होना और उसी समय हनुमानजी-का पहुँचना

राम-भरतका मिलन

पृष्ठ

११८

विषय

रामका राज्याभियेक

पृष्ठ

१३९

श्रीशिवजीके द्वारा रामको स्तुति

१४०

राज्याभियेकीत्सवपर स्वर्गसे महाराज दशरथ-का आना, रामका ब्राह्मणों-मित्रों तथा परिवारके लोगोंको उपहार देना

१४१

१२०

हनुमानको रामके विविष वरदान और भोजनके समय हनुमानका कौतुक

१४२

पुष्पक विमान, सुग्रीव तथा विमीषणकी विदाई

१४३

रामके रणयज्ञकी समाप्तिका वर्णन

१४४

१२१

त्र्योदश सर्ग

रामके यहाँ अगस्त्य आदि ऋषियोंका आगमन, रामका अगस्त्यसे मेघनादका वृत्तात पूछना

१४५

१२२

और उनका बताना

१४६

१२४

रावण-कुम्भकर्ण आदिकी जन्मकथा

१४७

१२५

भाताकी आजासे रावणका शिवलिंग लेने कैलाश जाना और अपने मस्तक काटकर शिवजीको प्रसन्न करना तथा वरदान पाना

१४८

१२६

रावण कुम्भकर्ण-विमीषणका तप करके ब्रह्मा-

१४९

१२७

को प्रसन्न करना और उनसे वरदान पाना

१५०

१२८

रावणको कुवेरपुत्र नलकुबरका शाप, मेघनाद-

१५१

१२९

का इन्द्रको पराजित करना और उसका इन्द्रजित-

१५२

१३०

नाम पड़ना

१५३

१३१

रावणका बालिसे लड़ने जाना और बालिका

१५४

१३२

उसे अपनी कोखमें रख लेना

१५५

१३३

रावणका बालरराज बालिसे युद्ध करने जाना

१५६

१३४

और परास्त होना

१५७

१३५

रावणका राजा बनरण्यसे युद्ध और उनका

१५८

१३६

रावणको शाप

१५९

१३७

रावण-सनत्कुमारका वार्ताशाप, रावणकी श्वेत-

१६०

१३८

द्वीपयात्रा और वहाँकी स्त्रियोंके हाथों पिटना

१६१

१३९

बालि-सुग्रीवकी जन्मकथा

१६२

१४०

ब्रह्माका बालिको किञ्जिधाका राज्य देना

१६३

१४१

और हनुमानकी जन्मकथा

१६४

१४२

हनुमानका सूर्योंको निगलना, हनुमानपर

१६५

१४३

इन्द्रका वज्रप्रहार, पवनका कोप और हनुमानको

१६६

१४४

ब्रह्माका वरदान

१६७

१४५

इन्द्रका राहुको सूर्य देना और हनुमानको

१६८

१४६

भुनियोंका शाप मिलना

१६९

१४७

रामराज्यके सुखका वर्णन

१७०

१४८

विषय

यात्राकाण्ड

प्रथम सर्ग

श्रीशिवजीसे पावंतीके प्रश्न और शङ्कुर-
जीका उत्तर

सहस्र बाल्मीकिके मुखसे कविताका प्रादुर्भाव
ब्रह्माका बाल्मीकिके आश्रमपर जाकर राम-
चरित्र लिखनेका आग्रह करना

द्वितीय सर्ग

बाल्मीकिका रामायणनिर्माण, उसे सुननेके
लिए देवता-यक्ष-नागादिकोंका आगमन

रामायण प्राप्त करनेके लिए उनमें परस्पर
कलह और विष्णुमग्नान् द्वारा रामायणका
विमाजन

नारदजीके द्वारा व्यासजीको चार इलोक
प्राप्त होना

तृतीय सर्ग

पावंतीका शंकरजीसे रामदास विष्णुदासके
परिचयविवरणके प्रश्न और शिवजीका उत्तर

सीताका रामसे गङ्गातटपर चलनेकी प्रायंना
रामका लक्ष्मणको यात्राको तैयारी करनेका
आदेश देना

गङ्गायात्रासम्बन्धी समाचारसे प्रजाजनमें
उल्लासकी लहर

चतुर्थ सर्ग

रामचन्द्रका ज्योतिषी बुलाकर उत्तम मुहूर्त
पूछना

रामचन्द्रका गंगातटको प्रस्थान
यात्राकालीन उल्लासका वर्णन

रामका महर्षि मुदगलके आश्रमपर पहुँचना
महर्षि मुदगलका अपने नवीन आश्रमसे

रामके दर्शनार्थ प्राचीन आश्रमपर जाना
और पूछनेपर आश्रमत्यागका कारण बताना,
रामका मुनि मुदगलसे सरयुकी श्रेष्ठताके विषयमें
प्रश्न और मुनिका उत्तर

रामके आदेशसे लक्ष्मणका बाण चलाकर
सरयुके दो माग करके एक भागको मुदगलके पूर्व
आश्रमपर लाना।

पञ्चम सर्ग

सीताका गंगापूजनकी तैयारी करना, कौसल्या
आदि सातुओं, सोहागिन स्त्यत्रों तथा बहुतेरे

पृष्ठ

विषय

पृष्ठ

ब्राह्मणोंके साथ सीताका सप्तमारोह गंगापूजन
करना

१६१

१६२

१६३

१६४

१६५

१६६

१६७

१६८

१६९

१७१

१७२

१७३

१७४

१७५

१७६

१७७

१७८

१७९

१८०

रामके दर्शनार्थ च्यवन मुनिका जाना और
मानधोंसे प्राप्त होनेवाले कष्टोंका वर्णन करना,
उनका दुःख दूर करनेके लिए रामका अपने बाणसे
अलंध्य खाई खोदना

१८१

१८२

१८३

१८४

१८५

१८६

पृष्ठ सर्ग

कुम्भोदर मुनिके आदेश सुनकर रामका तीर्थ-
यात्राकी तैयारी करना, पुष्यक विमानका रामके
आदेशसे दस योजन विस्तृत और सौ खंडका
ऊंचा होना

१८७

रामका तीर्थयात्राके लिए प्रस्थान
रामकी चार इवजाओंका वर्णन

१८८

काशीमें रामका अनेक तीर्थोंकी स्थापना
करना

१८९

रामकी गयायात्रा, वहाँ फलगुनदीमें सीताके

बालूकाको दुगां बनाते समय राजा दशरथका अपने
हाथों बालूकापिण्ड लेना

१९०

पिताको पिण्डदान देते समय राजा
दशरथका हाथ न दोखनेपर रामका विस्मित होना,
लक्ष्मण और सीतासे पूछनेपर सीताका कारण
बताना

१९१

सीताका आश्रवका, फलगुनदी, गयावाल
ब्राह्मणों, बिल्ली तथा अश्वको साक्षी देनेके
लिए कहना और उनके इनकार करनेपर
शाप देना, अन्तमें सूर्योंकी साक्षीसे प्रसन्न रामके
पिता दशरथका प्रत्यक्ष प्रकट होना

१९२

सप्तम सर्ग

रामकी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्राका विवरण
तोताद्विमें कन्याकुमारीका रामसे भेंट और
रामका उसे वरदान देना

१९३

१९४

अष्टम सर्ग

भारतके पश्चिमी प्रदेशके तीर्थोंकी यात्राका
विवरण, सवारीपर बैठकर यात्रा करनी चाहिए या

१९५

१९६

विषय

नहीं, इस विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर पुष्टक विमानपर नित्य करोड़ों ब्राह्मणोंके भोजनका प्रबन्ध

रामके पुष्टक विमानको देखकर अन्यान्य तीर्थयात्रियोंकी विविध कल्पनायें

नवम सर्ग

उत्तर दिशाकी तीर्थयात्राका विवरण, राम-की बदरीनारायण तथा मानसरोवरकी यात्रा, वहाँसे किलास जाना और यहाँपर सोताका कामधेनु गौ पाना

सब तीर्थोंकी यात्रा करके रामका अयोध्या लौटना

अयोध्यामें रामका भव्य स्वागत यात्राकाण्डकी फलश्रुति

यागकाण्ड

प्रथम सर्ग

अश्वमेघ यज्ञके लिए रामका गुरु वसिष्ठसे परामर्श

वसिष्ठका लक्षणको यज्ञकी तेयारीके लिये निर्देश देना

यज्ञकी सामग्रियोंका विवरण

द्वितीय सर्ग

राम-सीताका यज्ञकी दीक्षा लेना

श्यामकर्ण घोड़को पूजा करके भूभ्रमणके लिये छोड़ना और शत्रुघ्न-सुमन्त आदिका उसको रक्षाके लिये जाना

यज्ञसमारोहमें बहुतेरे ऋषियोंका आगमन वहाँ आए हुये ऋषियोंका रामके हारा स्वागत-स्तकार और कामधेनुकी पूजा करके पाकशालामें बाधना तथा उससे मनचाही बस्तुयें प्राप्त करके सब अन्यागतोंकी इच्छा पूर्ण करना

तृतीय सर्ग

श्यामकर्ण घोड़के साथ शत्रुघ्नका ब्रह्मावते पहुँचना, वहाँ नौकाकी रुकावटसे दुखी होकर मङ्गाकी प्रार्थना करना और मङ्गाका प्रसन्न होकर उन्हें मार्ग देना

श्यामकर्ण घोड़का मगधमें पहुँचना और वहाँके राजासे उपहार पाना

विषय

२००

२०१

२०३

२०४

२०५

२०६

२०७

२१३

२१४

२१५

२१६

२१७

२१८

२१९

२२०

२२१

विषय

२२०

२२१

२२३

२२४

२२५

२२६

२२७

२२८

२२९

२२१

२२२

२२८

२२९

२३०

विषय

२३१

२३२

२३६

२३७

२३८

२३९

२४०

विषय

२३१

२३२

२३३

२३४

२३५

२३६

२३७

२३८

२३९

२४०

विषय

२४१

२४२

२४३

२४४

२४५

२४६

२४७

२४८

२४९

२५०

विषय

२५१

२५२

२५३

२५४

२५५

२५६

२५७

२५८

२५९

२६०

विषय

२६१

२६२

२६३

२६४

२६५

२६६

२६७

२६८

२६९

२७०

विषय

२७१

२७२

२७३

२७४

२७५

२७६

२७७

२७८

२७९

२८०

विषय

२८१

२८२

२८३

२८४

२८५

२८६

२८७

२८८

२८९

२९०

विषय

२९१

२९२

२९३

२९४

२९५

२९६

२९७

२९८

२९९

२१०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
वज्रके ऋत्विजोंको रामका दान और अतिथियोंको उपहार भेट	२४४	सप्तम सर्ग	२७९
सिंहासनासीन रामको नदी-समुद्र तथा अन्यान्य देवताओंसे विविध प्रकारके उपहार मिलना	२४५	व्यासका रामके एक पत्नीशतकी प्रशंसा करना	२८०
अयोध्यामें रामका दरबार वज्रमें आये हुए अतिथियोंका प्रस्तान	२४६	रामका व्यासजीसे अगले जन्ममें बहुत सी स्त्रियोंको प्राप्त करनेका उपाय पूछना	२८१
—:०:—	२४७	व्यासजीके आज्ञानुसार रामका सोलह सीताकी मुख्यमूर्तियें दान देना, रामके सम्मुख कितनी ही देवांगनाओंका आकर रामपर मुम्ख होना	२८२
विलासकाण्ड		उन स्त्रियोंको रामका वरदान	२८३
प्रथम सर्ग		अष्टम सर्ग	
शिवहृत रामस्तवराज	२४९	गुणवतीका वृत्तान्त, वरण्यमें गुणवतीके पतिका मरण	२८३
द्वितीय सर्ग		गुणवतीका अयोध्यामें रामके सम्मुख पहुँचना, रामकी तत्कालीन सीताका वर्णन	२८४
रामके हारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन और पक्षियों हारा रामकी स्तुति	२५७	गुणवतीको रामका वरदान मिलना	२८५
तृतीय सर्ग		पिंगल, नामकी वेश्याका रामके समका पहुँचना, राम हारा पिंगलाका वृत्तान्त सुनकर सीताका कुपित होना	२८६
सीतासे प्रश्न करनेपर रामका देहरामायण-वर्णन	२६१	क्रोधवश सीताका मरनेके लिए उच्चत होना, रामकी विकलता, आधो रातके समय रामका गुह वसिष्ठको बुलानेके लिए लक्ष्मणको भेजना, गुरुके चरण ढूँकर रामका शपथ लाना	२८८
अपने दिये हुए ज्ञानके विषयमें रामका प्रश्न और सीताका उत्तर	२६३	सबेरे सीताका पिंगल वेश्याको बुलाकर डॉटना और मारना, पिंगलाको सीताका शाप और उससे उद्धारका समय निर्धारित करना	२८९
चतुर्थ सर्ग		नवम सर्ग	
रामकी दिनचर्या और बन्दीजोंकी स्तुति	२६६	रामकी कुरुक्षेत्रयात्रा, लोपामुद्रा और जानकी-जीकी बातचीत	२९०
सीताके अगणित अलंकारोंका वर्णन	२६८	लोपामुद्रासे शास्त्राधंमें सीताकी विजय	२९०
पञ्चम सर्ग		विलासकाण्डका माहात्म्य एवं विलासकाण्डके पाठकी विधि	२९२
राम-सीताका जलविहार	२७२	—:०:—	
षष्ठि सर्ग		जन्मकाण्ड	
राम-सीताके शयनका वर्णन, राम-सीताका विहार	२७६	प्रथम सर्ग	
राम और सीताका एक छतपरसे बाजारके कोनुक देखना, सीताका एक दीन-हीन ब्राह्मणीको अपना बच्चा लिये भीख माँगनेपर उद्यत देखना, सीताका उससे उसको दरिद्रताका कारण पूछना और उसका बताना, सीताका उस ब्राह्मणीको एक लाख स्वर्णमुद्रा दिलवाना	२७७	धात्रीके मुखसे रामका सीताके गम्भीर होनेका समाचार सुनना	२९३
सीताका लक्ष्मणके हारा सारे देशमें यह धोषणा करवाना कि कोई भी स्त्री विना वस्त्राभूषणके दिल्लायो न दे। यदि वह धनाभावके कारण वस्त्राभूषण न धारण कर पाती हो तो उसे राज्यसे दिया जाय भगवान् रामकी तत्कालीन दिनचर्या	२७८	सीताका जंगलोंमें सैर करनेकी इच्छा प्रकट करना और इसकी तैयारीके लिए रामका लक्ष्मणको आदेश देना	२९४
२७९			

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पालकोपर चढ़कर रामका सीता तथा सब परिवारको साथ लेकर बनको यज्ञ करना	२९५	पृष्ठक विमान हारा उस समय रामका भी बहाँ पहुँचना और बादमें रामका सो जश्वरेष्य यज्ञ करने का निष्पत्ति करना	३०९
इन लोगोंका बनमें पहुँचना और बनकी शोभाका बर्णन	२९६	स्वर्णमयी सीता बनाकर रामका यज्ञारम्भ, रामके नव्वे यज्ञ पूर्ण होना और कुशकी उत्पत्तिका बृत्तान्त	३१०
द्वितीय सर्ग		बालमीकिका कुश-लवको रामायणकी शिक्षा देना और अल्प समयमें उनका सीखना	
राम-सीताका बनविहार	२९८	वालमीकिका कुश-लवको रामायणकी शिक्षा देना और अल्प समयमें उनका सीखना	३११
छठ मासमें सीमन्तोन्नयनसंस्कार और जनकजीसे रामका सीतात्यागसम्बन्धी बातुलिप	२९९	पञ्चम सर्ग	
बनमें, जहाँ कि सीता जाकर रहनेवाली थी, बहाँपर जनकजीका प्रबन्ध	३००	विष्णुदासका रामदाससे रामरक्षास्तोत्रके विषयमें प्रश्न और रामरक्षास्तोत्रका पार	३१२
तृतीय सर्ग		रामरक्षास्तोत्रका माहात्म्य	३१३
रामका सीताको त्यागनेका कारण बतलाना	३०१	रामनामके स्मरणका फल	३१४
रामका विजय नामक गुस्तवरसे जनताके गुस्तविचार पूछना	३०२	पृष्ठ सर्ग	
उसके मुखसे प्रजाके हृदयकी यह बात मालूम करना कि सीता बितने ही वर्ष रावणके यहाँ रह चुकी थी, फिर भी उसे रामने अपना लिया। यह अच्छा नहीं किया। विजयका रामको एक घोबीकी बात सुनाना। कैकेयीका सीतासे रावणकी आहुति पूछना और सीताका दीवारमें केवल रावणके एक अंगूठेका आकार बनाना	३०३	सीताका बाल्मीकिसे पतिवियोग दूर करनेके लिए कोई बत पूछना और उनका बतलाना	३१६
सीताके चली जानेपर कैकेयीका उस अंगूठे-के अनुरूप रावणके सारे शरीरकी तसबीर बना देना और इसी समय रामका पहुँचना, तसबीरके विषयमें रामके पूछनेपर कैकेयीका सीताको बनायी बतलाना	३०४	सीताका ब्रतारम्भ और लवका रामके बगीचे-से कमल लाने जाना	३१७
प्रातःकालके समय सीताको बनमें त्यागनेके लिए लक्षणका प्रस्थान	३०५	लवका बगीचेके रक्षकोंसे मुठभेड़ और विजयी होकर लौटना	३१८
बालमीकिके आश्रमपर पहुँचकर गदगद बाणी-में लक्षणका सीताको सब बृत्तान्त बतलाना	३०६	दूसरे दिन फिर लवका उन लोगोंसे युद्ध और लवकी विजय	३१९
चतुर्थ सर्ग		रामका लवको पकड़नेके लिये बालमीकि शृणिके आश्रमपर दूत भेजना, इसपर बाल्मीकिका यह उत्तर देना कि चलो, मैं रामके अपराधीको लेकर स्वयं बहाँ आता हूँ	३२०
रामकी उस आज्ञा पालन करनेके लिए लक्षणका विचार करना-जिसमें उन्होंने कहा था कि लौटते समय सीताके दोनों हाथ काट ले आना। उस निर्मम कार्यको करनेमें असमर्थ लक्षणका प्राण त्यागनेपर उद्यत होना और बड़ीके हृपमें विश्वकर्मसि मेंट	३०७	सप्तम सर्ग	
विश्वकर्मिका सीताकी भुजा बनाकर देना और उसे लेकर लक्षणका वयोध्या लौटना	३०८	रामका जन्म यज्ञके लिये श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ने और गुप्तरीतिसे बालमीकिका सीताके साथ रामके यज्ञमें जाना	३२१
बध्दरात्रिके समय सीताके गर्भसे पुत्ररत्न उत्पन्न होना	३०९	कुश-लवका रामायणगान सुनकर सबका मुख होना और बादमें रामकी सभामें लव-कुशका रामायणगान	३२२
		रामका उन दोनों बालकोंको पुस्तक दिल-बाना और उनका लेनेसे इनकार करना	३२३
		लवका रामके श्यामकर्ण घोड़ेकी पकड़ना और लव तथा शशुधका संग्राम, लवका हनुमान्, सुमन्त्र और मरतको काँखमें दबाकर मारा सीताके पास ले जाना	३२४
		रामके आशानुसार लवको पकड़नेके लिये	३२५

विषय

लक्षणका जाना, लब और लक्षणमें युद्ध
लक्षणका लबको ब्रह्मपाशमें बौधकर राम-
के समक्ष ले जाना, रामके आज्ञानुसार लोगों-
का लबपर जलके घड़े उड़ाना और लबका
लड़ा

लबको छुड़ानेके लिए कुशका जाना
राम-लक्षण और कुशका युद्ध

अष्टम सर्ग

रामका एक मन्त्रीको वाल्मीकिके पास
भेजना

रामकी समामें वाल्मीकिका सीताको साथ
लिये हुए आना

रामके प्रति वाल्मीकिकी उक्ति और सीताको
हाथों सहित देखकर रामका सन्देह

सीताकी शपथ, सीताका पृच्छोमें रवेश करना
और पृच्छीसे रामकी प्रार्थना

पृच्छीपर रामका कोप और रामका पृच्छीसे
सीताको वापस पाना

यज्ञमें आये हुए राजाओं और ऋषियोंकी
विदाई

नवम सर्ग

उमिला, माण्डवी तथा अुतकीति आदिका
गमिणी होना और यथासमय पुत्र उत्पन्न करना,
पुत्रोंको उत्तिके अवसरपर रामका उत्साह

रामका कुलगुरु वशिष्ठसे सब वच्चोंके दुमाशुभ
लक्षण पूछना और वशिष्ठका सब बालकोंके लक्षण
बतलाना

पुत्रवती बहिनोंके साथ सीताका आनन्दमय
जीवन विताना

गुरु वशिष्ठसे रामका लब-कुशके उपनयनका
परामर्श और व्रतबन्धकी तैयारियोंके लिये रामका
लक्षणको बादेश

व्रतबन्ध (उपनयन) संस्कार समारोह
व्रतबन्धसंस्कार

लब-कुश आदि बालकोंका वेदाध्ययन,
बालकोंका गुरुगृहसे वापस आनेपर जयोध्या
नगरीके उत्साहका वर्णन

जन्मकांडके सुननेका फल और उसकी
महिमाका वर्णन

पृष्ठ

३२५

३२६

३२७

३२८

३२९

३३०

३३१

३३२

३३३

३३४

३३५

३३६

३३८

३३९

३४०

३४१

३४२

३४३

विषय

विवाहकाण्ड

प्रथम सर्ग

रामकी समामें महाराज भूरिकीतिका स्वयंवर
पत्र आना

पत्र पढ़नेके अनन्तर रामका स्वयंवरमें जानेकी
तैयारी करना, रामको स्वयंवरयात्रा

रामका अपने पुत्रोंके साथ स्वयंवरमें
पहुँचना

रामका आगमन मुनकर राजा भूरिकीतिकी
नगरनिवासिनी महिलाओंकी प्रसन्नताका वर्णन

द्वितीय सर्ग

दूसरे रोज रामका स्वयंवर-समामें जाना और
रामके दूतोंका वहाँ आये हुए राजाओंका परिचय
देना

समामें चमिका नामको राजकन्याका प्रवेश
चमिकाको साथ लिये मुनन्दाका सब
राजाओंके समक्ष जाना और चमिकाको उन
राजाओंकी स्थिति समझाना

चमिकाका सब राजाओंके सामनेसे होकर
रामके सम्मुख पहुँचना

अन्तमें चमिकाका कुशके सामने पहुँचना
और कुशके गलेमें वरमाला डालना

तृतीय सर्ग

मुनन्दाका सुमति नामकी दूसरी राजकन्याको
साथ लेकर पहलेकी तरह सब राजाओंका यश
मुनाना

मुमतिका सब राजाओंके सामनेसे होकर
लबके समक्ष पहुँचना और उनके गलेमें वर-
माला डालना, दूसरे दिन भूरिकीतिका रामके
पास जाकर विदाईके लिए मृहत्रै निधित
करना

विवाहकाण्डका प्रारम्भ

लब-कुशका विवाहमण्डपमें पहुँचना और
विवाह सम्पन्न होना

चतुर्थ सर्ग

विवाहके अनन्तर होनेवाले लोकाचार
भूरिकीतिकी नगरीमें राम आदिको विदाई,

रामका जयोध्या पहुँचना और जयोध्यावासियों
द्वारा उनका स्वागत

पृष्ठ

३४५

३४६

३४७

३४८

३४९

३५०

३५१

३५२

३५३

३५४

३५५

३५६

३५७

३५८

३५९

३६०

३६१

३६२

विषय

विवाहोत्सवमें आये हुए बभ्यागतोंको विदाई, रामदासका विष्णुदासको कुशके विषयमें कुछ भविष्यको बातें बतलाना

पृष्ठ

३६२

पञ्चम सर्ग

सीता तथा भ्राताओंके साथ रामका बनमें अगस्त्यके आधमपर जाना

३६३

अगस्त्य शृणि द्वारा रामका स्तकार और बनमें रामको पौच बप्सराओंका मिलना

३६४

अगस्त्यसे उन अप्सराओंके विषयमें रामका प्रश्न और उनका उत्तर, रामके बाण मारनेके लिए उचत होनेपर जलदेवियोंका प्रकट होना और बारह कन्यायें रामको अपित करना

३६५

षष्ठी सर्ग

बहुतसे गंधवौं और पश्चातोंका जाना और रामकी स्तुति करना, अपने तथा लड़मण आदिके पुत्रोंको कुछ भविष्यको बातें अगस्त्य शृणित रामको मालूम होना

३६६

गंधवौंको अयोध्या आनेको आज्ञा देकर रामका अपनी पुरीको बापस लौटना

३६७

अयोध्यामें पहुँचकर उन कन्याओंको विशिष्टके यहाँ रखना, गंधवौं और नामोंका अयोध्यापुरीमें पहुँचना तथा विवाहके मुहूर्तका निश्चित होना

३६८

सप्तम सर्ग

उन कन्याओंके साथ राम आदिके पुत्रोंके विवाहकी तैयारी

३६९

कंजनयनी नामकी कन्याके सुग लबका विवाह, अन्य कन्याओंके सज्ज अन्य पुत्रोंका विवाह, राम आदिके आनन्दका बर्णन

२७१

अष्टम सर्ग

रामके पास कम्बुकण्ठ नामक राजा का पत्र आना, कम्बुकण्ठकी कन्या मदनसुन्दरीके पास नारदजीका पहुँचना

३७३

मदनसुन्दरीका नारदजीसे रामचन्द्रजीको पतोह बननेका उपाय पूछना और नारदका उसे उपाय बताना

३७३

नारदका अयोध्या पहुँचना और उबके मुखसे सब हाल सुनकर यूपकेतुका कान्तिपुरीको चल देना

३७४

यूपकेतुको न देखकर परिवार समेत राम-

विषय

का विह्वल होना और नारदका सब हाल बतलाना, यूपकेतुका अपने मोहनस्त्रसे सब राजाओंको मोहित करके मदनसुन्दरीको बरना

पृष्ठ

३७५

यूपकेतुका सब राजाओंके साथ युद्ध यूपकेतुका खड़ग उठाकर अपने समुर कम्बुकण्ठको मारनेके लिए उचत होना और मदनसुन्दरीकी प्रार्थनासे छोड़ देना, मार्गमें शत्रुघ्नसे यूपकेतुका साक्षात्कार और बहसे लौटकर फिर कान्तिपुरीको जाना

३७६

यूपकेतुका प्रार्थनासे छोड़ देना, मार्गमें शत्रुघ्नसे यूपकेतुका साक्षात्कार और बहसे लौटकर फिर कान्तिपुरीको जाना

३७७

नवम सर्ग

हृतके मुखसे यूपकेतुका सब समाचार जात होनेपर रामका कान्तिपुरीके लिए प्रस्थान, कान्तिपुरीमें आनन्दपूर्वक रामका पहुँचना

३७८

बहाँ यूपकेतुका विवाह होना, भगवान्की स्तुति करके नारदका प्रस्थान, विवाहकाण्डका श्रवणफल

३७९

विवाहकाण्डके अनुष्टानकी विधि

३८०

राज्यकाण्ड (पूर्वार्द्ध)

प्रथम सर्ग

रामसहस्रनामके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और रामदासका उत्तर

३८१

सनस्तुमार और गणेशका वार्तालाप

३८२

राम सहस्रनाम

३८३

रामसहस्रनामका माहात्म्य

३९१

द्वितीय सर्ग

कल्पवृक्षके विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर

३९२

रामके पास साठ हजार शिष्योंके साथ दुर्वासाका आगमन और सबके लिए भोजन तथा पूजनके लिए ऐसे फूल माँगना, जिन्हे संसारमें किसीने न देखा हो

३९३

रामका पत्रके साथ एक बाण इन्द्रके पास भेजना और इन्द्रका कल्पवृक्ष तथा पारिजात स्वर्यलाकर अयोध्यामें रामको देना

३९४

सीताका कल्पवृक्षकी स्तुति करके उसके द्वारा प्राप्त सामग्रीसे शिष्यों समेत दुर्वासाके भोजन कराना

३९५

भोजनके बाद प्रसन्न दुर्वासाका रामकी स्तुति करके प्रस्थान

३९६

विषय

पृष्ठ

विषय

पृष्ठ

तृतीय सर्ग

रामोपासक तथा कृष्णोपासक दो विश्रोमे
परस्पर मधुर विवाद

३९७

सीताके हाथों मूलकासुरका वध

४२१

दोनों ब्राह्मणोंका विवाद निषटानेके लिए
आकाशवाणीका होना

४०६

ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा सीताकी स्तुति

४२२

रामके हाथों विभीषणका राज्याभिषेक

४२३

विभीषणके द्वारा मलीभाँति सम्मानित होकर
रामका त्रिजटाका सत्कार करना

४२४

चतुर्थ सर्ग

एक कौएको रामका वरदान

४०७

रामका अयोध्या लौटना

४२५

रामपर बासक सो नागरिक स्त्रियोंका
आगमन

४०८

लवणासुरसे वस्त्र मुनियोंका रामके पास जाना
और च्यवन मुनिका लवणासुके पूर्वजन्मका वृत्तान्त
बताना

४२५

उन स्त्रियोंकी अनुचित प्रावर्णनापर रामका
उत्तर और वरदान

४०९

रामकी बाजासे शशुधनका लवणासुरको मारने-
के लिये मधुयन जाना

४२६

रामका दास-दासियोंको बुलाना, किन्तु वहाँ
किसीका उपस्थित न रहना, लक्षणका अपने हृत
भेजकर उन्हें बुलवाना और दास-दासियोंका
हरिकीतन छोड़कर आनेसे इन्कार करना

४१०

शशुधन द्वारा लवणासुरका वध

४२८

मध्य रात्रिमें एक स्त्री (निद्रा) का रुदन
सुनकर पुष्पक द्वारा रामका उसके पास जाना और
उसे वरदान देना

४११

अपनी सेनाके साथ रामका दिग्घवजयके लिए
प्रस्थान

४२९

कुम्भकर्णके पीछे पौण्ड्रकी लंकापर चढ़ाई
करके विभीषणको परास्त करना और विभीषणका
रामके पास जाकर अपना दुःख सुनाना

४१२

पुरुरवा आदि तीन राजाओंके साथ रामका
तुमुल युद्ध

४३०

रामका लंका जाकर पौड़ुको परास्त करके
विभीषणको राजगद्वीप पर बिठाना, कुछ काल बाद
मूलकासुरसे परास्त होकर विभीषणका रामको
शरणमें जाना

४१३

उन्हें जीतकर रामका मयुरा जाना और
वहाँसे यवनादि विविध देशोंकी यात्रा

४३१

सामन्त राजाओंके साथ रामकी मूलकासु-
पर चढ़ाई और भीषण युद्ध होना

४१४

रामकी किम्बुरुष आदि देशोंकी विजययता,
मारस्तर्धके विविध द्वीपों, द्वीपस्थ नदियों और
पर्वतोंका वर्णन

४३१

ब्रह्मजीके द्वारा मूलकासुरके मरणकी गृह्ण
युक्तिका ज्ञात होना और रामका सीताको लानेके
लिए गहड़को भेजना

४१५

नवम सर्ग

४३१

षष्ठ्यम सर्ग

रामके विरहसे सीताकी व्यथाका वर्णन
रामसे मिलनेके लिए सीताका विविध
मनोतियाँ मानना

४१६

रामकी द्वीपोंकी विजययता

४३५

सीताका गरुडपर आलड़ होकर प्रस्थान, राम-
सीताका मिलाप और मूलकासुरका वध
करनेके लिए रथपर सवार होकर सीताका रण-
भूमिको प्रयाण

४१७

विविध द्वीपोंपर विजय प्राप्त करते हुए रामका
घृतोदसागर पहुँचना

४३७

सीताका गरुडपर आलड़ होकर प्रस्थान, राम-
सीताका मिलाप और मूलकासुरका वध
करनेके लिए रथपर सवार होकर सीताका रण-
भूमिको प्रयाण

४२०

रामकी शाकद्वीप यात्रा

४३८

सीता-मूलकासुरका सामना और बारलाप

४२०

रामका पुष्करद्वीप पहुँचना

४३९

षष्ठ्य सर्ग

सीता-मूलकासुरका सामना और बारलाप

४२०

लोकालोक पर्वत तक जाकर रामका अयोध्या
लौटना

४४०

षष्ठ्य सर्ग

सीता-मूलकासुरका सामना और बारलाप

४२०

रामका लद्धणसे एक कुत्तेके रोदनका कारण
पूछना

४४१

पूछनेपर कुत्तेका व्यर्थ मारनेवाले एक संन्यासी-

को अपराधी बताना

४४२

रामका संन्यासीको बुलवाना और दोष
प्रमाणित हो जानेपर कुत्तेसे ही अपराधीको

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
दण्ड देनेके लिए कहना और कुत्तेका संन्यासीको कहींका मठाधीश बननेका दण्ड देना	४४३	उनका काशणिक नारीगोत सुनकर रामका प्रकट होना और वरदान देना	४६०
इस दण्डपर चकित लोगोंका कुत्तेसे कारण पूछना और उसका बतलाना, एक दिन एक विप्रका अपने मरे हुए बच्चेको लेकर रामके समक्ष आना और रोना	४४४	उन सबको साथ लेकर रामका लक्षण आदिके पास जाना और वहाँसे एक सरोबरपर पहुँचना	४६१
रामका उसे आश्वासन देना और बच्चेके थबको तेलकी नावमें रखकाना	४४५	रात्रिके समय रामका बाराहमृगया करना वहाँसे रामका मधुरा जाना, वहाँ एकान्तमें रामके पास रात्रिमें नारीरूप धारण करके यमुनाका आगमन	४६२
उसी समय शुद्धवेरदुरस्ते एक और थबका आना	४४६	कालिन्दी (यमुना) को राम वरदान	४६३
उसकी विषवाको आश्वासन देकर रामका पुण्यक विमानपर चढ़कर बाहर निकलना, उनके चले जानेपर और पांच थबोंका अयोध्या आना	४४७		
रामका दण्डकदनमें एक शुद्धको उग्र तप करते देखना, उससे छात करना और वरदान देना	४४८		
रामके समक्ष एक गृह और उलूकका अभियोग तथा रामका न्याय	४४९		
रामका पूर्वोक्त सार्तों मृतकोंकी जीवित करना	४५०		
एकादश सर्ग			
मृगयाके लिए रामकी यात्रा और बनवणें	४५०	सभामें बैठे हुए रामका एक मनुष्यकी हँसी सुनकर घबराना	४६५
रामका एक सिंहका पीछा करते हुए अपने साथियोंसे विछुड़कर बनमें दूर निकल जाना, वहाँ सिंहको मारना और मृत सिंहका अपनी आत्मकथा सुनाना	४५१	रामका अपने राज्यमें हँसनेकी मनाही करना	४६६
रामका एक कन्दरामें घुसना, वहाँ चार स्त्रियोंको मृतप्राप्त देखना और उन्हें जीवित करना	४५२	रामके इस आदेशसे मनुष्यों द्वारा देवताओंमें बातंक छा जाना और विरोध-प्रदर्शनार्थं बहाका अयोध्याके एक पीपल वृक्षमें प्रविष्ट होकर जोरोंसे हँसना	४६७
रामका उन स्त्रियोंसे वार्तालाप, उनका रामपर मोहित होना और उनको रामका वर देना	४५३	एक दिन सनामें किसी दूतको हँसते देखकर रामका हँसना और बादमें पछताते हुए अपनी हँसीपर विचार करना	४६८
द्वादश सर्ग		कारण झात होनेपर अनुचरोंको हँसनेवाला पीपल काट डालनेकी आशा देना, उसे काटनेकी गये हुए सेवकोंका ब्रह्माकी उपलब्धिसे आहत होकर चीत्कार करना	४६९
उन चारोंके साथ आगे चलकर एक स्थानपर रामका सोलह हजार स्त्रियोंको देखना	४५५	बादमें रामकी जाग्रासे सुमंत्रका जाना, वहाँ पत्थरोंकी मारसे उनका भी मूँछित होना और रामका विशिष्टको बुलाकर कारण पूछना	४७०
उन सब स्त्रियोंका रामपर मोहित होना	४५६	विशिष्टका कारण बतलाना, ब्रह्माकी धृष्टा सुनकर रामका कुपित होना और फ्रुद रामको महाय बालभीकिका समझाना	४७१
उन सबका वरण करनेके लिए रामको विवश करना और रामका अन्तर्घान होना		आनन्दरामायणकी महिमा	४७२
रामके विद्योगमें उन स्त्रियोंकी करण-दशाका वर्णन	४५८	बालभीकिका ब्रह्माको बुलवाना	४७३
		ब्रह्माका रामकी स्तुति करना और विशिष्टका दो विष्णुगणोंके विषयमें प्रश्न	४७४
चतुर्दश सर्ग			
		विशिष्टके प्रश्नका ब्रह्मा द्वारा उत्तर, विश्वनी-कुमारोंका विष्णुके गण जय-विजयको शाय देना और	

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उद्धारके समयका निर्देश	४७४	कंकण देना, उस कंकणकी प्राप्तिके विषयमें अगस्त्यसे लबका प्रश्न और उन मुनिका उत्तर	५००
जय-विजयके अगले जन्मको कथा, ब्रह्मा- की स्तुतिसे रामका प्रसन्न होना, महर्षि बाल्मीकिसे रामके कुछ प्रश्न	४७५	एक स्वर्गीय प्राणीको लड़ हुए मुर्देका मांस खाने देखकर अगस्त्यका विस्मित होना, उससे कारण पूछना और उसका बतलाना	५००
बाल्मीकिका अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, तस्करवृत्तिपरायण बाल्मीकिका एक विप्रका दण्ड-कमण्डल तथा जूते आदि छोनना, बादमें तपतो रेतपर चलते हुए ब्राह्मणको दुखी देखकर दयावश जूते लौटा देना	४७६	दंडकारण्यके विषयमें महर्षि अगस्त्यसे लबका प्रश्न और अधिका उत्तर	५०१
बाल्मीकिका शंख विप्रसे अपने पूर्वजन्मका हाल पूछना	४७७	दंडकारण्यकी कथा, राजा दण्डकका भृगुकी कन्याके साथ बलात्कार और राजाको भृगुका शाप	५०२
शंखका बाल्मीकिके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, वेश्यासक्त बाल्मीकिकी स्त्रीकी सेवा और आश्वासन	४७८	अष्टादश सर्ग	
बाल्मीकिका देहान्त और उनकी स्त्रीका सर्ती होना	४७९	राममुद्राकी रचनाविधि	५०३
उनके अगले जन्ममें कृष्ण नामके अृषिय- का बीच एक सप्तिनीका खाना और उसने बाल्मीकिका जन्म, किरातों द्वारा पालित होनेके कारण बाल्मीकिका व्याधवृत्ति स्वीकार करना	४८०	विष्णुदासका रामनाथपुरके ब्राह्मणोंको राममुद्राकृत शिला मिलनेका कारण पूछना और रामदासका उत्तर	५०४
बाल्मीकिको राष्ट्रपियोंका उपदेश	४८१	बहुत समय बाद एक दुष्ट राजा द्वारा सताये जानेपर उन ब्राह्मणों द्वारा वह शिला एक सरोवरमें फेंकना	५०५
उनके उपदेशसे बाल्मीकिका 'मरा-मरा' यह मंत्र जपते हुए कठार तप करना और बहुत वर्षों बाद सप्तिनीयोंका फिर वहाँ आना और उन्हें बाईसे बाहर निकालना, बाल्मीकिके मुखसे इलोकका जन्म	४८२	उस सरोवरकी बाढ़से हनुमानजीका उन ब्राह्मणोंकी रक्षा करना और राममुद्राकृत शिलाको सरोवरसे निकालना	५०६
ब्राकारादि क्रमसे रामनामकी भृगु	४८३	वह शिला दिखाकर हनुमानजीका उस दुष्ट राजाको शूलोपर चढ़ाना और ब्राह्मणोंको आश्वासन देना	५०७
पञ्चदश सर्ग		एकोनविंश सर्ग	
रामराज्यकी विधीपत्रावें	४८४	रामकी दिनचर्या	५१०
पोडश सर्ग		वैद्य और ज्योतिषीसे रामका बार्तालाप	५११
रामका लब-कुश आदि पुत्रों तथा मरत- लहमण आदि भ्राताओंको राजनीतिक उपदेश	४८५	रामकी सभा और उसकी शोभा	५१२
सप्तदश सर्ग		कुशकी उत्पत्तिके बाद सीताके गम्भीर रहनेका कारण	५१३
कुशकी पुत्रों हेमाका स्वयंवर	४८६	बीसवाँ सर्ग	
चित्रांगद द्वारा हेमाका अपहरण और उसके साथ लब-कुश आदिका भीषण युद्ध	४८७	लबका वसिष्ठसे रात्रिमें सोते समय कानमें धौंकनीके समान होनेवाले शब्दका कारण पूछना और वसिष्ठका उत्तर देना	५१४
उस युद्धमें कुशका विजयी होना और प्रसन्न होकर रामका उन्हें एक कंकण देना, उस कंकण- की प्राप्तिके विषयमें कुशका महर्षि अगस्त्यसे प्रश्न और उनका उत्तर	४८८	रामका रामवतारको व्येष्ट बतलाना	५१५
हनुमानजीका मुदगल अृषिके आश्रमसे सुंजीवनी बूटी लाकर लबकी मूर्ढा दूर करना	४८९	मत्स्य, कूम, वाराह, नूसिह, वामन, परवत्तराम, कृष्ण, लौह तथा कलिक अवतारके दोषोंका वर्णन	५२०
लबको भी रामका एक अगस्त्यप्रदत्त		राम द्वारा रामवतारके मुखोंका वर्णन	५२२
		इकीसवाँ सर्ग	
		चैत्रस्नानके समय सीताका दर्शन करनेके लिए वहुतेरी स्त्रियोंका आना	५२५
		रामका पूर्वकालके कायोंका सिंहावलोकन	५२६

विषय

लक्ष्मी गुरु वसिष्ठसे पोषियोंके प्रत्येक पत्रमें
एक और आ तथा दूसरी ओर राम लिखनेका
कारण पूछना और उनका बताना

रामका एक दासीको बरदान देना, रामका
एक ही समय दो रूप धारण करके विश्वामित्र और
बाल्मीकिके बही जाना

बाईसवाँ सर्ग

राजा भूरिकीर्तिके यहाँसे बहुतेरा सीगात
जाना और बिना रामको अपर्ण किये सीताका
उसमेंसे एक फूल सूंध लेना

एकादशीके रोज सीताकी साड़ीसे फैस-
कर एक तुलसीका पत्र टूटना और उसी समय
नारदका आ पहुँचना

भोजन परोसनेपर नारदका सीतासे संस्पृष्ट
मोजन करनेसे इनकार करना। और रामके पूछने
पर कारण बताना

सीताका टूटा तुलसीपत्र टहनीमें जोड़नेके
प्रयासमें विफल होना

नारदकी बतायी युक्तिसे फिर सीताका प्रयास
करना और तुलसीपत्रका जुह जाना

नारदकृत रामस्तुति

तेझेसवाँ सर्ग

आनन्दरामायणका पाठ करनेसे एक साधारण
सिपाहीका राजमन्त्री हो जाना

उसका अन्युदय देखकर सब सिपाहियोंका
आनन्दरामायणके आराषनमें लग जाना, सिपाहियोंके
बमाथसे घबड़ाकर सब राजाओंका रामके
पास जाना

आनन्दरामायणके अवलम्बे यमपुरका सूना
होना और यमराजका ब्रह्मा-शिव आदि देवताओंके
साथ अयोध्या आना

उनकी दुःखगाथा सुनकर रामका आनन्द-
रामायणपर प्रतिबन्ध लगाना

चौधीसवाँ सर्ग

रामका मृत सुमन्त्रको यमदूतोंसे छीनकर
आपस लाना

सुमन्त्रकी जन्मकालीन गाथा

कृपित यमराजकी अयोध्यापर चढ़ाई

लघ और यमराजमें भयानक युद्ध, लघके
ब्रह्मास्त्रकी मारसे यमराजकी घबराहट और सूर्य
भगवान्का आकर लघको समझाना

पृष्ठ विषय

५२७

५२८

५३१

५३२

५३३

५३४

५३५

५३६

५३८

५३९

५४०

५४१

५४२

५४३

५४४

५४५

सूर्यका यमको ले जाकर रामसे क्षमा
माँगवाना

रामका वपने राज्यमरमें धार्मिक आदेश
राज्यकाङ्क्षेके पारायणका माहात्म्य

मनोहरकाण्ड

प्रथम सर्ग

रामदाससे विष्णुदासका नारदकथित रामायण
(लक्ष्मीरामायण) का सार पूछना

द्वितीय सर्ग

अयोध्यादासियोंका रामसे कुछ उपदेश देनेके
लिए प्रार्थना करना

रात्रिके समय दूतोंका प्रजाजनोंको उपदेश
प्रातःकाल पुनः पुरवासियोंका रामसे वार्तालाप

एक दिन कैकेयीका रामसे उपदेश देनेकी
प्रार्थना करना और रामका कैकेयीको भेड़ोंसे उपदेश
दिलवाना

भेड़ोंसे प्राप्त ज्ञानके विषयमें रामका
कैकेयीसे प्रश्न

सुमित्राको रामका ज्ञानोपदेश
माता कौसल्याको रामका शोके बछड़ोंसे
आत्मज्ञानका उपदेश दिलाना

कालान्तरमें कौसल्या-सुमित्रा आदिका देहत्याग

तृतीय सर्ग

विष्णुदासका रामदाससे रामकी मानसी पूजा-
विधि पूछना

रामदासका उत्तर और गुरुके लक्षण बताना

विभिन्नसंख्यक अक्षरोंवाले राममन्त्र

मानसी पूजाका विधि-विधान
नमस्काराराष्ट्रकमन्त्र

बहिःपूजाविधान
नवपुष्टाजलिके विषयमें विष्णुदास-रामदासका
प्रश्नोत्तर और चन्द्र-अतिचन्द्र आदि नौ भक्तोंकी

कथा

उन नवों भक्तोंका कठोर तप करना और उन्हें
रामका प्रत्यक्ष दर्शन मिलना

उन नवों भक्तोंको रामका बरदान

चतुर्थ सर्ग

अष्टोत्तरशत रामलिङ्गतोमद्व आदिके विषयमें
विष्णुदासका रामदाससे प्रश्न और उनका उत्तर

रामदासका विष्णुदासको आध्यात्मिक उपदेश

पृष्ठ

५४६

५४७

५४९

५५३

५६०

५६१

५६२

५६४

६६५

५६६

५६८

५६९

५७०

५७१

५७२

५७३

५७५

५७७

५८२

५८३

५८४

५८५

५८९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
राममुद्राको पूर्ण करनेकी विधियाँ अष्टोत्तरशत रामलिङ्गतोमद्रके भेद	५९१ ६०२	किस कामनाकी पूर्ति के लिए किस देवताकी आराधना करनी चाहिए	६७०
पञ्चम सर्ग		रामके रकारादि नामोंका महत्त्व	६७१
रामलिङ्गतोमद्र आदि विविध मद्रोंकी रचनाविधि	६०४	रामतारक मन्त्रका माहात्म्य	६७२
षष्ठि सर्ग		दशम सर्ग	
रामतोभद्रमें तत्त्वदेवताओंकी स्थापनविधि	६२७	चंत्रमासकी महिमा	६७३
श्रीरामकी प्रिय वस्तुओंका विवरण	६३०	चंत्रस्नान करनेवालोंके लिए कुछ विशेष नियम	६७४
प्रतिदिन रामको पूजाविधि	६३२	स्त्रियोंके लिए शीतला गौरीस्नान तथा पूजन- विधि	६७५
रामनवमीका व्रत करनेवाले एक विप्रकी कथा	६३७	रामनवमीको रामचन्द्रके पूजनका विधान, चंत्र- में आनन्दरामायणके पारायणका विधान	६८०
एक रात्रिमें राजसेवकोंका आकर उस विप्रको मताना	६४०	अन्य विधि-विधान	६८१
हनुमानजीके गर्जनसे राज्यके सब पुरुषोंका मरण, तभीसे उस राज्यमें स्त्रीराज्य होना	६४१	एकादश सर्ग	
उस राज्यमें पुरुष उत्पन्न न होनेका कारण	६४२	चंत्रमासके महत्त्वका कारण	६८३
रामनवमी व्रतकी फलश्रुति	६४३	रामका देवताओंके वरदान	६८४
सप्तम सर्ग		चंत्रस्नान करनेवाले नृसिंह ब्राह्मणकी कथा	६८५
रामशतनाम आदि लिखनेकी रोति और उच्चापनविधि	६४४	शम्भु ब्राह्मणको कथा	६८८
रामनामकी महिमा	६४५	शम्भु विप्रका एक बहेलियेको उपदेश	६८९
राजा युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे रामनामजप तथा पुरव्वरणविधि पूछना और श्रीकृष्णका बताना	६४७	शम्भु द्वारा वही आये हुए एक राक्षसका उदार	६९१
आनन्दरामायणके पाठ और दानका माहात्म्य	६४९	शम्भु विप्र तथा व्याधी की अयोध्यायात्रा	६९२
रामनामजपकी महिमा	६५०	शम्भुके मार्गमें एक सिंह तथा हाथीका सामने बाना, उस सिंह तथा हाथीके पूर्वजन्मकी कथा	६९३
कविताओंका स्वरूप और कवियोंकी श्रेणी	६५२	शम्भुका उन दोनोंके उदारका आश्वासन	६९४
अष्टम सर्ग		आगे बढ़नेपर शम्भुकी एक कार्पटिक (कौवारथी) से भेट और बार्तालिप	६९५
वेदादिकोंके पाठका माहात्म्य	६५३	शम्भु द्वारा अयोध्याकी शोभाका वर्णन	६९७
दानपात्रके विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर	६५४	कार्पटिकके साथ शम्भु विप्रका अयोध्यासे लौटकर उस पूर्व आश्रासित राक्षसका उदार करना	७०१
शास्त्रोंके अध्ययनकी महिमा	६५५	द्वादश सर्ग	
विविध रामायणोंकी चर्चा	६५६	मृग्यके प्रसंगमें रामकी एक शब्दरीसे भेट	७०२
रामायणके पाठ और रामसम्बन्धी कविता करनेका फल	६५८	रामका दुर्गामन्दिरमें जाकर बहुतेरी स्त्रियोंकी पूजा स्वीकार करना और वरदान देना	७०५
आयुर्वेदादिकोंके अध्ययनका फल	६५९	रामनामकी महिमा	७०६
दानियोंको दानपात्रका विचार करना ही चाहिए और ब्राह्मणका धन हड्डपनेका कुफल	६६०	रामका मुनियोंको उपदेश	७०७
विष्णुदास-रामदासमें रामकी विशेष पूजाके विषयमें प्रश्नोत्तर, रामकी पूजाके मास तथा तिथि- योंका निर्देश	६६१	त्रयोदश सर्ग	
दोलापूजनकी विधि	६६२	हनुमतकवच और उसका माहात्म्य	७०८
वसन्त पञ्चमीको आमका और पीनेका माहात्म्य	६६३	रामकवच	७१४
चतुर्दश सर्ग		सीताकवच	
सीताकवचके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और			
सीतादोत्तरशतनामस्तोत्र			
			७१९
			७२०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
स्थियोंके लिए कुछ उपयोगी व्रत रामनामतोभद्रकी रचनाविधि	७२२	ब्रह्माका सोमवंशी राजाओंको साथ लेकर रामके पास जाना और अमा मौगवाना	७७१
पंचदश सर्ग	७२३	रामका ब्रह्माको बालमीकिके पास भेजना और बालमीकिके परामधंसे सोमवंशी राजाओंको स्थियोंका सीताके पास जाना	७७२
लक्ष्मणकवच मरतकवच शशुधनकवच	७२५	सीताके अनुरोधपर युद्धविराम, ब्रह्माका रामसे बैकुण्ठधाम पधारनेको प्रार्थना करना और रामकी स्वीकृति	७७३
मनन एवं कोतनं करने योग्य रामनन्त्र	७२७	पञ्चम सर्ग	
पोडश सर्ग	७२९	रामको परम धाम जानेके लिये उच्चत देखकर सुपेण, सुधीवं, विमोयण आदिका अपने साथ ले चलनेके लिये आगह करना	७७४
रामायणश्वरणके बादके कर्तव्य गण्डकी शंका और रामके हारा समाधान	७३१	युद्धमें आये हुए राजाओं, मित्रों तथा पुत्रोंकी विदाई और उनकी स्थान-स्थानपर नियुक्ति	७७५
वानरोंकी उत्पत्तिका इतिहास और वानरोंको ब्रह्माका वरदान	७३३	रामके आज्ञानुसार कुशका अयोध्या जाना	७७६
हनुमतताकारोपणविधिन	७४०	रामका लक्ष्मणको वरदान	७७७
सप्तम सर्ग	७४१	षष्ठि सर्ग	
श्रीरामचन्द्रोपदिष्ट साररामायण	७४३	दूसरे दिन सबेरे रामका अजमोहको बुलाकर अपने परम धाम जानेकी बात बतलाना	७७८
अष्टादश सर्ग	७४५	रामके आगमनकी बात जानकर स्वर्गके देव- ताओंमें उत्साहका सचार	७७९
अर्जुनके कपिष्ठवज नाम पड़नेका कारण	७५१	श्रीशिवजीका रामके समव स्तुति करना	७८०
पूर्णकाण्ड		गण्डपर बैठकर रामका बैकुण्ठधाममें जाना और रामके साथ गये सभी अयोध्यावासियोंको सान्तानिक लोक प्राप्त होना	७८१
प्रथम सर्ग		सप्तम सर्ग	
रामको समामें हस्तिनापुरसे दूतका आना	७५७	कुशके बादवाले मूर्यवंशी राजाओंकी वंशावली	७८२
बालमीकिका रामको चंद्रवंशी राजाओंका इतिहास सुनाना	७६०	अन्य रामायणों तथा आनन्दरामायणमें भेदका कारण	७८३
द्वितीय सर्ग		अष्टम सर्ग	
रामका सामन्त राजाओंको बुलाना	७६१	विष्णुदासका रामदाससे आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका पूछना और रामदासका अनुक्रमणिका- सर्ग कहना	७८४
रामका भरतको सप्तद्वीपपतिके पदपर अभियक्ष करनेका सम्मुख्य करना, किन्तु भरतका यह पद स्वीकार न करना, अन्तमें उस पदपर कुशका अभियेक	७६२	नवम सर्ग	
हस्तिनापुरीपर चढ़ाइके लिये परामर्श, रामका सरयू और अयोध्याको वरदान	७६४	आनन्दरामायण सुननेका फल	७८८
रामका हस्तिनापुरको प्रस्थान	७६५	अनुष्ठानविधि	७८९
तृतीय सर्ग		पारायणविधि	७९०
रामका हस्तिनापुर पहुंचना	७६६	आनन्दरामायणका संक्षिप्त माहात्म्य	७९२
राम और सोमवंशी राजाओंका युद्ध	७६७	पार्वतीजी और शिवजीका रामदास-विष्णुदास- के विषयमें प्रश्नोत्तर	७९३
उस भीषण युद्धको देखकर देवताओंमें घब- राहट और शान्तिका उपाय सोचना	७६८		
चतुर्थ सर्ग			
कुशका ब्रह्मास्त्र संधान करना और ब्रह्माका आकर रोकना	७७०		
		इति आनन्दरामायणविषयानुक्रमणिका समाप्ता	

श्रीसीतापतये नमः
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ह्या भाषाटीक्याऽऽटीकितम्

सारकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(दशरथ-कौसल्याविवाह तथा ऋष्यशृङ्ग द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ)

श्रीवाल्मीकिरुचाच

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे इयामलम् ॥ १ ॥

आदौ रावणमर्दनं द्विजगिरा तीर्थाटनं सीतया साकेते दशवाजिमेघकरणं पत्न्या विलासाटनम् ।
खीपुत्रग्रहणं स्तुयार्थमटनं पृथ्व्याश्च संरक्षणं रामार्चादिनिरूपणं दयितया स्वीयं स्थलारोहणम् ॥ २ ॥
एकदा पार्वती देवी शंकरं प्राह हर्षिता । कैलासवासिनं नत्वा रामभक्त्यैकतत्परा ॥ ३ ॥

पार्वत्युचाच

शम्भो त्वया पुराणानि कथितानि ममांतिके । रघुनाथस्य चरितं जन्मकर्मसमन्वितम् ॥ ४ ॥
कथयस्वाधुना देव मम प्रीतिविवर्द्धनम् । आनन्ददायकं कर्म रघुवीरेण यत्कृतम् ॥ ५ ॥

श्रीवाल्मीकि मुनि कहते हैं कि जिनके बीचे भागमें सीताजी, सामने हनुमान, पीछे लक्ष्मण, दोनों दग्गल शत्रुघ्न और भरत, बायव्य ईशान अग्नि तथा नंऋहंत्यकोणमें क्रमशः सुग्रीव, विभीषण, तारापुत्र युवराज अङ्गद और जाम्बवान् हैं, उनके बीच विराजमान श्याम कमलसदृश मनोहर कान्तिवाले परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥ इस ग्रन्थके सारकाण्डमें ऋषिवाक्यसे दुष्ट रावणका हनन, दूसरे यात्राकांडमें सीताके साथ रामकी तीर्थयात्रा, तीसरे यात्राकांडमें अयोध्यामें दस अश्वमेघ यज्ञ, चौथे विलासकांडमें पल्लीके साथ विलास, पाँचवें जन्मकांडमें लव-कुशकी उत्पत्ति तथा सीताकी पुनः स्वीकृति, छठे विवाहकांडमें लवकुशके विवाहके लिए प्रस्थान, सातवें राज्यकांडमें धर्मपूर्वक पृथ्वीका रक्षण, आठवें मनोहरकांडमें रामकी पूजा आदिका वर्णन और नवें पूर्णकांडमें सीतासहित भगवान् रामचन्द्रके स्वधाम पश्चारने आदिका सुन्दर चरित्र वर्णित है ॥ २ ॥ एक समय रामचन्द्रजीकी भक्तिमें तत्पर देवी पार्वतीने कहा—हे शम्भो ! आपने वहूतसे पुराणोंकी सुन्दर कथा मुझे सुनायी । हे देव ! अब आप कृपा करके मेरी प्रीति बढ़ानेवाले रघुवीर रामचन्द्रके आनन्ददायक कर्म और उनके जन्म आदिकी मनोहर

सम्यक् पृष्ठं त्वया कान्ते रामचन्द्रकथानकम् । कथयामि सविस्तारं महाभागलकारकम् ॥ ६ ॥
 आदिनारायणाद्ब्रह्माऽभून्मरीचिविंधेः सुतः । मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तत्सुतः सूर्य उच्यते ॥ ७ ॥
 सूर्यपुत्रः श्राद्धदेवो मनुवैवस्वतस्तिवति । स एव ग्रोच्यते तस्येक्ष्वाकुः पुत्रः प्रतापवान् ॥ ८ ॥
 इक्ष्वाकोस्तु विकुक्षिहिं शशाद्वथ स एव हि । विकुक्षेस्तु ककुत्स्थश्च स एवात्र पुरञ्जयः ॥ ९ ॥
 स एवोक्तश्चन्द्रवाहः ककुत्स्थनृपतेः सुतः । अनेनास्तस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्धिश्च तत्सुतः ॥ १० ॥
 चन्द्रश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्युवनाश्वः प्रतापवान् । शावस्तो युवनाश्वस्य शावस्तस्य सुतो महान् ॥ ११ ॥
 बृहदश्च इति ख्यातस्तस्माज्ज्ञे नृपोच्चमः । कुबलयाश्वो नृपतिर्द्वाश्वस्तस्तुतः स्मृतः ॥ १२ ॥
 हर्यश्च इति तत्पुत्रो निकुम्भस्तस्तुतः स्मृतः । वर्हणाश्वो निकुम्भस्य वर्हणाश्वनृपोच्चमात् ॥ १३ ॥
 कृताश्वो नृपतिः प्रोक्तः श्येनजित्तस्तुतः स्मृतः । युवनाश्वः श्येनजितो युवनाश्वनृपोच्चमात् ॥ १४ ॥
 मान्धाता त्र सदस्युर्हि स एव कथितो भूवि । पुरुकुत्सश्च मान्धातुः पुरुकुत्सस्य वै पुनः ॥ १५ ॥
 त्रसदस्युरिति ख्यातोऽनरण्यश्चापि तत्सुतः । अनरण्यस्य हर्यश्वो हर्यश्वस्यारुणः सुतः ॥ १६ ॥
 त्रिवन्धनोऽरुणाज्जातस्त्रिवन्धनसुतो महान् । सत्यव्रतः स एवात्र त्रिशङ्कुरिति वै स्मृतः ॥ १७ ॥
 सत्यव्रतस्य पुत्रोऽभूद्विश्वश्चन्द्रः प्रतापवान् । रोहितस्तस्तुतः प्रोक्तस्तस्माच्च हरितः स्मृतः ॥ १८ ॥
 हरितस्य सुतश्चम्पः सुदेवश्चम्पदेहजः । सुदेवाद्विजयः प्रोक्तस्तपुत्रो भरुकः स्मृतः ॥ १९ ॥
 भरुकस्य वृकः पुत्रो वृकपुत्रस्तु वाहुकः । वाहुकात्सगरो जड्जेऽसमज्ञः सगरात्मजः ॥ २० ॥
 असमज्ञसश्च पुत्रोऽभूदंशुमानिति नामतः । तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपाच्च भगीरथः ॥ २१ ॥
 भगीरथाच्छ्रुतो जातः श्रुतान्नामः प्रकीर्त्यते । नामस्य सिन्धुद्वीपश्च अयुतायुश्च तत्सुतः ॥ २२ ॥
 ऋतुपर्णस्त्वयुतायोः सुदासस्तस्य कीर्त्यते । मित्रसहः स एवात्र कल्माषांघ्रिः स एव हि ॥ २३ ॥
 सुदासस्याइमकः पुत्रो मूलकोऽशमकदेहजः । स एव नारीकवचो मूलकस्य सुतो महान् ॥ २४ ॥
 नाम्ना दशरथः प्रोक्तस्तस्य पुत्रः प्रतापवान् । नाम्ना त्वैर्द्विडः प्रोक्तस्तस्य विश्वसहः स्मृतः ॥ २५ ॥
 तस्य पुत्रस्य खट्वाङ्गः खट्वाङ्गादीर्घवाहुकः । दिलीपश्च स एवात्र तस्य पुत्रो रघुः स्मृतः ॥ २६ ॥

कथा सुनाइये ॥ ३-५ ॥ शिवजी बोले—हे कान्ते ! तुमने श्रीरामचन्द्रका कथाविषयक बड़ा अच्छा प्रश्न किया है । मैं उस मङ्गलकारिणी कथाको विस्तारपूर्वक कहता हूँ ॥ ६ ॥ आदि नारायण विष्णुसे ब्रह्माजी जायमान हुए । ब्रह्मासे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कण्यपसे सूर्य और सूर्यसे श्राद्धदेव हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन्हींको वैवस्वत मनु भी कहते हैं । उनके बड़े प्रतापी इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकुसे विकुक्षि अद्यवा शाशाद और विकुक्षिके ककुत्स्य अथति पुरञ्जय हुए । ककुत्स्यसे इन्द्रवाह, इन्द्रवाहसे अनेना, अनेनासे विश्वरन्धि, विश्वरन्धिसे चन्द्र और चन्द्रका युवनाश्व नामक प्रतापी पुत्र हुआ । युवनाश्वसे शावस्त, शावस्तसे बृहदश्व तथा बृहदश्वसे कुबलयाष्व सर्वश्रेष्ठ राजा हुए । कुबलयाष्वसे दृढाश्व, दृढाश्वसे हयेश्व, हर्यश्वसे निकुम्भ, निकुम्भसे वर्हणाश्व, वर्हणाश्वसे कृताश्व, कृताश्वसे श्येनजित, श्येनजितसे युवनाश्व, युवनाश्वसे मांधाता हुए । जो संसारमें त्रसदस्यु नामसे प्रसिद्ध थे । मांधातासे पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे फिर दूसरे त्रसदस्यु हुए । त्रसदस्युसे अनरण्य, अनरण्यसे हर्यश्व, हर्यश्वसे अरुण, अरुणसे त्रिवन्धन, त्रिवन्धनसे सत्यव्रत हुए । उनका नाम त्रिशंकु भी था ॥ ६-१७ ॥ सत्यव्रतसे हरिश्चन्द्र नामके बड़े सत्यवादी और प्रतापी राजा हुए । हरिश्चन्द्रसे रोहित, रोहितसे हरित, हरितसे चंप, चंपसे सुदेव, सुदेवसे विजय, विजयसे भरुक, भरुकसे वृक, वृकसे वाहुक, वाहुकसे सगर, सगरसे असमज्ञस, असमज्ञससे अंशुमान, अंशुमानसे दिलीप, दिलीपसे भगीरथ, भगीरथसे श्रुत, श्रुतसे नाम, नामसे सिन्धुद्वीप, सिन्धु-द्वीपसे अयुतायु, अयुतायुसे ऋतुपर्ण और ऋतुपर्णसे सुदास हुए । वै मित्रसह और कल्माषांघ्रि नामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ १८-२३ ॥ सुदाससे अश्मक, अश्मकसे मूलक, मूलकसे नारीकवच, नारीकवचसे दशरथ,

रथोः पुत्रो द्यजः प्रोक्तस्तस्मादशरथः स्मृतः । राजो दशरथाज्जातः श्रीरामः परमेश्वरः ॥२७॥
 यस्य नामान्यनन्तानि गृणति मुनयः सदा । विष्णोरारभ्य कथिता एकष्टिर्नृपा मया ॥२८॥
 एकष्टिर्नृपाश्चाप्ते मध्ये रामो विराजते । तस्य ते चरितं कृत्वनं संक्षेपाच्च ब्रवीम्यहम् ॥२९॥
 इक्ष्वाकुवंशप्रवरः क्षत्रियो लोकविश्रुतः । बलवान् सरयुतोरेऽध्योध्यायां पार्थिवोत्तमः ॥३०॥
 नाम्ना दशरथः श्रीमान् जम्बूदीपपतिर्महान् । शशास राज्यं धर्मेण संन्येन महताऽऽवृतः ॥३१॥
 अयोध्यायास्तु सान्निध्ये देशे श्रीकोसलाहृये । कोसलायां महापुण्यः कोसलाख्यो नृपो महान् ॥३२॥
 तस्यासीदुद्दितारम्या कौसल्या पतिकामुका । तस्या दशरथेनैव विवाहो निश्चितो मुदा ॥३३॥
 लग्नार्थं तं समानेतुं दृता दशरथं नृपम् । युविनिश्चयं कृत्वा विवाहदिवसस्य च ॥३४॥
 तदा दशरथश्चापि साकेते सरयूजले । नौकास्थो जलजां क्रीडां चक्रे वै मंत्रिवंशुभिः ॥३५॥
 निशायां सेनया युक्तः स्तुतो मागधवंदिभिः । रत्नदीनप्रकाशैश्च नवृत्वारयोपितः ॥३६॥
 तस्मिन्काले तु लंकायां विधिं प्रपञ्च रावणः । कस्मान्मे मरणं ब्रह्मन् तत्वं मां वक्तुमर्हसि ॥३७॥
 तद्रावणवचः श्रुत्वा कथयामास तं विधिः । कौसल्यायां दशरथाद्रामः साक्षात्जनार्दनः ॥३८॥
 चतुर्धा पुत्ररूपेण भूत्वा स निहनिष्यति । पंचमेऽहनि लग्नस्य राजो दशरथस्य हि ॥३९॥
 दिवसो निश्चितो विप्रैः कौसल्याख्येन रावण । तद्विधेर्वर्चनं श्रुत्वा पुष्पकस्थो दशाननः ॥४०॥
 अयोध्या सत्वरं गत्वा राक्षसैः परिवेष्टितः । नौकास्थं तं दशरथं जित्वा युद्धैः सुदारुणाः ॥४१॥
 षष्ठं निजपादेन तां नौकां सरयूजले । तदा सर्वे मृतास्तत्र सरयवा निमले जले ॥४२॥
 दशरथसुमंत्री द्वौ नौकाखण्डोपरि स्थितौ । शनैः शनैः प्रवाहेण गत्वा भागीरथीं नदीम् ॥४३॥

दशरथसे ऐडविड, ऐडविडसे विश्वसह, विश्वसहसे खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गसे दीर्घंवाहु हुए । उन्होंका नाम दिलीप भी था । दिलीपसे रथु, रघुसे अज और अजसे वडे प्रतापी महाराज दशरथ हुए । दशरथसे साक्षात् परमेश्वर मर्यादापुषोत्तम रामचन्द्रजा जायमान हुए ॥ २४-२७ ॥ उनके अनन्त नाम हैं । जिनको मुनिलोग सदा गाया करते हैं । विष्णुसे लेकर ६१ (इक्सठ) राजे मैंने गिनाये । उन राजाओंके बाद रामचन्द्रजी प्रकट हुए । उनका चारंत्र मैं तुमको संक्षेपमें बताता हूँ ॥ २८ ॥ २९ ॥ इक्ष्वाकुकुलमें श्रेष्ठ, लोगोंमें प्रसिद्ध, बलवान् क्षत्रिय, सरयू नदीके किनारे बसी हुई अयोध्या नगरीके राजा, जम्बूदीपके स्वामी, वडे भारी श्रीमान् राजा दशरथ विशाल सेना रखकर धर्मं तथा न्यायपूर्वक राज्यका शासन करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अयोध्याके पास हा कोसलदेशकी कोसलपुरीमें कोसल नामका एक बड़ा पुण्यात्मा राजा राज्य करता था ॥ ३२ ॥ उसकी विवाहके योग्य एक मुन्दरी कौसल्या नामकी पुत्री थी । उसका उसके पिता कोसलने दशरथके साथ विवाह निश्चित किया । बादमें आनन्दके साथ विवाहके दिनका निश्चय करके उन्होंने लग्नके निमित्त राजा दशरथको बुलानेके लिए दूतोंको भेजा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उस समय राजा दशरथ सरयूनदीके बीच नौकापर बैठकर इष्टमित्रों तथा मन्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे । रात्रिका समय था, चारों ओर सैनिक खड़े थे, चारणगण स्तुति कर रहे थे और रत्नोंके दीपके प्रकाशसे समस्त नाव जगमगा रही थी । वाराङ्गनाये नानाप्रकारके नृत्य-नान कर रही थीं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी समय लड्डाके राजा रावणने ब्रह्मासे पूछा — हे ब्रह्मन् ! मेरा किसके हाथों मरण होगा ? यह आप स्पष्ट कहिये ॥ ३७ ॥ रावणका वचन सुनकर ब्रह्माने कहा कि दशरथकी स्त्री कौसल्यासे साक्षात् जनार्दन भगवान् राम बादि चार पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न होंगे । उनमेंसे राम तुमको मारेंगे । कोसलराजने ब्रह्मणोंसे पूछकर राजा दशरथके लग्नका आजसे पांचवाँ दिन निश्चित किया है । ब्रह्माका यह वचन सुना तो रावण बहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर शोध अयोध्यानगरीको चल पड़ा । वहाँ जा और धोर युद्ध करके उसने नौकापर बैठे राजा दशरथको पराजित किया और पादप्रहारसे नावको तोड़कर सरयूके जलमें डुबो दिया । उस समय और सब तो जलमें डूबकर झर गये । परन्तु राजा दशरथ तथा सुमन्त्र नामका मन्त्री देवेच्छासे नावके टुकड़ोंपर बैठकर धीरे-धीरे

ततः समुद्रमध्ये हि जीवितार्वाश्चरेच्छया । रावणः कोसलं गत्वा कृत्वा परमसंग्रहम् ॥४४॥
 कोसलाख्यं नृपं जित्वा कौसल्यां तां जहार सः । ततः प्रमुदितो लंकां ययावाकाश्चवर्त्मना ॥४५॥
 दृष्टा तिर्मिंगिलं मत्स्यं वसंतं लक्षणार्णवे । चित्ते विचारयामास देवास्ते मम शत्रवः ॥४६॥
 लंकायाश्च हरिष्यन्ति कौसल्यां गुप्तचित्रिग्रहाः । अतस्तिमिङ्गिलायेभां न्यासभूतां करोम्यहम् ॥४७॥
 इति निश्चित्य भनसि पेटिकायां निधाय ताम् । मत्स्यं समर्प्य हृष्टात्मा ययौ लंकां दशाननः ॥४८॥
 तिमिङ्गिलोऽपि तामास्ये धृत्वाऽवधीं व्यचरत्सुखम् । अग्रे दृष्टा रिपुं स्वीयं तेन युद्धार्थमुद्घतः ॥४९॥
 द्वीपे तां पेटिकां स्थाप्य संग्रामं रिपुणाऽकरोन् । एतस्मिन्नन्तरं नौकाखंडं तं द्वीपमागतम् ॥५०॥
 तदा तां भंत्रिनृपतीं द्वापं तमारुहतुः । तत्र तां पेटिकां दृष्टा समुद्रात्यातिविस्मितौ ॥५१॥
 तस्यां दृष्टाऽथ कौसल्यां ज्ञात्वा वृत्तं परस्परम् । तया मुहूर्तसमये द्वीपे दशरथो नृपः ॥५२॥
 गान्धर्वाख्यं विवाहं च चकार मुदिताननः । ततो राजाऽथ कौसल्या सुमंत्रो भंत्रिसत्तमः ॥५३॥
 त्रयः स्थित्वा पेटिकायां तदूद्वारं पिदधुः पुनः । तिमिंगिलो रिपुं जित्वा चकारास्ये तु पेटिकाम् ॥५४॥
 लक्ष्यां रावणश्चापि समाहृय विधिं पुनः । उवाच प्रहसन्वाक्यं सभायां संस्थितः सुखम् ॥५५॥
 विधिं तब मृषा वाक्यं रावणेन मया कृतम् । हतो दशरथस्तोये कौसल्या गोपिता मया ॥५६॥
 तद्रावणवचः श्रुत्वा सभायां पद्मसंभवः । दीघंस्वरेण प्रोवाच अङ्गुष्ठायाहमिति स्फुटम् ॥५७॥
 राज्ञः संभ्रमात्प्राह किमिदं व्याहृतं त्वया । विधिः प्रोवाच लग्नं तु जातं दशरथस्य हि ॥५८॥
 तदा विधिं मृषा कर्तुं दृतान्संप्रेष्य सादरम् । तिमिङ्गिलाः समानीय पेटिकां ब्रह्मणोऽन्तिके ॥५९॥
 समुद्राट्य ददर्शासौ तत्र तस्यां दशाननः । तदाऽतिचकितः क्रुद्दस्तान् हतुं खल्लमाददे ॥६०॥

जलप्रवाहकं सहारे गंगानदीमें जा पहुंच ॥ ३८-४३ ॥ वहाँस बहते हुए वे दोनों समुद्रमें जा मिले । उधर रावण अयोध्यासे चलकर कोसलनगरामें जा पहुंचा और भयानक युद्ध करके राजा कोसलको जीत लिया । तदनन्तर कौसल्याका हरण करके वह आनन्दके साथ आकाशमार्गसे लङ्घा को चला ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ रास्तेमें क्षार समुद्रमें रहनेवाली तिमिङ्गिल मछलीको देखकर उसने सोचा कि सब देवता मेरे शत्रु हैं । कहीं रूप बदलकर वे लङ्घा से कौसल्याको चुरा न ले जायें । इसीलिये इसको यहीं इस तिमिङ्गिलको घरोहररूपमें सौंप दूँ तो ठीक हो ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ऐसा सोचकर उसने कौसल्याको पिटारीमें बन्द करके तिमिङ्गिल मछलीको सौंप दिया और स्वयं आनन्दके साथ लङ्घा चला गया ॥ ४८ ॥ वह मछली उस पिटारीको मुखमें लेकर सुखपूर्वक समुद्रमें धूमने लगी । सहसा अपने शत्रुको सामने देखकर उसने शत्रुके साथ युद्ध करनेका निश्चय किया ॥ ४९ ॥ तदनुसार पिटारीको एक टापूपर रखकर वह शत्रुसे युद्ध करने लगी । उसी समय वह नावका टुकड़ा भी उसी टापूके किनारे आ लगा ॥ ५० ॥ तब राजा दशरथ तथा सुमन्त्र उसी छापमें उत्तर पढ़े । वहाँ उनकी दृष्टि उस पिटारीपर पड़ी । खोलकर देखनेपर उसमें कौसल्याको देखकर उन्हें बड़ा आश्र्वय हुआ ॥ ५१ ॥ बादमें एक दूसरेसे सब वातोंको जान करके प्रसन्न हुए और अच्छे मुहूर्तमें वहींपर राजा दशरथने प्रसन्नतापूर्वक कौसल्याके साथ गांधर्वं विवाह कर लिया । पश्चात् राजा, कौसल्या तथा मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्त्र ये तीनों पुनः पिटारीमें धुस गये और ढकना बन्द कर लिया । मछलीने भी शत्रुको जीतकर उस सन्दूकको फिर अपने मुखमें रख लिया ॥ ५२-५४ ॥ उधर लङ्घामें रावण सुखपूर्वक सभाके बीचमें बैठा और ब्रह्माजीको बुलाकर हैसते हुए बोला— । ५५ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने आपके बचनको भी झूठा कर डाला । दशरथको जलमें डुबोकर कौसल्याको छुपा दिया ॥ ५६ ॥ भरी सभामें रावणके इस बचनको सुनकर ब्रह्माने जोरसे स्पष्ट शब्दोंमें “अङ्गुष्ठायाहम्” ऐसा कहा ॥ ५७ ॥ यह सुनकर रावणने पूछा कि वह आपने क्या कहा ? ब्रह्माजी बोले—अरे ! राजा दशरथका विवाह हो गया ॥ ५८ ॥ रावण ब्रह्माके बचनको असत्य प्रमाणित करतेके लिये दूतोंद्वारा मछलीसे पेटी मंगवायी और ज्यों ही खोलकर ब्रह्माजीको दिखलाना चाहा, त्यों ही उसमें सुमन्त्रके साथ दशरथ कौसल्याको देखकर

तदाऽतिसंभ्रमाद्वेदा रावणं वाक्यमव्रीति । किं करोयि दशास्य त्वं माऽधुना साहसं कुरु ॥६१॥
 कौसल्यैका स्थापिताऽस्यां पेटिकायां त्वया पुरा । त्रयस्तत्र तु संजाता भविष्यन्त्यत्र कोटिशः ॥६२॥
 भविष्यति वधस्तेऽद्य रामोऽर्थव जनिष्यति । साहसं कुरु माऽर्थव सन्यापुषि दशानन ॥६३॥
 यद्भविष्यं तद्भवतु तदग्रे माऽस्तु साप्रतम् । एतान्दृतेः प्रेषयाद्य साकेतं त्वं सुखी भव ॥६४॥
 न भविष्यति मद्राणी मृषा जानीहि निश्चयम् । यद्भाव्यं तद्भवत्येव गहना कर्मणो गतिः ॥६५॥
 तद्विधेर्वचनं सत्यं मत्वा भीतो दशाननः । पेटिकां प्रेषयामास साकेतं स्वभट्टर्जवात् ॥६६॥
 साकेते पेटिकां त्यक्त्वा भट्टास्ते रावणं गताः । अयोध्यायां महानामात्मं ब्रह्मो नृपदशंनात् ॥६७॥
 अयोध्यावासिनां नणां कोसलाधिपतेरपि । ततः पुनर्विवाहस्य मंथ्रमं कोसलाधिपः ॥६८॥
 कृत्वा स्वराज्यं जामात्रे ददौ प्रीत्या हि पूत्रिकाम् । तदारभ्य कोसलेन्द्राः प्रोचयन्ते रविवंशजाः ॥६९॥
 ततो राजा दशरथः सुमित्रां मगधेशजाम् । विवाहेनापरां पत्नीं चकार दयितां प्रियाम् ॥७०॥
 कैकेयनृपतेः कन्यां कैकेयीं पद्मलोचनाम् । विवाहेनाकरोद्धार्या तृतीयां परमादरात् ॥७१॥
 तथाऽन्यानि सप्तशतकलत्राण्यकरोन्नृपः । एवं राजा दशरथः शशास जगतीतलम् ॥७२॥
 दानैभर्गोर्दर्शरथो बभूव जरठो महान् । नाभवत्संततिस्तस्य धार्मिकस्यावनीपतेः ॥७३॥
 कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च गिरीद्रजे । एताः कुलीनाः सुभगा रूपयौवनसंयुताः ॥७४॥
 तस्मिन् शासति राज्यं तु स्थितेऽयोध्यापुरि प्रिये । देवानां दानवानां च राज्यार्थं विग्रहो महान् ॥७५॥
 तत्र वाग्भवच्छ्रेष्ठा यत्रायोध्यापतिमहान् । जयस्तत्र न संदेहस्तां श्रुत्वा पवनो जवान् ॥७६॥
 प्रार्थयामास नृपतिं गत्वा युद्धाय सादरम् । ततो गत्वा दशरथवकार कदनं महत् ॥७७॥

पहले तो बहुत चकित हुआ । फिर कुछ होकर उन्हे मारनेके लिये उसने तलबार निकाल ली ॥ ५९ ॥ ६० ॥
 तब ब्रह्माने रावणको राककर कहा—अरे दशरथ ! यह क्या करता है ? इस समय ऐसा साहस मत कर ॥ ६१ ॥ देख, तूने केवल कौसल्याको हां इसमें रक्खा था । किन्तु ये एकसे एक तीन हों गये । वैसे हा इन तीनोंसे करोड़ों हो जायेंगे ॥ ६२ ॥ राम भी आज ही जन्म ले लगे और तू मारा जायगा । आयु शेष रहते वयों व्यर्थ मरना चाहता है ? इसलिये तू ऐसा साहस त्याग दे ॥ ६३ ॥ जो होनी होगा सो आगे होगी । अभी तू कुछ मत कर और इन तीनोंका दूत द्वारा इनके स्वानका भेजवाकर सुखा हो ॥ ६४ ॥ मेरी बात कभी झूठ न होगी । इस बातका निश्चय रख । कर्मकी गति बड़ी गहन होती है । कर्मके अनुसार जो होनेवाला होता है, सो होकर ही रहता है ॥ ६५ ॥ इस घटनाको घटित होत देखकर रावण कुछ डर गया और ब्रह्माजीकी बातको सच्ची मानकर वह पिटारी अपने दूतों द्वारा शीघ्र अयोध्या भेज दी ॥ ६६ ॥ राजा दशरथ आदिको सकुशल आया देखकर अयोध्यावासियों तथा कौसलदेशके राजा आदिको बड़ा प्रसन्नता हुई और आश्र्य भी हुआ । बादमें कौसलाधिपतिने बड़े समारोहके साथ फिरसे विवाह करके अपनी कर्मनीध कन्या कौसल्या तथा अपना संपूर्ण राज्य अपने दामाद राजा दशरथको दहेजरूपमें दे दिया । तबसे कौसलदेशके राजे भी सूर्यवंशी कहलान लगे ॥ ६७-६९ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने मगधदेशके राजाको कन्या सुमित्राको व्याहकर अपनी दूसरा प्राणप्रिया स्त्री बनायी ॥ ७० ॥ केकय देशके राजाकी कमलनयनी कन्या कैकेयीको व्याहकर उन्होंने बड़े आदरपूर्वक तीसरी पत्नी बनायी ॥ ७१ ॥ इन तीनोंके अतिरिक्त अन्य भी उनकी सात सौ स्त्रियें थीं । इस प्रकार आनन्दपूर्वक राजा दशरथ दान-मान-भोग-ऐशवर्य आदिके द्वारा पृथ्वीका शासन करते हुए बृद्ध हों गये । परन्तु उन परम धार्मिक राजा दशरथके कोई सन्तान नहीं हुई ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे प्रिये पावंतो ! पुत्रके बिना राजाको रूपयौवन युक्त मनोज्ञ कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा आदि स्त्रियें, राज्य और विशाल अयोध्यापुरी सूनीं तथा व्यर्थ दोखने लगी । उसी समय देवताओं और दानवोंमें राज्य-के लिए बड़ा भारी युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस युद्धमें यह आकाशवाणी हुई कि 'जिसके पक्षमें अयोध्यापति राजा दशरथ होंगे, उसी पक्षकी विजय होगी' । उस वाणीको सुनकर पवनदेवने शीघ्र जाकर

एतस्मिन्नन्तरे तत्र संग्रामेऽतिभयावहे । भिन्नाक्षं स्वरथं राजा नाविदद्विष्टसंब्रमात् ॥७८॥
 राजोऽनितके स्थिता सुभ्रूः कैकेयी रणकीतुकम् । पश्यन्ती स्वरथं भिन्नं दर्दशं समरांगणे ॥७९॥
 अक्षवत्सा निजं हस्तं चकार जयहेतवे । तया तु पूर्वं वाल्यत्वान्मध्यास्यं कस्यचिन्मूलेः ॥८०॥
 कृष्णवर्णं कृतं तेन शसा तेऽप्यपवादतः । मुखमग्रे निरीक्ष्यन्ति नैव लोकाः कदाचन ॥८१॥
 ततस्तं गंतुमुद्युक्तं कैकेयी वामहस्ततः । दंडादिकं ददौ तस्य मुनेर्हस्तेऽतिभक्तिः ॥८२॥
 तस्यै ददौ वरं विप्रस्तवं वामकरो वरात् । भविता वज्रकठिनः क्वापि नाशं न चैष्यति ॥८३॥
 कैकेयी तं वरं स्मृत्वा स्वं चकाराक्षवत्करम् । अथ जित्वा रणे देत्यान् द्वाद्वा तत्कर्म पार्थिवः ॥८४॥
 ददौ वरं द्वौ तस्यै स न्यामभूतौ कृताँ तया । यदाऽहं याचयिष्यामि तदा त्वं देहि तौ मम ॥८५॥
 तथेत्युक्त्वा नृपः पत्नीं ययौ स्वनगरीं प्रति । एकदा स निशायां तु मृगयायां महावने ॥८६॥
 चकार वारिविधं चावधीद्वन्वरान् वहन् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वने वाराणसीपथा ॥८७॥
 कर्णडस्थौ स्वपितरौ स्वस्कंधे श्रवणो वहन् । काशीं नेतुं ययौ वैश्यो धर्मवाधामयान्निशि ॥८८॥
 नीरं पातुं शिशो देहि चावयोश्चेति प्रार्थितः । ताभ्यां कर्णडके न्यस्य तटाके जलसंनिधौ ॥८९॥
 गत्वा जले स्वयं कुम्भं न्युञ्जं तस्थौ जले क्षणम् । कुम्भस्य न्युञ्जतः शब्दो वभूव करिणो यथा ॥९०॥
 वनद्विषो न हंतव्यश्चेति जानन्नपि नृपः । वैश्यं राजा द्विषं मत्वा विव्याध स पतत्विणा ॥९१॥
 पपात श्रवणस्तोये हा केनाहं प्रताडितः । ब्रुततश्चेति तद्वाक्यं श्रुत्वाऽभूहित्वालो नृपः ॥९२॥
 गत्वा जलाद्विवर्वगात्तं कुत्वाऽऽकण्यं तद्विरा । मर्वं वृत्तं विश्वन्यं तं चकार भयविहृलः ॥९३॥

राजा दशरथसे युद्धमें सम्मिलित होनेका सादर प्रार्थना की । तदनुसार राजा दशरथ वहाँ जाकर दानवोंसे धार युद्ध करने लगे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ उस भयानक संग्रामके समय राजाके रथका धुरा टूट गया, किन्तु दैववश राजाका पता नहीं लगा ॥ ७८ ॥ राजाके पास वैश्य सुन्दर भोहोवाली रानी कैकेयी संग्रामका कीतुक देख रही थी । उसने सहसा रणमें अपने रथका धुरा टूटते देख लिया ॥ ७९ ॥ तत्काल उसने विजयलाभके लिए अपने वायं हाथको धुरेकी जगह लगा दिया । वचपनमें कैकेयीने किसी सोते हुए मुनिका मुँह स्याहीसे काला कर दिया था । तब मुनिने उसे शाप दे दिया कि जा, तेरा मुँह भी अपयशके कारण ऐसा काला होगा कि कोई देखना नहीं चाहेगा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ जब मुनि वहाँसे चलने लगे, तब कैकेयीने भक्षिपूर्वक वायं हाथसे उनका दण्ड-कमण्डल उन्हें दे दिया ॥ ८२ ॥ इस लेवासे प्रसन्न होकर मुनिने उसे वरदान दिया कि जा, तेरा वायाँ हाय समय पहुँचेपर वज्ज्ञ जैसा कठोर ही जायगा और किसी तरह धायल न होगा ॥ ८३ ॥ कैकेयीने उस वरका स्मरण करके हो अपने हाथको धुरेके सट्टश बनाकर रथमें लगा दिया था । रणमें देत्योंको जीतनेके बाद राजा दशरथने कैकेयीके इस साहस भरे कार्यको देखकर प्रसन्नतापूर्वक उससे दो वर माँगनेके लिए कहा । उसने भी उन दोनों वरोंको राजाके पास ही धरोहररूपमें रख दिया और कहा कि जब मैं माँगूँ, तब आप ये दो वर मुझे दे दीजियेगा ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ 'वदृत अच्छा' कहकर राजा अपनी स्त्रीके साथ अयोध्या लौट आये । एक दिन रात्रिके समय राजा दशरथ शिकार लेनेके लिये सरयुके किनारे गहन वनमें जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके नदीका जलप्रवाह रोक दिया और वहुतसे वनपशुओंको मारा । उसी समय श्रवण अपने बूढ़े तथा अंदे माता-पिताको काँवरमें बिठाकर काँधेपर उठाये हुए उस वन्य मार्गसे काशी ले जा रहा था । तभी गर्भसे पीड़ित होकर बूढ़ माता-पिताने अपने पुत्रसे जल पिलानेको कहा । उनकी अज्ञा पाते ही श्रवण काँवरको जलके किनारे रख तथा धड़ेको टेढ़ा करके जल भरने लगा तो उस धड़ेसे हाथीके शब्द जैसा शब्द निकला ॥ ८६—८० ॥ 'वनेले हाथीको नहीं मारना चाहिये' इस बातको जानते हुए भी राजा दशरथने उस वैश्य श्रवणको हाथीके भ्रमसे शब्दवेशी बाण मारकर बींध दिया ॥ ८१ ॥ 'हाय ! मुझ निरपराधको किसने मारा' ऐसा चिल्लाकर श्रवण धड़ामसे जलमें गिर पड़ा । मनुष्यकी बोली सुनकर राजा दशरथ धवड़ा उठे और दौड़कर वहाँ गये । उसको जल-

तावधावपि तत्पुत्रवर्धं शुत्वा रूपोदतुः । कारयित्वा नृपतिना चिति पुत्रसमन्वितौ ॥९४॥
 दशरथाय तौ शापं ददतुः पुत्रदुःखितौ । पुत्रशोकादावयोर्हि यथा मृत्युस्तवास्त्वति ॥९५॥
 ययौ नृपोऽपि नगरीं गुरुं बृत्तं न्यवेदयत् । वसिष्ठो नृपतेर्दोषशांत्यर्थं तु रगाध्वरम् ॥९६॥
 नृपेण कारयामास साकेते सरयूतटे । रोमपाद इति रुयातस्तस्मै दशरथः सखा ॥९७॥
 शांतां स्वकल्यां प्रायच्छत्तद्राष्ट्रभृदवृषणम् । विभांडकाश्रमं वारनारीः संप्रेष्य तन्मुतम् ॥९८॥
 रोमपादो मोहयित्वा ऋष्यश्रुंगं समानयत् । वारस्त्रियो वने गत्वा समानिन्युक्तयेः सुतम् ॥९९॥
 नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिंगनार्हणैः । तत्प्रतापादभृदवृष्टिः पुत्रोऽपि नृपतेरभृत ॥१००॥
 ततमृष्टो रोमपादस्तस्मै शांतां ददौ सुताम् । दशरथोऽपि स्वपुरीमानयामास तं मुनिम् ॥१०१॥
 स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरुप्येष्ट मरुन्वतः । प्रत्यक्षं हि चकाराग्निं यज्ञकुण्डात्सपायसम् ॥१०२॥
 आविर्भूत्वा स्वयं वहिर्ददौ राज्ञे सुपायसम् । राजा विभक्तं स्त्रीभ्यस्तत्कैकेन्या दृष्टभावतः ॥१०३॥
 अहरत्पायमं हस्तादृगृथी शापविमोचकम् । सुवर्चलाऽप्सरोमुख्या नृत्यभंगात्स्वयंभुवा ॥१०४॥
 शप्ता जाता तु सा गृथी तथा वेधाः सुतोपितः । तस्यै तुष्टो विधिः प्राह कैकेयीपायसं यदा ॥१०५॥
 प्रक्षिपस्यजनगिरौ तदा ते भविता गतिः । अप्सरा त्वं पूर्ववच्च भविष्यसि न संशयः ॥१०६॥
 तस्मात्सा पायसं नीत्वाऽक्षिपदंजनिपर्वते । निजं स्वरूपं सा लब्ध्वा जगाम सुरमंदिरम् ॥१०७॥
 ततस्ताभ्यां तु कैकय्यै दत्तं किंचित्तु पायसम् । अथ ता भक्षयामासुरंतर्गमास्तदाऽभवन् ॥१०८॥

से बाहर निकालकर उसके मुँहसे सब बृत्तान्त सुना तो भयसे कौपते हुए राजाने उस वैश्यवालकके शरीरसे बाण निकाला ॥९२॥९३॥ राजाके मुखसे पुत्रमरणकी बात मुनकर वे दोनों अंधे अतिशय विलाप करने लगे और राजासे चिता बनवाकर पुत्रके माथ जलकर पश्लोक सिधार गये । मरते समय पुत्रवियोगसे दुःखित वे दोनों अन्धी-अन्धे राजा दशरथको यह शाप देते गये कि 'जैसे हम दोनों पुत्रशोकसे मर रहे हैं, वैसे ही तुम भी पुत्रशोकसे ही मरोगे' ॥९४॥९५॥ राजाने नगरमें आकर यह सब हाल गुरु-वसिष्ठजीको सुनाया । कुछ दिनों बाद वसिष्ठजीने राजाकी दोषनिवृत्ति तथा पुत्रप्राप्तिके लिए उनसे सरयूके किनारे क्रृष्णशृङ्खला को बुलवाकर अश्वमेघ यज्ञ करवाया । राजा दशरथके मित्र अंगदेशके राजा रोमपादने अपनी शान्ता नामकी कन्या क्रृष्णशृङ्खला को दे दी थी । क्योंकि एक बार राजा रोमपादने देशमें वर्षा न होने तथा उन्हें कोई पुत्र न होनेके कारण मन्त्रियोंके कथनानुसार क्रृष्णशृङ्खले पिता विभांडकके आश्रमसे वेश्याओंके द्वारा मोहित करवाकर उन्हें अपने देशमें बुलवाया । वेश्यायें बनमें गयीं और नाचकर, गाना गाकर, बाजे बजाकर, हावभाव, आलिङ्गन तथा पूजा आदिके द्वारा मोहित करके क्रृष्णशृङ्खले ले आयीं । उनके यज्ञ करानेसे राज्यमें वृष्टि हुई और राजाको पुत्र भी प्राप्त हुआ ॥९६-१००॥ तब प्रसन्न होकर राजा रोमपादने क्रृष्णशृङ्खलोंको अपनी शान्ता नामकी कन्या दान करके दे दी । अतएव दशरथ भी उन क्रृष्णशृङ्खलोंको अपने नगरमें ले आये ॥१०१॥ उन मुनिने संतानरहित राजा दशरथसे इष्टि (यज्ञ) करवाकर खीर लिये हुए अग्निदेवको यज्ञकुण्डसे प्रत्यक्ष प्रकट किया ॥१०२॥ इस प्रकार अग्निने स्वयं प्रकट होकर राजाको सुन्दर पुत्र देनेवाला पायस (खीर) दिया । राजाने वह खीर लेकर तीनों स्त्रियोंमें बाँट दी । तभी कैकेयीके भागको एक गृध्री यह सोचकर कि यदि इसको मैं ले जाऊँगी तो मेरा शाप छूट जायगा । इस स्वार्थसे खीर छीन ले गयी । कथान्तर । एक समय सुवर्चा नामकी अप्सराओंमें उत्तम अप्सराको नृत्यभृङ्गके अपराधसे ब्रह्माने गृध्री होनेका शाप दे दिया । जब फिर उसने स्तुतिके द्वारा ब्रह्माको प्रसन्न किया । तब ब्रह्माजीने कहा कि जब तुम कैकेयीके पायसको छीनकर अंजनिपर्वतपर फेंकोगी । तब तुम्हारी धुनः सुगति हो जायगी और पूर्ववत् तुम अप्सरा हो जाओगी ॥१०३-१०६॥ इसी कारण उस गृध्रीने खीर लेकर अंजनिगिरिपर ढाल दी । जिससे वह अपने अप्सरा-रूपको प्राप्त होकर पुनः स्वर्गं चली गयी ॥१०७॥ बादमें कौसल्या तथा सुमित्राने अपने-अपने भागमेंसे

आसंस्तासां दोहदास्ते पुत्राणां भाविकर्मभिः । पुत्राणां भाविकर्माणि विदुस्ते दोहदैर्जनाः ॥१०९॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नका जन्म)

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्नतरे भूमिर्दशास्यादिप्रपीडिता । ब्रह्मणा प्रार्थयामास विष्णुं सोऽपि तदाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
भूम्यामवतरिष्यामि भवन्तु कपयः सुराः । गंधर्वां दुन्दुभीनाम्नी भूम्याः कार्यार्थसिद्धये ॥ २ ॥
मंथगऽग्रे भवत्वद्वा राज्यविघ्नार्थसिद्धये । पश्चात्पुनर्द्वापिरांते कुब्जात्वं कंसमंदिरे ॥ ३ ॥
अथ विष्णुश्चेत्रमासि नवम्यां मध्यगे रवौ । सृतिकागृहमध्ये उथ कौसल्यायाः पुरोऽभवत् ॥
चतुर्भुजः पीतवासा मेघश्यामो महाब्रुतिः ॥ ४ ॥

साऽपि दृष्ट्वा बालभावं प्रार्थयामास तं हरिम् । ततो जातस्तदा बालः ऋणादुक्मविभूषितः ॥ ५ ॥
हेमवर्णः कंजनेत्रश्चन्द्रास्यस्तपनप्रभः । ततः सुमित्रापुरतः शेषोऽभूद्वालरूपघृक् ॥ ६ ॥
आविर्भूतौ द्वौ यमलौ कैकेय्याः शंखचक्रके । एवं ते जनिता बालाश्चत्वारः समये शुभे ॥ ७ ॥
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाऽपतत् । जातकर्मादिसंस्कारान् गुरुणा नृपतिस्तदा ॥ ८ ॥
कारयामास विधिवज्ञनृतुर्वारियोषितः । ज्येष्ठं रामं तु कौसल्यातनयं प्राह वै गुरुः ॥ ९ ॥
सुमित्रातनयं नाम्ना लक्ष्मणं गुरुरब्रवीत् । ततो भरतशत्रुघ्ननामनी प्राह वै गुरुः ॥ १० ॥

योडा-योडा पायस कैकेयीको दे दिया । इस प्रकार सबने पायस खाया और सबने गर्भ धारण किया ॥ १०८ ॥
भावी पुत्रोत्पत्तिके गर्भचिह्नोंको देख तथा सुनकर होनहार पुत्रोंके द्वारा किये जानेवाले अद्भुत कार्योंको लोग पहले ही समझ गये ॥ १०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इसी बीच रावण आदि दुष्ट राक्षेसोंसे पीडित होकर पृथ्वी माता भग्नाके साथ विष्णुभगवानुके पास गयीं और उनसे अपनी तथा धर्मकी रक्षाके लिये प्रार्थना की । तब विष्णुभगवानने कहा कि 'मैं तुम्हारे लिये भूमिपर अवतार लूंगा' । ऐसा कहकर उन्होंने देवताओंसे कहा—हे देवताओ ! तुम लोग मेरी सहायताके लिये वानररूपसे पृथ्वीपर जन्म लो । दुन्दुभी गंधर्वी पृथ्वीकी रक्षाके लिये पहिलेसे जाकर मन्त्रराहृपसे जन्म ले और रामके राज्याभिषेकमें विघ्न डाले । द्वापरके अन्तमें वही जाकर कंसके यहाँ कुब्जा बनेगी ॥ १-३ ॥ कुछ काल बाद साक्षात् विष्णुभगवान् चेत महीनेके कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको मध्य सूर्यके समय प्रसूतिगृहमें कौसल्याके सामने चार भुजाधारी पीताम्बर पहिने हुए यष्टिकृतुकालीन मेघके समान श्यामशरीर तथा तेजस्वी रूपमें प्रकटे ॥ ४ ॥ कौसल्याने वह रूप देखकर भगवान्से बाल्यभाव स्वीकार करनेकी प्रार्थना की । तब भगवान् ऋण भरमें स्वर्णभिरणोंसे भूषित, सुवर्णके सदृश कान्तिसम्पन्न, कमलके समान नेत्र तथा चन्द्रतुल्य मुख एवं सूर्यके समान तेजस्वी बालक बन गये । बादमें सुमित्राके गर्भसे शेषावतार लक्ष्मणजी बालभावसे प्रकट हुए । फिर कैकेयीके गर्भसे विष्णुके शंखचक्र अवतार लेकर एक साथ भरत-शत्रुघ्न पंदा हुए । इस प्रकार वे चारों बालक शुभ समय, अच्छे लम्ब और शुभ नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥ ५-७ ॥ देवताओंने प्रसन्न होकर नगाढ़े बजाये और पुष्पवृष्टि की । राजाने गुह वसिष्ठसे बालकोंका जातकर्म (संतानके उत्पन्न होनेपर किया जानेवाला कर्म) आदि संस्कार विविष्यक करवाया । उस उत्सवपर वेश्याओं द्वारा अनेक प्रकारका नृत्य भी करवाया गया । वसिष्ठजीने कौसल्याके सबहे बड़े पुत्रका नाम राम रखा । सुमित्राके पुत्रका नाम लक्ष्मण और कैकेयीके दोनों पुत्रोंके नाम भरत तथा शत्रुघ्न

रमणाद्राम एवासौ लक्षणैर्लक्षणस्त्वति । भरणाङ्गरतश्चेति शत्रुघ्नः शत्रुतर्जनात् ॥११॥
अथ वृद्धिरे सर्वे लक्षणो गाधवेण हि । शत्रुघ्नो भरतेनापि चकार क्रोडनादिकम् ॥१२॥
रुक्मिकंकणमजीरन् पुरैस्ते विभूषिताः । केयुररशनाहारकुण्डलैरतिशोभिताः ॥१३॥
मृत्खलावद्वरुक्मादिनिर्मितेषु वरेषु च । दोलकेषु च ते सर्वे दोलिता रेजिरे सुखम् ॥१४॥
भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णान्यतिमहांति च । मुक्ताकलप्रलंबीनि शोभयंति सम बालकान् ॥१५॥
कंठे रत्नमणित्रातमध्यद्वीपिनखांचिताः । कर्णयोः स्वर्णसंपन्नरत्नार्जुनसुतालकाः ॥१६॥
सिंत्रानमणिमंजीरकटिमूत्रांगदेयुताः । स्मितवक्त्राल्पदशना इन्द्रनीलमणिप्रभाः ॥१७॥
अगणे रिंगमाणाश्च संस्कारैः संस्कृताः शुभाः । ते तातं रंजयामासुर्मातैः शापि विशेषतः ॥१८॥
कौमल्या नृपतिशापि नानावस्थैः सुभृष्टाः । शोभयामामतुर्वालान्नाव्याघ्रनवादिभिः ॥१९॥
रामः स्वपितरं दृष्टा भोजनप्थ त्वगन्वितः । दुद्राव कवलं पात्राद्गृहीत्वा स पुनर्वहिः ॥२०॥
कौमल्या बालकं धर्तुं दुद्राव नृपतोदिता । न तस्याः करगथार्मीद्योगिनामप्यगोचरः ॥२१॥
परिवृत्य स्वयं रामः करेण मृदुलेन च । कौमल्यास्वे नृपास्येऽपि कवलावकरोन्मुदा ॥२२॥
एवं नानाकौतुकैश्च रजयामास गाधवः । नानाशिशुक्रीडनकंशेष्टिर्मुरधभाषितैः ॥२३॥
बालकुत्रिमयुद्धेश्च गमनेर्मुखन्तुवन्तः । पितरौ निजचारित्रैर्वहिनारोहणादिभिः ॥२४॥
ततस्ते बालकाः सर्वे वस्त्रालंकारभूषिताः । सभायां पितरं नत्वा तस्युः मिहामनोपरि ॥२५॥
अत्र पित्रोपनीतास्ते गुरुणा मुर्मानभिर्मुदा । गर्भान्संवत्सरे पष्टे जन्मतः पञ्चमे समे ॥२६॥
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राजो बालाधिनः पष्टे वैश्यस्यार्थाधिनोऽष्टमे ॥२७॥
रक्खा ॥ ८-१० ॥ मनोहर तथा आनन्ददायक होनेसे राम, जुभ लक्षणोंसे युक्त होनेसे लक्षण, प्रजाका भरण-
पोषण करनेमें निरुण होनेसे भरत और शत्रुघ्नाशक होनेसे वसिष्ठने उनका शत्रुघ्न नाम रक्खा ॥ ११ ॥ लक्षण
रामके साथ और शत्रुघ्न भरतके साथ खेलते हुए बहुते लगे ॥ १२ ॥ मुखणके कड़े तथा नृपुरोंसे भूषित
बाजूबन्द, हार, करधनों तथा कुण्डलोंसे सुशाभित, सौनेको सिकड़ियोंको गलेमें पहने हुए वे बालक सुखण-
षट्ठित, रत्नजटित तथा कंचनके सांकलोंमें बैठे हुए हिंदोलोपर जूलते हुए बहुत ही सुन्दर लगते थे ॥ १३ ॥ १४ ॥
जलाटस्थलमें बैठे हुए मुखणनिर्मित पीपलके पत्तेके आकारवाले एवं जिनके अग्रभागमें बड़े-बड़े मोती लटक
रहे थे, ऐसे सुन्दर आभूषणोंसे उन बालकोंकी शोभा और भी बढ़ी-चढ़ी दीखती थी । उनके कण्ठमें विविध
मणि तथा वधनखे सुर्जाभित हो रहे थे । कानोंमें कनकके बने हुए रत्नजटित कुण्डल लहरा रहे थे । सिरपर
चूंधराले बाल फहरा रहे थे । पाँवोंमें मणिमणिडित झाँझर झनझना रहे । हाथोंमें बाजूबन्द और कमरमें
करधनी खनखना रही थी । चन्द्रमाके सदृश जुध्र हास्य भरे मुखमें किरणोंके समान छोटे-छोटे दाँत चमचमा
रहे थे । इन्द्रनीलमणिके समान श्याम कान्तिवाले, अंगनार्दिमें चुटनोंके बल रोगते हुए, संस्कारोंसे
मन्दहृत और देखनेमात्रसे मन मोह लेनेवाले वे कुमार अपने माता-पिताके मनको मुग्ध करने लगे ॥ १५-१६ ॥
कौसल्या और राजा दशरथ भी अनेक प्रकारके वस्त्र तथा वधनखा आदि अलङ्कूरोंसे अपने बालकोंको
भूषित करने लगे ॥ १७ ॥ राम अपने पिताको यालमें भोजन करते देखते तो आकर उसमेंसे एक
ग्रास हाथमें लेकर बाहर भाग जाते । राजाके कहनेपर कौसल्या रामको पकड़नेके लिए जब दौड़ती तो
दोगियोंको भी अगम्य राम उनके हाथ नहीं आते थे । बादमें वे स्वयं धीरेसे आकर पीछेसे आनन्दपूर्वक
अपने कोमल हाथोंसे माता-पिताके नूहमें वह कौर रख देते थे ॥ २०-२२ ॥ ऐसी अनेक कौतुकयुक्त बालकीड़ा,
बालचेष्टा, मधुर-मनोहर भाषण, बालकोंके कृत्रिम युद्ध, नाना प्रकारकी चालें, मुखचुम्बन, और तरह-तरहकी
बनावटी सवारियोंपर सवार होकर राम आदि चारों बालक माता-पिताके मनको लुभाने तथा आनन्दित
करने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ कालान्तरमें सब बालक वस्त्र-आभूषण आदिसे भूषित हो पिताको प्रणाम करके
मन्मामें सिहासनपर बैठते लगे । तब राजाने ऋषियों द्वारा सानन्द उनका यज्ञोपवीत संस्कार करवाया ।

विद्विद्विश्रोपनयनमेवं शास्त्रेषु निर्णयः । गुरोरास्यात्सुभूहृते वेदान् सांगाश्चतुर्विधान् ॥२८॥
 चक्रुर्मुखोद्रतानेव बालाः शास्त्रादिकान्यपि । ब्रह्मचर्यसमाप्तौ ते तीर्थानि जग्मुरादरात् ॥२९॥
 सेनया मंत्रिसहिता वसिष्ठेन समन्विताः । पण्मासैः पुनरागत्य साकेतं विविशुर्मुदा ॥३०॥
 एवं ते मतिमन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिताः । पितरं रंजयामासुः पौरान् जानपदानपि ॥३१॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितात्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये सारकाण्डे रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

वृत्तीयः सर्गः

(ताङ्कावध-अहन्योद्धार तथा सीतास्वर्यवर)

श्रीशिव उवाच

एतिस्मन्तरे ऽयोध्यां विश्वामित्रो ययौ मुनिः । यज्ञसंरक्षणार्थाय राजानं मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥
 रामं च लक्ष्मणं चापि महां देहि कियद्विनम् । गुरुनामन्त्रय राजाऽपि प्रेषयामास तौ तदा ॥ २ ॥
 जग्मतुर्यज्ञरक्षार्थं गाधिजेन रथस्थितौ । ततः प्रहृष्टो गाधेयः स्थित्वा कामाश्रमे पथि ॥ ३ ॥
 प्रभाते स्नातयोः स्नातः प्रादाद्विद्यास्तयोर्मुदा । माहेश्वरीं च सद्विद्यां धनुर्विद्यापरः सराम् ॥ ४ ॥
 शास्त्रीमात्मीं लौकिकीं च रथविद्यां गजोद्भवाम् । अश्वविद्यां गदाविद्यां मंत्राद्बान्विसर्जने ॥ ५ ॥
 जुत्तृष्ट्रमविलोपिन्यौ वलामतिवलामपि । सर्वविद्यास्त्ववाप्याथ हयुमौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ६ ॥
 वनौकसां हितार्थाय जग्नतुस्तत्र राक्षसान् । पथि पांथजनध्वंसकारिणीं नाम ताटिकाम् ॥ ७ ॥
 राक्षसीमेकवाणेन जवान रघुनन्दनः । अप्सरा सा मनि पूर्वं शोभयामास कानने ॥ ८ ॥

शास्त्रोंका भी यही सिद्धान्त है कि ब्रह्मचर्चस् (ब्रह्मतेज) की इच्छावाले ज्ञानकुमारका यज्ञोपवीत गभसे छठे अथवा जन्मसे पाँचवें वर्ष होना चाहिये । बल चाहनेवाले ज्ञात्रियका छठे और घन चाहनेवाले वैश्य-कुमारका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष अवश्य हो जाना चाहिये ॥ २५-२७ ॥ तदनन्तर अच्छे मृहूतंमें गुरुके मुखसे राम-लक्ष्मणने सांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निश्चत, छन्द और ज्योतिष सहित) चारों वेद, छः शास्त्र (न्याय-वेदान्त वादि) और चौसठ कला (गाना-वजाना आदि) सीख-पढ़कर हृदयंगम कर लिया । ब्रह्मचर्चयकी समाप्तिके बाद राम आदि चारों भ्राता सेनाको, मन्त्रियोंको तथा गुरु वसिष्ठको साथ लेकर सहृदयं तीर्थयात्रा करने गये । छः महीनेमें वहसे लौट जाये और आनन्दपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे ॥ २८-३० ॥ इस प्रकार बुद्धिमान्, माता-पिताके परम भक्त, परम प्रिय तथा उनकी आज्ञापर चलनेवाले वे चारों बालक पिताको, नगरके लोगोंको तथा उस देशकी प्रजाको अनन्त सद्व्यवहारके द्वारा मोहित करने लगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये सारकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषा-टीकायां रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीशिवजी बोले—है पार्वती ! तदनन्तर मुनि विश्वामित्र अयोध्या आये और राजा दशरथसे कहा कि यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम तथा लक्ष्मणको आप मुझे दे दीजिये । गुरु वसिष्ठके समझानेपर राजाने न चाहते हुए भी दोनों बालकोंको उनके साथ कर दिया ॥ १ ॥ २ ॥ तदनन्तर गाधिपुत्र विश्वामित्रके स थरथपर बैठकर उनके यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम-लक्ष्मण चल दिये । रास्तेमें कामाश्रममें सबेरे स्नान करके प्रसन्न विश्वामित्रजीने स्नान किये हुए राम-लक्ष्मणको विविध विद्यायें सिखायीं । महेश्वर (शिवजीसे प्राप्त माहेश्वरी घनुर्विद्या, शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या, लौकिकी विद्या, रथविद्या, गजविद्या, अश्वविद्या, गदा चलानेकी विद्या, मन्त्रके द्वारा अस्त्रादिका आवाहन और विसर्जन करनेकी विद्या, भूख-प्यासको मिटानेवाली बला और अतिवला नामकी दो विद्याएँ तथा अन्यान्य सब विद्याओंको प्राप्त करके राम-लक्ष्मण बनवासी ऋषि-मुनियोंके सुखके लिये राक्षसोंको मारने लगे । रास्तेमें पथिकोंको मारकर खा जानेवाली ताड़का नामकी राक्षसीको रघुनन्दन रामचन्द्रने एक ही बाणसे मार डाला । सुन्दकी स्त्री और सुकेत्र यक्षकी

राक्षसी तस्य शापेन वभूव सुंदकामिनी । मारीचश्च सुवाहुश्च सुंदात्तस्याः सुतावुभौ ॥९॥
रामवाणाद्विस्तस्याः कीर्तिंता मुनिना पुरा । सा प्राप्य दिव्यदेहत्वं नत्वा रामं दिवं गता ॥१०॥
विश्वामित्राश्रमं रामो गत्वा तद्यज्ञधातकान् । राक्षसान्निशितैर्वाणैर्जघान रघुनन्दनः ॥११॥
प्रारम्भं रणयज्ञस्य चकार रघुनन्दनः । हत्वा सहस्रशः श्रीमान् राक्षसान् निशितैः शरैः ॥१२॥
क्षिप्त्वा वाणेन मारीचं शतयोजनसागरे । हत्वा सुवाहुं चैकेन वाणेन रघुसत्तमः ॥१३॥
स कृत्वा गाधियज्ञस्य समाप्तिं रघुनन्दनः । नाकरोद्रणयज्ञस्य समाप्तिं स्वकृतस्य च ॥१४॥
कालानलमरुपं तं दृष्ट्वा तत्त्वं प्रिहेतवे । श्रुत्वा जनकगेहे वै तत्कन्यायाः स्वयंवरम् ॥१५॥
रामलक्ष्मणसंयुक्तो मुनिस्तं नगरं ययौ । गमनावसरे मार्गे भर्तुशसां शिलां मुनिः ॥१६॥
मुनिस्तपिमहेन्द्रेण भुक्तां रहसि शोभनाम् । गौतमस्यांगनां नाम हहल्यां चावदत्तयोः ॥१७॥
त्रिव्याणा निर्मिताऽहल्या द्विमुखी गोःपरिक्रमान् । दत्ता पुरा गौतमाय विसुज्येन्द्रादिकान्सुरान् ॥१८॥
तत्स्मरन् मधवा वैरं तां भुक्त्वा मुनिशापतः । सहसा भगवान् जातः सहस्रलोचनस्ततः ॥१९॥
श्रीरामचन्द्रो निजपादपद्मस्पर्शेन तां गौतमघर्मपत्नीम् ।

निष्कल्मणामद्भुतरूपयुक्तां चकार देवः करुणासमुद्रः ॥२०॥

नदारूपा जनस्यानेऽहल्या गौतमशापतः । रामेण भ्रमताऽरण्ये स्वांप्रिस्पर्शात्समुदधृता ॥२१॥
कल्पभेदाद्वदंतीत्थं मनयश्चापि केचन । नैव शापोऽस्ति सर्वेषु कल्पेषु सत्कथा तथा ॥२२॥
ततस्तौ सुरगन्धर्ववर्षितौ पुष्पवृष्टिभिः । दत्त्वाऽहल्यां गौतमाय जग्मतुर्जाहृवीं ग्रति ॥२३॥

पुश्ची ताढ़का पहिले बड़ी सुन्दर अप्सरा थी । परन्तु बादमें जब उसने अगस्त्य कृष्णिको बनमें सताया, तब उनके शापसे वह कुरुण राक्षसों बन गयी । उससे मारीच और सुवाहु ये दो राक्षस पुत्र उत्पन्न हुए ॥३-५॥ 'रामके बाणसे तेरी गति होगी' ऐसा अगस्त्य मुनिने उससे कहा था । इसलिए रामवाणसे इस समय अमर तथा दिव्य शरीर धारण करके वह स्वर्गको चला गयी ॥१०॥ वहाँसे चल तथा विश्वामित्रके आध्रममें जाकर रघुनन्दनने यज्ञमें विघ्न डालनेवाले समरत राक्षसोंको अपने तीक्ष्ण वाणोंसे मार डाला ॥११॥ रघुनन्दन रामचन्द्रने वहाँ रणयज्ञ (युद्धरूपी यज्ञ) प्रारम्भ कर दिया । श्रीमान् रामने हजारों राक्षसोंको तीक्ष्ण वाणोंसे मारकर मारीचको एक वाणकी मारसे सौ योजन (चार सौ कोस) दुरीगर समुद्रमें फेंक दिया । उन्होंने दूसरे वाणसे मारीचके भाई सुवाहुको मार डाला ॥१२॥१३॥ विश्वामित्रजीके यज्ञको तो उन्होंने राक्षसोंको मारकर निर्विघ्न समाप्ति कर दी । परन्तु अपने द्वारा प्रारम्भ युद्धयज्ञकी समाप्ति नहीं की अर्थात् उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ ॥१४॥ श्रीरामको प्रलयकालीन अग्निके सदृश उग्र तथा युद्धसे अतृप्त देवकर मुनि विश्वामित्रने उनकी तृप्तिके लिए राजा जनकके यहाँ उनकी कन्याका स्वयंवर सुनकर राम-लक्ष्मणको लेकर जनकपुरको प्रयाण किया । चलते-चलते रास्तेमें मुनिने अहल्याको देखकर कहा कि यह मुनिवेषवारी इन्द्रके द्वारा भोगी गयी परमसुन्दरी गौतमकी स्त्री है । यह भेद विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणको वताया ॥१५-१७॥ इस मनोहर मुखवाली अहल्याको बनाकर ब्रह्माने पृथ्वीकी परिक्रमा करनेवाले गौतम कृष्णिको दे दिया किसी इन्द्रादि देवताको नहीं दी ॥१८॥ इन्द्रने उस वैरका स्मरण करके कपटसे एकान्तमें उसके साथ भोग किया । तदनन्तर गौतम मुनिके शापसे इन्द्र हजार भग (योनि) बाले हो गये । फिर प्रार्थना करनेपर गौतमकी कृपासे वे हजार नैववाले बन गये । अब विश्वामित्रके अनुरोधसे करुणानिधि एवं साक्षात् देवतास्वरूप रामचन्द्रने दया करके अपने चरणकमलके स्पर्शसे उस शिलास्वरूपिणी गौतमकी घम्पत्नी अहल्याको दोषसे मुक्त करके अति अद्भुत स्वरूपवाली सुन्दरी स्त्री बना दिया ॥१९॥२०॥ दण्डक बनके पास एक स्थानमें मुनिके शापसे शापित नदीरूपा अहल्याका अरण्यमें ऋग्मण करते हुए रामचन्द्रने अपने परम पवित्र चरणस्पर्शसे उद्धार कर दिया ॥२१॥ कुछ लोग इस कथको कल्पभेदसे मानते और कहते हैं कि सब कल्पोमें यह शापकी बात एक जैसी नहीं मिलती ॥२२॥ इसके बाद

रामं नौकां कांक्षमाणं नौकापो वाक्यमव्रवीत् ।

नाविक उवाच

आदावहं श्वालयित्वा पादरेणैस्तव प्रभो ॥ २४ ॥

पश्चान्नौकां स्पर्शयमि तव पादौ रघुद्वह । नोचेत्त्वत्पादरजसा स्पृष्टा नारी भविष्यति ॥ २५ ॥

श्वालयामि तव पादपङ्कजं नाथ दारुदृपदोः किमन्तरम् ।

मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते इति लोके हि कथा प्रथीयसी ॥ २६ ॥

अस्ति मे गृहिणी गेहे किं करोम्यपरां स्त्रियम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य विहस्य रघुनन्दनः ॥ २७ ॥

तेन संक्षालितपदो नौकां तामास्त्रोह सः । ततस्तोत्तरा जाह्नवीं ते मिथिलां मुनिभिर्युः ॥ २८ ॥

मिथिलायां समाहृताः कोटिशः पार्थिवा ययुः । चारणास्यादशास्योऽपि श्रुत्वाऽगच्छत्स्वमंत्रिभिः ॥ २९ ॥

अनाहृतः पृष्ठकेण सेनया परिवारितः । न ययौ पुत्रविरहाद्राजा दशरथस्तदा ॥ ३० ॥

अत्यादर्विंदेहेन समाहृतोऽपि भक्तिः । श्रीरामलक्ष्मणाभ्यां च विश्वामित्रो मनीश्वरः ॥ ३१ ॥

शनैर्मुदा स मिथिलां वहिश्रोपचनं ययौ । विश्वामित्रं समानेतुं जनको मन्त्रिभिः सह ॥ ३२ ॥

यावद्गन्तुं मनश्चके तावच्छःयः समाययौ । विश्वामित्रस्य तं दृष्ट्वा ननाम जनकस्तदा ॥ ३३ ॥

ततः शिष्यः करं धृत्वा जनकस्य करेण हि । नीत्वा रहसि प्रोवाच वचनं स्वगुरोः स्फुटम् ॥ ३४ ॥

त्वामाह गाधिजो राजन् राजो दशरथस्य हि । मया पुत्रौ समानीतौ दीर्घौ श्रीरामलक्ष्मणौ ॥ ३५ ॥

तौ सीतोर्मिलयोः पाणिग्रहणं हि करिष्यतः । पणीकृतं त्वया चापं रामोऽयं खण्डयिष्यति ॥ ३६ ॥

अतो वरविधानेन तौ पुरीं नेतुमर्हसि । एतद्वृत्तं चापभंगपर्यन्तं मा स्फुटं कुरु ॥ ३७ ॥

देवताओं और गन्धबोंने जिनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि की थी, ऐसे राम तथा लक्ष्मण गौतमको अहल्या सौंपकर जाह्नवी (गङ्गा) की ओर चल पड़े ॥ २३ ॥ गङ्गातटपर पहुंचकर रामचन्द्र पार उत्तरनेके लिये नाव खोज ही रहे थे कि इतनेमें एक नावबाला बोला—हे प्रभो ! हे रघुद्वह रामचन्द्रजी ! यदि आप कहें तो मैं पहिले आपके चरणकी धूलि धो लूँ, बादमें आपको नावपर बैठाकर पार उतार दूँ । वयोंकि ऐसा न करनेपर कहीं आपकी पदरज छूनेसे मेरी नाव भी स्वैरां न बन जाय । वयोंकि पत्यर और लंकडीमें कोई बहुत अन्तर नहीं होता । यह बात जगत्में प्रसिद्ध है कि आपके चरणकी रजमें जड़को भी मनुष्य बनानेकी सामर्थ्य हैं । इसलिये आपका चरण धोना आवश्यक है ॥ २४-२६ ॥ वयोंकि मेरे घरमें एक स्त्री है । अतएव मैं दूसरीको लेकर क्या करूँगा । इस अटपटे वाक्यको सुनकर आनन्दकन्द रामचन्द्र हँस पड़े ॥ २७ ॥ बादमें जब उस धीवरने पाँव धो लिया, तब रामचन्द्रजी मुनियोंके साथ नावपर सवार होकर गङ्गा पार हुए और वहांसि मिथिलापुरीकी ओर चले ॥ २८ ॥ मिथिलामें निमन्त्रित राजाओंका एक प्रकारका छोटा-सा समुद्र एकत्र हो गया था । रावण भी विना दुलाये चारणोंके मुखसे सुनकर ही सेना तथा मंत्रियोंसे घिरा हुआ पुष्पक विमानपर चढ़कर वहाँ जा पहुंचा । उस समय राजा दशरथ आदरतया भक्ति-पूर्वक जनकके द्वारा दुलाये जानेपर भी पुत्रविरहसे दुखी होनेके कारण नहीं आये थे । उसी समय मुनियोंके ईश्वर विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मणके साथ धीरे-धीरे आनन्दपूर्वक मिथिलाके बाहर एक उपवनमें जा पहुंचे । राजा जनक विश्वामित्रको लिवा लानेके लिए जाना ही चाहते थे कि विश्वामित्रका एक शिष्य वहाँ आ पहुंचा । उसको विश्वामित्रका शिष्य जानकर राजाने नमस्कार किया ॥ २९-३३ ॥ शिष्यने राजाका हाथ पकड़ तथा एकान्तमें ले जाकर अपने गुरुका भेजा हुआ सन्देश भलीभाँति कह सुनाया ॥ ३४ ॥ उसने कहा—गाधिपुत्र विश्वामित्रने कहा है कि मैं अपने साथ राजा दशरथके दो शूरवीर पुत्रों राम-लक्ष्मणको यहाँ ले आया हूँ ॥ ३५ ॥ ये दोनों सीता तथा उमिलाका पाणिग्रहण करेंगे और आपका पणीकृत घनुष रामचन्द्रजी तोड़ेंगे ॥ ३६ ॥ इसलिये वरको ले आनेके विधानसे इन दोनोंको नगरमें लाना चाहिये । जबतक बनुष भङ्ग न हो, तबतक यह वृत्तान्त किसीको न बताइएगा ॥ ३७ ॥ राजा

इत्युक्त्वा जनकं शिष्यः स्वगुरुं शीघ्रमाययौ । जनकोऽपि मुदा युक्तम्तृष्णीमेव पुरीं निजाम् ॥३८॥
 तोरणाद्यैः शोभयित्वा सैन्येन परिवेष्टितः । वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य सभार्यस्तैर्नृपैः सह ॥३९॥
 सुमेधादिप्रमदाभिनीनावाद्यर्मनोहरैः । विश्वामित्रांतिकं गत्वा नत्वा संपूज्य तं मुनिम् ॥४०॥
 अज्ञात इव तौ पृष्ठा श्रुत्वा तद्वृत्तमादरात् । वस्त्रालंकारभूपाद्यैः सत्कृत्य विधिवन्नृपः ॥४१॥
 गजयोस्तौ समारोप्य चामराद्यैः मुवीजितौ । विश्वामित्रेण मुनिना निनाय मिथिलां पुरीम् ॥४२॥
 ननृतुर्वरनार्यश्च तुष्टुवृत्तिन्दमागधाः । नेदुननीनामुवाद्यानि जगुस्ते तु नटादयः ॥४३॥
 तदा तौ हड्डमार्गेण जग्मतुश्चातिशोभितौ । श्रुत्वा च पुरनार्यश्च वीरौ श्रीरामलक्ष्मणौ ॥४४॥
 समागताविति मुदा जग्मतुश्चातिशोभितौ । कंजनेत्रैदेवशुस्तौ वर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४५॥
 तदा परस्परं प्रोचुः सीतायोग्यो वरस्त्वयम् । रामोऽस्माकं गेचते हि करोत्वेवं विधिस्तु सः ॥४६॥
 उमिलायास्तु योग्योऽयं लक्ष्मणोऽस्ति मुलक्षणः । अस्माकं सुकृतंरहा तयोरेतौ पती शुभा ॥४७॥
 श्रीरामलक्ष्मणां रम्यो भवतश्चोन्नमोन्नमौ । एवं तासां कामिनीनां वचनानि नृपात्मजौ ॥४८॥
 शुश्रूवतुः शुभान्येव हृष्वास्त्यौ तौ दर्दशतुः । ततस्ते मिलिताः सर्वे नृपाः प्रोचुः परस्परम् ॥४९॥
 एतादशो विदेहेन यदाॽस्मामिः समागतम् । तदोत्सवः कृतो नैव ह्यनयोः क्रियते कथम् ॥५०॥
 किमतःस्थेन राज्ञाऽय सीता रामाय साऽपिता । किमस्माकं समाहूय मानभंगोऽयनः कृतः ॥५१॥
 एवं तेषां नृपाणां च वचनानि नृपात्मजौ । जनको गाधिजश्चापि शुश्रूवुस्ते समततः ॥५२॥
 ततः शनैः शनैर्वीरौ गवाक्षैः स्त्रीभिरीक्षितौ । जग्मतुर्वाद्यवोपाद्यर्जनकस्य सभां प्रति ॥५३॥
 ततोऽवतरतुर्वीरौ गजाभ्यां मुनिना सह । तत्स्वयंवरशालायामुपविष्टुपु राजसु ॥५४॥

जनकजीसे यह कहकर शिष्य शोध अपने गुरुजोके पास लौट गया । राजा भी इस बातको मनमें रखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी मिथिला नगरीको तोरण तथा रग-विरंगी पताकाओं आदिसे सजवाकर गृहने, जरीकी झूल तथा सोनेके हौदेसे सुशोभित उत्तम एवं दर्शनीय हाथीको आगे करके सेना, सभी राजाओं, सुमेधा आदि स्त्रियों और अनेक प्रकारके मनोहर मांगलिक बाजे लेकर अपनी भायकि साथ विश्वामित्र मुनिके पास गये और उनको नमस्कार करके पूजा की ॥३८-४०॥ मुनिसे अनजानकी तरह उन दोनों बालकोंका परिचय पूछकर विधिवत् वस्त्र-आभूपणसे उनका सत्कार करके हाथयोंनर चढ़ाकर चमर ढुलवाते हुए जनकजी विश्वामित्रके साथ दोनों भाइयोंको मिथिलापुरीमें ले चले ॥४१॥४२॥ उस समय बहुनेरो वारांगनाएं सुन्दर नृत्य करने लगे । चारण तथा भाट लोग स्तुतिपाठ एवं जयजयकार करने लगे । नाना प्रकारके बाजोंके मधुर स्वरसे दसों दिशायें गूंज उठीं । गावकजन मनोहर गायन गाने लगे ॥४३॥ इस प्रकार शूरवीर तथा आत्म सुन्दर राम-लक्ष्मण बाजारकी सड़कोपर आ पहुँचे । उन्हें आते देख तथा औरोंसे सुनकर आनन्दके मारे पहिलेसे हां नगरक, सब स्त्रिये नगरके प्रधान दरबाजेपर, अपने-अपने घरकी छतोंपर, झरोखों और अटारियोंपर जा वैठी और अपने कमलसदृश नेत्रोंसे उन्हें बड़े चावसे देखती हुई उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥४४॥४५॥ फिर वे आपसम कहने लगीं कि ये राम सीताके योग्य वर हैं । हमको तो राम बहुत प्रिय लगते हैं । इस लिए ईश्वर भी वैसा ही करे तो अच्छा हो । ये शुभ लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मण उमिलाके योग्य वर हैं । हमारे भाग्यसे ये दोनों उत्तम, रमणीय तथा सुन्दर गात्रवाले राम और लक्ष्मण सोता तथा उमिलाके पति हों तो बहुत अच्छा हो । इस प्रकार उनके मनोहर बचनोंको सुनकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई ऊपर मुख उठाकर उन्हें देखने लगे । बादमें वे सब राजे परस्पर कहने लगे—॥४६-४७॥ जब हम सब यहाँ आये, तब तौ राजा जनकने ऐसा उत्सव नहीं किया । अब इन बालकोंके लिये ऐसा बयों किया ॥५०॥ राजाने कहीं चुपकेसे सीता रामको तो नहीं दे दी है ? ऐसा ही था तो हम लोगोंको बुलाकर अपमानित क्यों किया गया ॥५१॥ उनकी बातें राम-लक्ष्मण, राजा जनक तथा विश्वामित्रजीने भी सुनी ॥५२॥ इधर झरोखोंमें वैठी हुई स्त्रियोंके द्वारा अबलोकित वे दोनों दीर गाने एवं बाजेकी घन्ति

विश्वामित्रानुगौ तौ हि मुनिशालां प्रजमतुः । ऋद्धाया मुनिशालायां मुनेरग्रे निषीदतुः ॥५७॥
 एवं सभायामृद्धायां राजा कल्याप्रतिग्रहे । प्रतिज्ञातं मम धनुस्तत्सज्ज त्वमुपस्थितम् ॥५८॥
 यदाऽधीता धनुविंद्या मत्तः परशुधारिणा । तदा दत्तं मया तस्मै धनुस्त्रिपुरदाहकम् ॥५९॥
 तेनैकविंशद्वारं हि निःक्षत्रा पृथिवी कृता । सहस्रबाहुनिंहतः स्वपितुर्वातिकारणात् ॥६०॥
 तन्मैथिलांगणे स्थाप्य जामदन्यो नृपं ययौ । अश्ववत्तद्वनुः कृत्वा जानकी क्रोडनं व्यधात् ॥६१॥
 जामदन्यस्तेन सीतां ज्ञात्वा लक्ष्मीं तदिच्छया ददौ नृपं पणार्थं तद्वनुरन्यैर्दुरासदम् ॥६२॥
 पणीकृतं धनुस्तच्च विदेहेन स्वयम्बरे । ततः सभायामृद्धायां जनकः प्राह शंकितः ॥६३॥
 संस्थाप्य राजां पुरतस्तन्मे चापमनुचमम् । शस्त्रागारात्समानीतं वृष्टेः पंचशतैस्तु यद् ॥६४॥
 सीतास्वयंवरार्थं यन्न्यस्तं परशुधारिणा । नृपः प्राह सभामध्ये यो वीरस्त्वद्य सदसि ॥६५॥
 करिष्यति धनुः सज्जं तं वै सीता वरिष्यति । तत्स्य वचनं श्रुत्वा धनुर्दृष्टाऽचलोपमम् ॥६६॥
 अधोमुखास्तदा सर्वे वभूवुः पाथिवोत्तमाः । केचिद्भूमेः समुद्रोदुं धनुः शक्ता न चाभवन् ॥६७॥
 भूमेरुच्चालिते केचिदध्यं नेतुं न चाशकन् । सर्वेऽप्युच्चालने तस्य नृपाः शक्ता न चाभवन् ॥६८॥
 सज्जीकारः कुतस्तस्य मनसाऽप्यविचितितः । धनुः सज्जीकृतौ सर्वाङ्गापान् ज्ञात्वा पराङ्मुखान् ॥६९॥
 तदातिगर्वसंरूढः सभायां रावणोऽत्रवात् । धनुषः सञ्चितिं गत्वा विहसन् जनकं प्रति ॥७०॥
 येन वै निर्जिता देवास्त्रेलोक्यं स्ववशे कृतम् । आन्दोलितो भुजामिहिं कैलासो येन वै मया ॥७१॥

आदिके साथ धौरे-धीरे राजा जनकके सभामण्डपमें जा पहुँचे ॥५३॥ वहाँ वीर राम-लक्ष्मण तथा मुनिगण हात्रियोंसे नीचे उत्तरे । पश्चात् सभामण्डपमें राजाओंके यथास्थान बैठ जानेपर विश्वामित्रजीके साथ जाकर वे बालक भी मुनिमण्डपमें मुनिके आगे बैठ गये ॥५४॥ ५५॥ इस प्रकार सभाके भर जानेपर कल्यादानके लिये नियत किये हुए धनुषगरज्या (तीत या डोरी) चढ़ानेके लिये राजाओंसे राजा जनकमे कहा ॥५६॥ श्रीशिवजी कहते हैं—हे पावंती ! जब परशुरामजीने मुझसे धनुविद्या प्राप्त की, उस समय मैंने उनको वह त्रिपुरको जलानेवाला धनुष दिया था ॥५७॥ उसके द्वारा उन्होंने इकोस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर डाला और अपने पिताके घातक सहस्रबाहुको भी उसीसे मारा ॥५८॥ तदनन्तर परशुरामजी उस धनुषको राजा जनकके आगनमें रख आये । वचपनमें जानकीजी उस धनुषको लकड़ीका धोड़ा बनाकर खेला करती थीं ॥५९॥ इस व्यवहारसे परशुराम सीताको लक्ष्मी समझने लगे और इसी अभिप्रायसे हर एकके लिये दुर्लभ वह धनुष राजा जनकको प्रतिज्ञापालनार्थ दे दिया ॥६०॥ तदनुसार विदेहने उस धनुषको सीतास्वयम्बरमें प्रणकी जगहपर नियत किया । पश्चात् भरी सभामें सशंक भावसे जनकजीने उस भेरे सर्वोत्तम धनुषको सबके सामने रखकर राजाओंको अपनी प्रतिज्ञा कह सुनायी । वह धनुष शस्त्रागारसे पांच सौ बैलों द्वारा खिचवाकर राजा जनकने सीता-स्वयंवरके लिये वहाँ स्थापित किया था । भरी सभाके मध्यमें राजा जनकने राजाओंसे कहा—'जो राजा इन सभासदोंके सामने इस धनुषको सज्जित करेगा, उसीको सीता वरेगी ।' राजाके वचनको सुन तथा पर्वतके समान अचल उस धनुषको देखकर सबके सब राजाओं तथा महाराजाओंने मुख नीचे/कर लिया । उनमेंसे कुछ तो उस धनुषको जमीनसे तनिक भी नहीं उठा सके ॥६१-६५॥ कुछ लोगोंने कुछ ऊचा /भी किया तो जमीनसे बिल्कुल नहीं उठा सके । बादमें सबके सब मिलकर उठाने लगे तो भी वह जमीनसे पूरा नहीं उठा । तब फिर उसपर डोरी चढ़ाना तो और भी कठिन काम था । सभामें धनुष चढ़ानेसे सब राजाओंको पराङ्मुख देखकर रावण गवके साथ धनुषके पास गया और हँसकर राजा जनकसे कहने लगा—॥६६-६८॥ हे राजन् ! जिस रावणने समस्त देवताओंको जीत लिया है, जिसने तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया है तथा अपनी दो ही भुजाओंसे जिसने शिवजीके निवासस्थान कैलास पर्वतकी हिला दिया है, उस रावणका यदि तुम राजाओंसे भरी सभामें बल देखना चाहते

तस्य मे जनकाद्य त्वं बलं पार्थिवसंसदि । द्रष्टुमिच्छसि किंत्वस्मिन् लघुचापे त्रिषोपमे ॥७०॥
 एवं वदन् दशास्यः सः श्रो भूत्वा महद्वनुः । गृहीतुं वामहस्तेन चालयामास वै तदा ॥७१॥
 न तच्चचाल किञ्चिच्च तदा दक्षिणसत्करम् । पुरः कृत्वा गृहीतुं तच्चालयामास वै पुनः ॥७२॥
 न तच्चचाल तदपि तदाश्र्वयेण रावणः । भुजाभ्यां चालयामास तदा चार्षं चचाल न ॥७३॥
 एवं क्रमेण सर्वाभिर्भुजाभिश्चालयन् धनुः । विशद्वैर्भिरेकदेशं चापस्योध्यं चकार सः ॥७४॥
 एकोनविंशद्वैर्भिश्च घृत्वा चैव महद्वनुः । गुणं भृभ्यां निपतितं गृहीतुं हि दशाननः ॥७५॥
 किञ्चिद्भूत्वा विनश्चः स दोष्णा जग्राह तं गुणम् । एतस्मिन्नांतरे तच्च पपात तद्धृदये धनुः ॥७६॥
 न तद्विश्चतिभुजाभिश्च चचाल हृदयाद्वनुः । तदा सभायाम् वास्यः पपात स दशाननः ॥७७॥
 मुकुटः परितो भूमौ मुक्तकच्छोऽप्यभूत्तदा । तदा विजहसुः सर्वे सभायां पार्थिवोत्तमाः ॥७८॥
 तदा प्राणांतिकं चासीद्रावणस्य सभांगणे । अक्षीणि भ्रामयामास लालास्येभ्यो विनिर्ययौ ॥७९॥
 तदा तं वेष्टयामासु मन्त्रिणो राक्षसास्तदा । धनुरुच्चालने शक्तास्तेऽभवन्नैव संसदि ॥८०॥
 सदस्त्रेषु दशास्यः स विष्टामूत्रं तदाऽकरोत । ततः सभायां जनकः पुनः प्राहातिशंकितः ॥८१॥
 कोऽपि वीरोऽस्ति भूमौ न किं निर्वारं हि भूतलम् । चेदस्ति कश्चिन्सदसि तहिं सोऽद्य सभांगणे ॥८२॥
 जोवदानं करोत्वस्मै दशास्याय नृपाग्रतः । इति वाक्यशशाधातभिन्नौ तौ रामक्षमणौ ॥८३॥
 ददर्शतुर्गाधिजस्य मुखं तौ स्फुरितभ्रुवौ । विश्वामित्रस्तदा प्राह राम चोक्तिष्ठ राघव ॥८४॥
 किमतं रावणस्याद्य त्वं पश्यसि सभांगणे । जीवयैनं राक्षसेन्द्रं सज्जं कुरु धनुस्त्वदम् ॥८५॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स राघवः । तदोत्थायासनाद्वेगात्प्रणनाम मुनीश्वरम् ॥८६॥
 निष्कास्य कंठाद्वारादीन् कटिं वद्ध्वा तदा प्रभुः । मुकुटादि द्रुढं कृत्वा शनैः प्राप सभांगणम् ॥८७॥

हो तो भले ही देख लो, किन्तु इस तिनके के समान हल्के धनुषमें क्या बीरता देखोगे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ऐसा कह कर दशमुख रावणने उस बड़े भारी धनुषको पहिले अपने वायें हाथसे ही हिलाना चाहा ॥ ७१ ॥ लेकिन वह तनिक भी नहीं हिला । तब उसने दाहिने हाथसे पकड़कर हिलाना चाहा, तिसपर भी जब वह नहीं हिला, तब रावणको बड़ा आश्चर्य हुआ और एक साथ दोनों हाथोंसे उठाना चाहा । फिर तीनसे, फिर चारसे इस प्रकार करते-करते जब वीसों भुजायें एक साथ लगा दीं, तब कहीं वह एक ओरसे कुछ ऊँचा हुआ ॥ ७२-७४ ॥ तब उसने उन्होंसे उस महान् धनुषको सम्हाला तथा वीसवीं भुजासे जमीनपर लटकती हुई ताँतको पकड़कर ज्यों ही उपरको उठाना चाहा, त्यों ही वह धनुष उलटकर उसकी छातीपर गिर पड़ा ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तब वीसों हाथोंसे भी रावण उस धनुषको अपनी छातीपरसे नहीं हटा सका और उपर मुख किये पृथ्वीपर घडामसे गिर पड़ा ॥ ७७ ॥ उसके सिरका मुकुट दूर जा गिरा और घोतीकी लांग खुल गयी । यह देख सबके सब राजे खिलखिलाकर हँस पड़े ॥ ७८ ॥ रावण बेचारेके पसोना निकलने लगा, औसे धूमने लगीं और मुखसे लार गिरने लगी ॥ ७९ ॥ उसके सब मन्त्रियों तथा संनिकोने आकर धेर लिया, परन्तु उन सबसे भी धनुष नहीं उठा ॥ ८० ॥ पहिने हुए सुन्दर वस्त्रोंमें रावणका मल-मूत्र निकल पड़ा । रावण जैसे बीरकी यह दशा देख राजा जनकको और भी शंका हुई और वे घबड़ाकर कहने लगे— ॥ ८१ ॥ क्या कोई भी बीर पुरुष इस भूतलपर नहीं रहा ? क्या पृथ्वी वीरोंसे शून्य हो गयी ? यदि कोई हो तो इस सभामें राजाओंके सामने रावणको जीवनदान देकर बचाये । उनके इस वाक्यरूपी वाणसे पीड़ित होकर राम तथा लक्ष्मण जिनकी भौंहें ओषधके मारे फड़क रही थीं, विश्वामित्रके मुखकी ओर देखने लगे । तब विश्वामित्र बोले—हे राघव ! खड़े हो जाओ और इस रावणके प्राण बचाओ । तुम्हारे देखते रावण मर रहा है । सो ठीक नहीं है । इसे बचाकर धनुषको भी सज्जित करो ॥ ८२-८५ ॥ मुनिके वाक्य सुन तथा बहुत अच्छा कहकर राम तुरन्त आसनसे उठ खड़े हुर और मुनिको प्रणाम किया ॥ ८६ ॥ उन्होंने गलेमेंसे हार आदि आभूषण उतारकर रख दिये, कमर्को कस लिया,

तं राममागतं दृष्टा जनाः सर्वेऽतिविस्मिताः । चकिताः पार्थिवाः सर्वे ददृशुनेत्रपंकजैः ॥८८॥
 परस्परं तदा प्रोचुः किंमृढोऽस्ति शिशुस्त्वयम् । यत्रास्माभिः स्थितं तृष्णीं तत्रायं किं करिष्यति ॥८९॥
 केचिदाहुर्दशास्यं हि द्रष्टुं वालः समागतः । केचिद्चुर्वल्लेष्टा क्रियते शिशुनाऽत्र हि । ९०॥
 केचिद्चुः किमर्थं हि हारा मक्तास्त्वनेन हि । केचिद्चुर्गाभिजेन चापं प्रति सुयोजितः ॥९१॥
 केचिद्चुर्वर्वेष्टुदथा चोदितः किं शिशुस्त्वयम् । वधार्थं चापघातेन विश्वामित्रेण राघवः ॥९२॥
 केचिद्चुर्वलं त्वस्य मुनिनाऽत्र निरीक्षितुम् । चोदितोऽस्त्वयत्र श्रीरामशापेऽयं किं करिष्यति ॥९३॥
 एवं नानाविधांस्तकान्यावत्कुर्वन्ति पार्थिवाः । तावद्दृष्टाऽग्रतो रामं जनकः प्राह गाधिजम् ॥९४॥
 किमर्थं प्रेषितस्त्वत्र मुने वालः सभांगणे । लत्रैते रावणाद्यात्र नृपाः सर्वेऽपि कुणिठताः ॥९५॥
 तस्मिंश्च त्वयं वालः किमागत्य करिष्यति । यस्य शिष्यवाक्येन पूर्वं चाहं प्रबोधितः ॥९६॥
 तत्सर्वं तु मृष्टैवाद्य चापाग्रे मुनिमत्तम् । कायं वालः कोमलांगः व्येदं चापं सुदूर्धरम् ॥९७॥
 किं चातकस्त्रृपाक्रांतः सागरं शोपयिष्यति । एतस्मिन्नन्तरे सर्वाः सुमेधाद्याः स्त्रियश्च ताः ॥९८॥
 द्विजराजानन चारुदोर्दण्डद्वयशोभितम् । हेमवणोपिमरुचिं श्रृंखलानृपुरांश्चिणम् ॥९९॥
 श्रृंखलाकंककवरद्वयशोभितसत्करम् । दिव्यकुण्डलमुकुटरत्नालंकारशोभितम् ॥१००॥
 सुजंघं सुपदं शूरं सुजानुं सुन्दरोदरम् । सुस्कंघं सुहनुं कंचुकंठं त्रिवलिशोभितम् ॥१०१॥
 स्मितास्यं कोमलोष्टुं च सुदंतावलिराजितम् । सुनासं सूकपोलं च कञ्जपत्रायितेक्षणम् ॥१०२॥
 सुश्रुभावं च सुस्निग्धं कुंचितालकशोभितम् । मुक्तामाणिक्यरत्नादिनानाऽलकारशोभितम् ॥१०३॥

मुकुटको अच्छी प्रकार वांघ लिया और बीरेसे सभाके बीचमें आ खड़े हुए ॥ ८७ ॥ रामको वहाँ खड़े देख सब लोग वडे विस्मयमें पड़ गये और चकित होकर सबके सब राजे उन्हें अपने कमलसदृश नयनोंसे देखते हुए परस्पर कहने लगे कि यह वालक कौसा मूर्ख है । अरे, जहाँ हम लोगोंको चुप होना पड़ा, वहाँ यह क्या करेगा ? ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ कोई कहने लगा कि यह वालक केवल रावणको देखनेके लिए आया है । किसीने कहा कि यह वालक तो मानों खेलने गया हो, ऐसा लगता है ॥ ९० ॥ कोई बोला- तब इसने गलेसे हार तथा माला क्यों उतार दी है ? किसीने उतार दिया कि इसको विश्वामित्रने धनुष उठानेके लिए भेजा है ॥ ९१ ॥ कोई बोला कि इस वालकको विश्वामित्रने शत्रुतावश भेजा है, जिससे यह धनुषसे दबकर मर जाय ॥ ९२ ॥ दूसरोंने कहा कि नहीं, मुनिने इसका बल देखनेके लिए भेजा है । परन्तु राम इस धनुषके विषयमें क्या कर सकता है ? ॥ ९३ ॥ इस प्रकार राजा लोग अनेक तरहके तकनीकितकं कर ही रहे थे कि रामको देखकर जनकने विष्वामित्रमें कहा—हे मुनिराज ! आपने इस वालकको क्यों भेजा है ? जिस धनुषके विषयमें बड़े-बड़े राजे-महाराजे तथा रावणकी भी शत्ति कुणिठत ही गयी, वहाँ यह वालक जाकर क्या करेगा ? जो आपने पहले अपने शिष्यके हारा कहला भेजा था, सो सब आज इस धनुषके सामने झूठा होगा । क्योंकि कहाँ यह कोमल अंगका वालक और कहाँ यह अति दुर्वर्ण तथा महान् धनुष । चातक चाहे कितना ही प्यासा क्यों न हो, तो भी क्या वह समुद्रको सोख सकता है ? इसी समय सुमेधा आदि स्त्रियें झरोखोंसे, जालियोंसे, चौकों और छतोंपरसे सुन्दर तथा कोमल अङ्गवाले, कमलके सदृश नेत्रवाले, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाले, बड़ो-बड़ी भुजाओंसे शोभित, सुवर्णसदृश कान्तिसम्पन्न, नृपुर और सिक्कियोंको पावर्मं पहिने ॥ ९४-९५ ॥ जिनके हाथोंमें सिकड़ी और कड़े शोभित हो रहे थे । जिनके सिरपर दिव्य मुकुट, कानोंमें दिव्य कुण्डल, हृदयपर रत्न तथा मणियोंके विशाल हार झलक रहे थे, पेट तथा ललाटमें त्रिवली पड़ी हुई थी । शंखके समान कंठ देखनेमें वड़ा ही अच्छा लगता था । जिनकी चिकनी ठोड़ी, कोमल कपोल, हँसता हुआ मुखचंद्र, अनारकी पंक्तिके समान दाँत, सुन्दर लम्बो और पतली नाक तथा लाल-लाल होंठ थे । माणिक्य, मोती, रत्न तथा हीरों आदिसे जड़े हुए अनेक अलंकारोंसे अलंकृत,

मुक्तारत्नपुष्पमालान्यस्तमप्यतिशोभितम् । न्यस्तहारं न्यस्तवस्त्रं बद्धपीताम्बरान्वितम् ॥१०४॥
 दिव्यमुद्रागुलिलसत्पंकजद्वयसत्करम् । एवं दद्वा स्त्रियो रामं सभाङ्गणविराजितम् ॥१०५॥
 न्यस्तकोदंडतूणीरं शिवचापाभिसंमुखम् । प्रार्थयामासुस्ताः सर्वा उधर्वस्या उधर्वसत्कराः ॥१०६॥
 पश्यन्त्यो गगने शंखुं मोहान्नारायणं विधिम् । साक्षान्नारायणं रामं न ज्ञात्वा ताथैव स्त्रियः ॥१०७॥
 हे शंभो हे रमाकान्त हे विधेऽस्मत्पुराकृतैः । ब्रतदानादिपुण्यैश्च चापं सज्जीकरोत्वयम् ॥१०८॥
 युष्माभिनः सुकृतैश्च कर्तव्यं पुष्पबद्धनुः । अद्यास्य कंठदेशेऽत्र मालां सीता दधात्वियम् ॥१०९॥
 नो भवत्वद्य नेत्राणां साफल्यं दर्शनादिह । सीतया रामचंद्रस्य वेदिकायां स्थितस्य हि ॥११०॥
 एतस्मिन्नंतरे सीता रामं दद्वा सभांगणे । दिव्यप्रासादसंरूढा सखीभिः परिवेष्टिता ॥१११॥

प्रोच्चचालासनाद्वेगादानंदस्वेदसंप्लुता ।

सख्यास्तुलस्याः कंठे स्वां दोर्लतां क्षिप्य सादरम् ॥११२॥

अब्रवीन्मधुरं वाक्यं रत्नालंकारमंडिता । किंपणोऽत्र कृतः पित्रा मम शत्रुस्वरूपिणा ॥११३॥
 कव रामः सुकृमारांगः क्वेदं चापं नगोपमम् । हा विधे किं करोत्यद्य किमस्त्यंतर्गतं तव ॥११४॥
 रामाद्विनाऽन्यं पुरुषं मनसाऽहं न रोचये । यदि तातो वलादन्यं मां दास्यति तदा खहम् ॥११५॥
 त्यजामि जीवितं त्वद्य प्रासादपतनादिना । हे शंभो हे विधे दुर्गे हे सावित्रि सरस्वति ॥११६॥
 हे गायत्रि स्वरे भानो मधवन्यम तोयप । हे कुवेरानल रमे हे विष्णो खगनाथक ॥११७॥
 हे फणींद्र निशानाथ हे सर्वे निर्जरादयः । युष्माकं प्रार्थयाम्यद्य प्रसार्य करपल्लवम् ॥११८॥
 सर्वैरेतन्महत्वापां करणीयं तु पुष्पबद्ध । प्रवेशनीयं युष्माभिः श्रीरामभुजदंडयोः ॥११९॥
 चतुर्दश वत्सराणि मुनिवृत्याऽनुवर्तिनी । विचरामि वने चाहं धनुः सज्जं करोत्वयम् ॥१२०॥

पत्रा, लाल, पुखराज, मुक्ता तथा हरेपीले अनेक रङ्गको पुष्पमालाओंसे मनोहर, पीताम्बर आदि सुन्दर वस्त्रोंको पहिने हुए, शहूं चक्र गदा पद्म आदि शुभ चिह्नोंसे चिह्नित करकमलवाले, सभामण्डपके बीच खड़े, दोनों कन्धोंपर धनुष और तूणीरको टाँगे तथा शिवधनुषके सामने मुख किये हुए रामको देखकर उन्हें साक्षात् नारायण न समझती हुई वे महिलायें आकाशमें स्थित शिव, विष्णु और ब्रह्माको देख उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगीं—॥१००-१०७॥ हे शंभो ! हे रमाकान्त ! हे ब्रह्मन् ! हमारे पूर्वोपार्जित ब्रत-दानजन्य पुण्योंसे यह बालक धनुष चढ़ानेमें समर्थ हो ॥१०८॥ आप लोग हमारे पुण्यप्रतापसे इस धनुषको पुण्यके समान हल्का बना दें । जिससे हमारी सीता आज इनके गलेमें बरमाला ढाले ॥१०९॥ हमलोग सौतासहित रामचन्द्रको विवाहकी वेदीपर बैठे देखकर अपने नेत्रोंको सफल करें ॥११०॥ उसी समय वस्त्रों तथा अलङ्घारोंसे सुणोभित सखियोंके साथ दिव्य भवनकी छतपर बैठी हुई सीता रामको सभाके बीच खड़े देख आनन्दके स्वेदसे परिप्लुत होकर शीघ्र आसनसे उठ खड़ी हुईं । अपनी प्रिय सखी तुलसीके गलेमें हाथ ढाल तथा तनिक अगाड़ी बढ़कर आदरपूर्वक यह मधुर वाक्य बोलीं—शत्रुस्वरूप मेरे पिताने यह केसी प्रतिज्ञा की है ? कहाँ ये कोमल अङ्गवाले बालक राम और कहाँ यह पर्वतके समान भारी तथा कठिन धनुष । यह इनसे कैसे चढ़ सकेगा ? हा ईश्वर ! तुमने यह बया किया और क्या करनेका विचार है ? चाहे जो हो, मैं रामको छोड़कर दूसरे किसीको नहीं बर्खाऊंगी । यदि मेरे पिता मुझे दूसरे किसीको देंगे तो मैं महलपरसे गिरकर अयवा विष आदिके द्वारा शीघ्र प्राण त्याग दूँगी । हे शंभो ! हे विधे ! हे दुर्ग ! हे सरस्वती ! हे गायत्री ! हे स्वरे ! हे सूर्य ! हे इन्द्र ! हे जलपति वरुण ! हे कुवेर ! हे अम्बे ! हे रमे ! हे विष्णो ! हे गरुड़ ! हे फणीन्द्र ! हे चन्द्र ! हे समस्त देवताओं ! मैं आँचल फैलाकर प्रार्थना करती हूँ कि आप सब इस धनुषको फूलके समान हल्का बना दें और रामचन्द्रके भुजदण्डमें प्रवेश करके उन्हें बल प्रदान करें । जिससे राम धनुष चढ़ानेमें समर्थ हों और मुनिवृत्ति धारण करके रामकी

एवं नानाविधैर्वाक्यैः सीता देवानतोषयत् ।

एवं प्रासादसंस्थायाः सीताया विविधानि च ॥१२१॥

तथा तासां हि नारीणां नृपाणां जनकस्य च ।

वाक्यानि शृण्वन् श्रीरामः किंचित्कृत्वा स्मिताननम् ॥१२२॥

ययौ चापं नमस्कृत्य कृत्वा तं च प्रदक्षिणम् । पुनर्नेत्वा शिवं ध्यात्वा गुरुं दशरथं नृपम् ॥१२३॥
कौसल्यां च गुरुं ध्यात्वा वामहस्तेन तद्धधौ । सब्यहस्तेन चापस्य गुणं धृत्वा वृत्तमः ॥१२४॥
वामहस्तेन नग्नं तच्चकार सदसि क्षणात् । तदा निनेदुर्वाद्यानि तुष्टुवुर्वन्दिमागधाः ॥१२५॥
एतस्मिन्नन्तरे रामो वामहस्तवलाद्बुद्धुः । मध्येऽभवत्विखंडं तच्छैवं प्राचीनमुच्चमम् ॥१२६॥
चापभज्ञान्महानादस्तदाऽभृद्गणनांगणे । चकंपे धरणी त्वं चालिङ्ग्यन्मां भयादृदृढम् ॥१२७॥
चुक्षुभुः सागराः सर्वे निनेदुस्ता दिशो दश । तारा निषेतुर्धरणीं शिरः शेषोऽप्यचालयत् ॥१२८॥
ववुर्वाताः सुगन्धाश्च देवास्ते गगने स्थिताः । वादयामासुर्वाद्यानि पृष्ठौघैः समवाकिरन् ॥१२९॥
स्वर्वेश्या ननृतुः खे हि देवास्तोषं प्रपेदिरे । तदा निनेदुः सदसि भेयो दुंदुभयो वराः ॥१३०॥
नववाद्यस्वनाः सर्वे वभृत्वर्जयनिःस्वनाः । ननृत्वर्वारनार्यश्च तुष्टुर्मागधादयः ॥१३१॥
स्त्रियो गवाक्षरं धैश्च रामं पृष्ठैरवाकिरन् । तदा स रावणस्तूष्णीं लज्जयाऽनतमस्तकः ॥१३२॥
मुकुटरपि हीनश्च मुक्तकञ्चोऽतिविहृलः । सभायां न क्षणं तस्यो तूर्णं लंकापुरीं ययौ ॥१३३॥
रामेण भग्नं तच्चापं दृष्टा नायो मुदान्विताः । चक्रुर्जयस्वनैष्वैषान्करैश्च करतालिकाः ॥१३४॥
सीताऽपि मुदिता जाता हर्षरोमांचनिर्भरा । अनिमेषा कंजनेत्रा राममुक्तकंठिता द्वभूत् ॥१३५॥
एतस्मिन्नन्तरे राजा जनकः प्राह मन्त्रिणः । करिणीस्थामत्र सीतामानयध्वं समुत्सवैः ॥१३६॥

अनुगामिनी बनकर उनके साथ चौदह वर्ष तक बनमें भ्रमण कर्है ॥ १११-१२० ॥ इस प्रकार विविध वाक्योंसे सीता देवताओंको मनाने लगीं । प्रासादपर स्थित सीताके, उन स्त्रियोंके, राजा जनकके तथा अन्यान्य राजाओंके ऐसे-ऐसे वाक्योंको सुनकर मुसकाते हुए श्रीराम घनुषके पास गये । वहाँ जाकर उन्होंने घनुषको नमस्कार किया, प्रदक्षिणा की और शिवजीका मन ही मन ध्यान घरके प्रणाम किया । वादमें राजाओंमें श्रेष्ठ राजा दशरथ, माता कौसल्या तथा गुरु वसिष्ठका मन ही मन ध्यान घरके प्रणाम किया । फिर वायें हाथसे घनुष और दाहिने हाथसे उसकी ताँत पकड़कर क्षणभरमें सभाके सामने वायें हाथसे घनुषको लूकाकर ताँत चढ़ा दी । उस समय बाजे बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी और चारणगण रामका यश गाने लगे । इतनेमें रामके वायें वाहूवलसे उस उत्तम तथा पुरातन शिवघनुषके बोचसे तीन टुकड़े हो गये ॥ १२१-१२६ ॥ घनुषके टूटनेसे बड़ा घनघोर शब्द हुआ । जिससे समस्त गगनमण्डल गूँज उठा । घरती काँप उठी । हे पार्वती ! तुम भी उस समय मारे डरके हमसे चिपट गयी थीं । सब समुद्र चलायमान हो गये । दिशाये क्षुभित हो गयीं । तारे टूट-टूटकर पृथ्वीपर गिरने लगे । शेषनागका सिर धूमने लगा । सुगन्धयुक्त वायु बहने लगी । देवता आकाशसे फूल बरसाने और बाजे बजाने लगे । स्वर्गकी देवियाँ आकाशमें नृत्य करने लगीं और देवता आनन्द मनाने लगे । उस समय सभामण्डपमें भी उत्तम ढोल तथा नगाड़े बजने लगे ॥ १२७-१३० ॥ नयेनये बाजों तथा जयजयकारका घोष होने लगा । वाराङ्गनाएँ नाचने लगीं । भाँट आदि स्तुति करने लगे । झरोखोंसे स्त्रियें रामपर फूल बरसाने लगीं । तब रावण चुपचाप लज्जासे सिर नीचा किये हुए विना लाँग लगाये मुकुटरहित हो घवराहटके साथ शीघ्र मिथिलापुरीसे निकलकर लङ्घाको भाग गया । वहाँ वह क्षणभर भी नहीं ठहरा ॥ १३१-१३३ ॥ रामने घनुषको तोड़ डाला, यह देखकर स्त्रियें हर्षातिरेकसे जयजयकार करने और तालियाँ बजाने लगीं ॥ १३४ ॥ सीताके तो शरीरमें मारे आनन्दके रोमाञ्च हो आया । उत्कण्ठापूर्वक निमेषरहित होकर कमलसदृश नयनोंसे वे रामको निहारने लगीं ॥ १३५ ॥ तभी राजा जनकने

रक्षणाया निर्जः सैन्यवेष्टयित्वा समन्ततः । तथंति ते मंत्रिणश्च ययुवेगेन जानकीम् ॥१३७॥
 प्रोचुस्ते मधुरं वाक्यं प्रवद्धकरसंपुटाः । हे सीते कजनयने धन्याऽसि गजगामिनि ॥१३८॥
 रविवंशोद्भवेनाद्य दशरथसुतेन च । रामेण भग्नं सदसि चापमुत्तिष्ठ वेगतः ॥१३९॥
 करिणीपृष्ठमारुद्ध राम त्वं गंतुमर्हसि । रामकंठेऽप्यस्त्राद्य रत्नमालां मुदान्विता ॥१४०॥
 तन्मंत्रिणां वचः श्रुत्वा सीता नत्वा स्वमातरम् । सखाभिः करिणीपृष्ठे संस्थितासीनमुदान्विता ॥१४१॥
 तदग्रे नववाद्यानं निनेदुर्मञ्जुलानि वै । निनेदुः पृष्ठभागेऽपि नानावाद्यानि वै मुदुः ॥१४२॥
 चित्रोणीष्टाः कंचुकिनः शतशो वत्रपाणयः । सीताकरिण्याद्याग्रे ते दुदुवुदीर्घनिःस्वनाः ॥१४३॥
 वारयन् जनसंमदं सीतां द्रष्टुं जनैः कृतम् । ननृतुर्वारनार्यश्च वभृत्वर्यन्त्रनिःस्वनाः ॥१४४॥
 तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च नटा गानं प्रचकिरे । करिणीं वेष्टयामासुः सीतादास्यः सहस्रशः ॥१४५॥
 अश्वारूढाद्यामरादि विभ्रन्त्यो रुक्मिणीभिताः । ततोऽश्वसंस्थाः शतशस्तां ययुधोपमातरः ॥१४६॥
 जरठाः शस्त्रधारिण्यः स्वर्णदंडलसत्कराः । ततः पुरुषवदेषान्विभ्रन्त्यः प्रमदोत्तमाः ॥१४७॥
 ययुस्तरूप्यः शतशः शस्त्रहस्ताः सुभृषिताः । गोपितास्याः कंचुकिन्यस्तुरगादिषु संस्थिताः ॥१४८॥
 ततस्ते मंत्रिणः सर्वे नानावाहनसंस्थिताः । स्वसैन्यवेष्टयामासुः सीतायाः करिणीं मुदा ॥१४९॥
 चामरैर्व्यजनैः सख्यो मुहुः सीतामवीजयन् । स्खियो गवाक्षरध्रैश्च सीतां पुष्परवाकिरन् ॥१५०॥
 एव नानासमुत्साहैः शनैः सीता तडित्प्रभा । नवरत्नमर्यां मालां विभ्रती दक्षिणे करे ॥१५१॥
 रामं नेत्रकटाक्षैश्च पश्यन्तीं मुदितानना । सभायां राघवं गत्वा करिण्याद्यावरुद्ध च ॥१५२॥
 शनैः पद्मचां ययौ रामं तद्यग्नीवाया सुलजिता । मुमोच निजवाहुभ्यां रत्नमालां मुदान्विता ॥१५३॥
 चकार नमनं रामं पादयोः स्थाप्य वै शिरः । तस्थाववाङ्मुखी सीता सभायामतिलजिता ॥१५४॥

अपने मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि सुन्दर हथिनीपर बैठाकर सेनाकी देख-रखमें समारोहके साथ सीताको यहाँ ले आओ ॥ १३६ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर मन्त्रिगण तुरन्त जानकीजीके पास गये ॥ १३७ ॥ वे हाथ जोड़कर इस प्रकार मधुर वाणीमें कहने लगे—हे गजगामिनी और कमलनयनी सीता ! तुम धन्य हो ॥ १३८ ॥ सूर्यघणा दशरथपुत्र रामने सभामें धनुष तोड़ डाला । जल्दी उठकर खड़ा हो जाओ ॥ १३९ ॥ हथिनीपर चढ़कर अभी रामके पास चलना है । वहाँ चलकर आनन्दपूर्वक अभी उनके गलेमें यह रत्नोंकी माला (वरमाला) डाल दो ॥ १४० ॥ सीताने मन्त्रियोंके इस वाक्यको सुनकर माताके चरणोंमें नमस्कार किया और सहृपं सखियोंके साथ हथिनीकी पीछेपर सवार हो गयी ॥ १४१ ॥ उनके आगे तथा पीछे नाना प्रकारके मनोहर वाजे बजने लगे ॥ १४२ ॥ रङ्ग-विरङ्गी पगड़ियें वाँचे और हाथमें बैत लिये अन्तःपुरके संकड़ों दरवान हथिनीके आगे-आगे जोरसे चिल्लाते हुए चलने लगे ॥ १४३ ॥ वे रास्तेमें सीताको देखनेके लिये खड़ी भीड़को हटा रहे थे । वेश्यायें नाचने लगीं । विवेच वाद्योंके निनाद होने लगे । भाँट रुति करने और नट गाने लगे । सीताकी हजारों दासियोंने उन्हें धेर लिया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ उनके पीछे अश्वपर सवार तथा सुवर्णभूषित चमर आदि लिये हुए बहुतसी स्त्रियें तथा उनके पीछे धोड़ोंपर सवार संकड़ों उपमातायें (दाइयाँ) चलीं ॥ १४६ ॥ उनके पीछे शस्त्रधारिणी तथा सोनेको छड़ियें लिये हुए संकड़ों वूढ़ी स्त्रियें चलीं ॥ उनके बाद जवान स्त्रियें पुरुषका वेष बनाये और हाथमें शास्त्र लिये हुए चलीं । उनके बाद उसी वेषमें मुख ढाँके और कुरता पहिने धोड़ोंपर सवार होकर अस्त्र लिये हुए कुछ सुन्दरी स्त्रियें चलीं ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ सबके पीछे विविध वाहनोंपर सवार मन्त्रिगण अपनी-अपनी सेनाके द्वारा सीताकी हथिनीको धेरे हुए चले ॥ १४९ ॥ सखोगण चैवर तथा पंखे सीताजीपर डुलाने लगीं । नगरकी स्त्रियें गवाक्षमार्गसे उनपर फूल बरसाने लगीं ॥ १५० ॥ इस तरह अनेक प्रकारसे सज-धजकर धीरे-धीरे विजलीके सदृश दीमिवाली तथा दाहिने हाथमें नवरत्नोंका हार लिये हुए अपने नेत्रकटाक्षोंसे रामको देखती हुई सीता सभामण्डपके पास जा तथा हथिनीसे उतरकर धीरे-धीरे रामके पास नयीं और लज्जापूर्वक अपने हाथोंसे उनके गलेमें वह रत्नोंकी माला डाल दी ॥ १५१-१५३ ॥

ददर्श सीतां रामोऽपि हारशोभितहृस्थलाम् । अवाप तोषं नितरां ननाम गाधिजं प्रभुः ॥१५६॥
 तदा रामं समालिङ्ग्य विश्वामित्रो मुनीश्वरः । निवेशयन्निजांके तं स प्रेमणाऽऽग्राय मस्तके ॥१५७॥
 तदा स जनकः सीतां गाधिजांके न्यवेशयत् । सीतया रघुनाथेन शुशुभे स मुनिस्तदा ॥१५८॥
 मानयामास स मुनिर्जन्मसाफल्यतां हृदि । ततः सभायां जनको विश्वामित्रं वचोऽब्रवीत् ॥१५९॥
 प्रसादात्तव रामस्य लाभो जातोऽय मे मुने । धन्योऽस्म्यहं कुलं धन्यं धन्यो तौ पितरौ मम ॥१६०॥
 योऽहं श्रीरामश्शुरश्चेति लोके प्रथां गतः । इत्युक्त्वा गाधिजं नस्त्वा प्रणनाम रघूत्तमम् । १६०॥
 तदा ते पार्थिवाः सीतां दृष्टात्रतदित्प्रभाम् । विवोष्ट्वा चंद्रवदनां तन्नेत्रशरताडिताः ॥१६१॥
 चभूतुर्विकलास्तत्र दुर्देवं मेनिरे निजम् । केचिन्मूर्छा ययुस्तत्र तान्समागत्य मैथिलः । १६२॥
 प्रार्थयामास नृपतीन्विषणान् सदसि स्थितान् । नष्टश्रीम्लानवदनान् लज्जया नतकंधरान् ॥१६३॥
 युध्माभिर्भैऽत्र कन्याया विवाहं विनिवर्त्य च । गंतव्यं स्वपुराणयेव करणीया कृष्ण मयि ॥१६४॥
 तदा ते पार्थिवाः सर्वे मंत्राश्वकुः परस्परम् । यदि युद्धे विजेतव्यः श्रीरामोऽय रणांगणे ॥१६५॥
 तर्हस्मिन् समये दुष्टे जयो नो न भविष्यति । कुमुहूर्ते वयं यातास्तूर्णीं गत्वा पुराणि हि ॥१६६॥
 सुमुहूर्ते पुनर्योद्दुं यास्यामः सकला वलैः । भविष्यति तदाऽस्माकं जयो युद्धे विनिश्चयात् ॥१६७॥
 यदा रामं चाणभिन्नं पश्यामः पतितं रणे । भविष्यामः कृतकृत्यास्तदा सर्वे वयं नृपाः ॥१६८॥
 तदेवास्यापमानस्य दुःखं मर्मस्थलं गतम् । त्यजामः पार्थिवाः सर्वे जेष्यामो राघवं यदा ॥१६९॥
 किमर्थमधुना वैरं दर्शनीयं नृपाय वै । इति संमंत्र्य ते सर्वे तथेत्युक्त्वा नृपोत्तमम् ॥१७०॥
 कृत्वा सीताविवाहं च गच्छामः स्वस्थलानि हि । तदा तान् सकलं वस्तु गृहाणि जनको मुदा ॥१७१॥

तत्पश्चात् रामके चरणोंपर अपना सिर रख तथा नमस्कार करके सभामें लज्जावश कुछ नीचा मुख किये हुए खड़ी हो गयीं ॥ १५४ ॥ उस हारसे सुशोभितहृदय रामने भी सीताकी ओर देखा और अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्होंने विश्वामित्रजीको प्रणाम किया ॥ १५५ ॥ मुनियोंके ईश्वर विश्वामित्रने रामको आलिङ्गन करके प्रेमसे गोदमें बिठाया और उनका सिर सूँधा ॥ १५६ ॥ तब राजा जनकने सीताको भी ले जाकर विश्वामित्रजीकी गोदमें बैठा दिया । उस समय सीता तथा रामके सहित विश्वामित्रजी बड़ी ही शोभाको प्राप्त हुए ॥ १५७ ॥ वे मन ही मन अपने जन्मको सफल समझने लगे । तदनन्तर राजा जनकने सभामें विश्वामित्रसे कहा—॥ १५८ ॥ हे मुनिराज ! आपकी कृपासे आज मुझे रामचन्द्र जैसा दामाद प्राप्त हुआ है । मैं अपनेको, अपने माता-पिताको तथा अपने कुलको बन्य समझता हूँ ॥ १५९ ॥ क्योंकि मैं रामचन्द्रके श्वशुरनामसे संसारमें विल्यात हुआ । ऐसा कहकर उन्होंने विश्वामित्रको तथा रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्रको प्रणाम किया ॥ १६० ॥ उस समय वही एकत्रित अन्यान्य राजे चपलाके समान चमकनेवाले विस्व अर्थात् पके हुए कुंदरुफलके सदृश ओंठ और चन्द्रमाके सदृश मुखवाली सीताको देखते ही उसके नेत्ररूपी वाणोंसे धायल होकर व्याकुल हो गये और अपना दुर्भाग्य समझने लगे । कुछ वही मूर्छित हो गये । तब मिथिलाके अधिपति राजा जनकने वहीं जाकर उन कान्ति नष्ट हो जानेसे मलीनमुख, दुःखी, लज्जासे नीची गरदन करके सभामें बैठे हुए राजाओंसे प्रार्थना की-॥ १६१—१६३ ॥ कृपा करके मेरी कन्याके विवाहका उत्सव समाप्त करके ही आपलोग अपने-अपने नगरोंको जाइयेगा ॥ १६४ ॥ तब वे राजे विचार करने लगे कि यदि रामको युद्धमें जीतना ही हो तो भी इस कुसमयमें हमलोगोंको विजय लाभ नहीं होगा । क्योंकि हमलोग कुमुहूर्तमें आये हैं । अतएव अभी यहांसे चुपचाप अपने-अपने स्थानोंको जाकर फिर किसी अच्छे मुहूर्तमें दलबलके सहित आयेंगे । उस समय रामको रणभूमिमें धायलकर और विजय प्राप्त करके हम सब कृतकृत्य होंगे तथा अपमानजनित हृदयगत दुःखको शान्त करेंगे । इसलिए इस समय राजा जनकसे वैर करना अच्छा नहीं है । सीताके विवाहको करवाकर ही चलेंगे । ऐसा विचार करके सब राजाओंने राजा जनकसे 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा ॥ १६५—१७० ॥ इसर राजा जनकने सहजं रघूत्तम

कल्पयामास विधिवन्मुनीश्चापि रघृत्तमम् । ततो गाधिजवाक्येन विदेहः प्रेष्य मन्त्रिणः ॥१७२॥
 समानेतुं दशरथं तत्प्रतीक्षां चकार सः । तेऽपि गत्वा मन्त्रिणश्च दद्धा दशरथं नृपम् ॥१७३॥
 वृत्तं निवेद्य सकलं तं नत्वा तत्पुरःस्थिताः । वृत्तं दशरथः श्रुत्वा तुतोष नितरां तदा ॥१७४॥
 सैन्येन नागरैः सर्वैः स्त्रीभिर्जनिपदैः सह । मिथिलामगमच्छीर्णं तदा दशरथो नृपः ॥१७५॥
 तदा महोत्सवेनैव नृपं दशरथं पुरीम् । नेतुं गजं पुरस्कृत्य जनकः पार्थिवैर्ययौ ॥१७६॥
 तदा दशरथाग्रे तौ दद्धा कैकेयजासुतौ । श्रीरामलक्ष्मणावत्र कुतः प्राप्तौ व्यचितयत् ॥१७७॥
 तावद्रामलक्ष्मणाभ्यां युक्तं तं गाधिजं मुनिम् । स्वसेनायां नृपो दद्धा विस्मयं प्राप्त मैथिलः ॥१७८॥
 ततो दशरथं नत्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य च । गाधिजं जनकः प्राह कावेतौ रामरूपिणौ ॥१७९॥
 ततस्य गाधिजः प्राह रामांशाद्वरतस्त्वयम् । लक्ष्मणांशाच्च शत्रुघ्नः कैकेय्या नंदनाविमौ ॥१८०॥
 तच्छ्रुत्वा जनकः प्राह राजानं गाधिजं गुरुम् । सीतां रामाय दास्यामि लब्धां भूमावयोनिजाम् ॥१८१॥
 देहजामुमिलानाम्नीं लक्ष्मणार्यार्पयाम्यहम् । कुशध्वस्य मे वन्धोः श्रुतकीर्तिंश्च मांडवी ॥१८२॥
 वर्तते बालिके रम्ये रूपयौवनमण्डिते । सीतोमिलाभ्यामपि ये मया नित्यं प्रलालिते ॥१८३॥
 दास्याम्यहं भरताय मांडवीं मंडनान्विताम् शत्रुघ्नाय श्रुतकीर्तिंमर्पयाम्यहमादरात् ॥१८४॥
 एवं स्तुपाश्रतस्त्र त्वमंगीकुरु पार्थिव । तथेति जनकं प्राह राजा दशरथो मुदा ॥१८५॥
 ततो दशरथः प्राह शतानंदं पुरोहितम् । अहल्याजठरोद्भूतं मैथिलाग्रे स्थितं मुनिम् ॥१८६॥
 कथं लब्धा भुवः सीता तत्सर्वं वक्तुमर्हसि । शतानंदस्तथेत्युक्त्वाऽवृवीह शरथं नृपम् ॥१८७॥
 शतानंद उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया राजन् शृणुष्वैकाग्रमानसः । आसीत्पुरा नृपः कश्चित्पद्माक्ष इति विश्रुतः । १८८॥

रामके लिये, मुनियोंके लिये तथा राजाओंके लिये सब प्रकारकी वस्तुओंका यथोचित प्रबन्ध कर दिया ॥ १७१ ॥ तदनन्तर विश्वामित्रके कहनेपर राजा जनकने अवधनरेश महाराज दशरथको बुलानेका निश्चय करके मन्त्रियोंको अयोध्या भेजा । तदगुसार वे राजा दशरथके पास गये और सब वृत्तान्त निवेदन करनेके बाद नमस्कार करके सामने खड़े हो गये । इस वृत्तान्तको सुनकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७२-१७४ ॥ फिर राजा दशरथ स्त्रियोंको, सेनाको, नगर तथा देशके सब लोगोंको साथ लेकर आनन्द-पूर्वक शांघ्र मिथिलापुरीको चल पड़े ॥ १७५ ॥ उधर राजा जनक बड़े समारोहपूर्वक वाजे-गाजेके साथ एक हाथीको सजाकर सब राजाओंके संग उनकी अगवानीके लिए सामने आये ॥ १७६ ॥ महाराज दशरथके आगे कैकेयीके पुत्र भरत तथा शत्रुघ्नको देखकर राजा जनक विचारने लगे कि ये गम-लक्ष्मण यहाँ कहाँसे आ गये । बादमें जब विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणको अपनी सेनामें देखा तो आश्र्वयचकित होकर राजा जनकने महाराज दशरथ और मुनि वसिष्ठको प्रणाम करके विश्वामित्रसे पूछा कि ये दोनों राम-लक्ष्मण-के समान रूपवाले दूसरे बालक कौन हैं ? ॥ १७७-१७९ ॥ विश्वामित्रजीने उत्तर दिया कि रामके अंशस्वरूप भरत तथा लक्ष्मणके अंश शत्रुघ्न ये दोनों कैकेयोंके पुत्र हैं ॥ १८० ॥ यह सुनकर राजा जनक गुरु विश्वामित्र तथा राजा दशरथसे कहने लगे कि अयोनिजा (योनिसे नहीं उत्पन्न) तथा पृथ्वीसे प्राप्त सीताको मैं रामके लिए देता हूँ तथा शरीरसे उत्पन्न उमिलाको लक्ष्मणके लिए दे रहा हूँ । उन्हें आप ग्रहण करें । मेरे भाई कुशज्वजकी श्रुतकीर्ति तथा माण्डवी नामकी सुन्दर तथा रूपयौवनसे सम्पन्न दो कन्याएँ हैं । जिनको कि सीता तथा उमिलाके साथ-साथ पालकर मैंने बड़ी की है ॥ १८१-१८३ ॥ उनमें भूषणोंसे भूषित मांडवीको भरतके लिए तथा श्रुतकीर्तिको शत्रुघ्नके लिए देता हूँ । हे पार्थिव ! आप इन चारों पुत्र-बहुओंको स्वीकार करें । तब राजा दशरथने सहृपं 'तथास्तु' कहा ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने राजा जनकके सामने खड़े अहल्याकी कोखसे उत्पन्न पुरोहित मुनि शतानन्दसे पूछा कि सीता धरतीमेंसे कैसे प्राप्त हुई । सो सब वृत्तान्त आप कहें । शतानन्दने 'बहुत बच्छा' कहकर बताना आरम्भ किया ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

म दृष्टा सकलाँश्चोकान् लक्ष्मीकामंकतपरान् । चितयामास मनसि लक्ष्मीं कन्यां करोम्यहम् ॥१८९॥
 दपसेव निजाके तां रजयामि निरंतरम् । इति निश्चित्य स नृपस्तप्त्वा तीव्रं महत्प्रतिः ॥१९०॥
 दृष्टा प्रसन्नामग्रे तु लक्ष्मीं वचनमन्तर्वीत् । दुहिता मे भवत्वं हि सा प्राह नृपतिं प्रति ॥१९१॥
 परतंत्राऽस्मयहं राजन् विष्णुं त्वं प्रार्थयाधुना । स चेदास्यति मां ते हि तर्द्यहं दुहिता तव ॥१९२॥
 भविष्यामि न संदेहस्तथेत्युक्त्वा नृपः पुनः । तप्त्वा तीव्रं तपो विष्णुं चकार वरदोन्मुखम् ॥१९३॥
 नत्वा तं नृपतिः प्राह देहि कन्यां रमां मम । तद्राजवचनं श्रुत्वा मातुलुङ्घफलं हरिः ॥१९४॥
 पद्माक्षाय ददौ श्रेष्ठं स्वयमंतर्दधे विश्वः । तद्वित्वा नृपतिः कन्यां ददर्श कनकप्रभाम् ॥१९५॥
 तां दृष्टा साभिलापः स कन्यां मने निजां शुभाम् । पद्माक्षनृपतेः कन्यां पद्मां लोका बदंति च ॥१९६॥
 आह्वयामासुस्तां रम्यां मवचित्तंकरंजनीम् । शक्ले मातुलुङ्घस्य भूत्वैकत्र फलं पुनः ॥१९७॥
 जातं दृष्टा दधाराथ स्वहस्ते नृपतेः सुता । सा त्ववर्धत नृपतेरंके चंद्रकला यथा ॥१९८॥
 शुक्रपक्षं च तां दृष्टा पद्माक्षोऽचित्यदृदि । कस्मै देया मया कन्या द्वास्यै योग्यो वरोऽत्र कः ॥१९९॥
 ततः समंज्य नृपतिः स्वयंवरमथारभृत् । स्वयंवरेऽथ पद्माया यज्ञारम्भं चकार सः ॥२००॥
 स्वयंवराय यज्ञाय पत्रैराकारयन्नपान् । तेऽपि शृङ्गारयुक्ताश्च ययुः पद्मास्वयंवरम् ॥२०१॥
 पद्मास्वयंवरं श्रुत्वा ययुस्तत्र मुनीश्वराः । ययुदेवाः सर्वधर्मां दानवा मानवाः खगाः ॥२०२॥
 नगा नद्यः समूद्राश्च भूरुहाः कामरूपिणः । ययुर्यक्षाः किञ्चराश्च राक्षसा रावणादयः ॥२०३॥
 सर्वान् समागतान् दृष्टा पद्माक्षः प्राह तान् प्रति । आकाशनीलवर्णेन यः स्वांगं परिलेपयेत् ॥२०४॥
 ददामि तस्मै पद्मेयं सत्यं ज्ञेयं वचो मम । तद्राजवचनं श्रुत्वा दुर्घटं नृपसत्तमाः ॥२०५॥

शतानन्द बोले — हे राजन् ! आपने जो वृत्तान्त पूछा सो बहुत अच्छा किया । मैं कहता हूँ, आप ध्यानसे मुने । पूर्वकालमें पद्माक्ष नामका एक प्रसिद्ध राजा था ॥ १८८ ॥ उसने सब लोगोंका लक्ष्मीकी कामनामें सत्पर देखकर मनमें सोचा कि मैं तपके द्वारा लक्ष्मीको पुत्री बनाऊं और अपना गोदमें लाड़-प्यार करके बढ़ाऊं करूँ । ऐसा निश्चय करके उसने लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लए बड़ा कठोर तप किया ॥ १८९ ॥ १९० ॥ जब प्रसन्न होकर लक्ष्मी सामने आ खड़ी हुई तो उसने कहा कि तुम मेरी पुत्री बनो । यह सुनकर लक्ष्मीने राजासे कहा—॥ १९१ ॥ हे राजन् ! मैं तो विष्णुभगवानुके अधीन हूँ—स्वतन्त्र नहीं हूँ । इसलिए तुम विष्णुकी प्रार्थना करो । वे यदि मुझे तुम्हारे लिये दे देंगे तो मैं तुम्हारी पुत्री होऊँगी । इसमें सन्देह नहीं है । 'अच्छी बात है' कहकर राजा पद्माक्षने तीव्र तप करके विष्णुभगवान्को प्रसन्न किया ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ विष्णुने उसे एक श्रेष्ठ मातुलुङ्घफल (विजौरा नीबू अथवा नारंगीका फल) दिया और स्वयं अन्तर्घाति हो गये । राजा पद्माक्षने उस फलको फोड़ा तो उसमें सुवर्णक समान जगमगाती कन्याको विद्यमान देखा ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ कन्याभिलाषी राजाने बालिकाको देखकर उसे अपनी कन्या ही माना । सबके चित्तको आनन्द देनेवाली उस रमणीय कन्याको देखकर वहकि सब लोग भी सहवैं 'यह राजा पद्माक्षकी कन्या लक्ष्मी हैं' ऐसा कहने लगे । तभी उस विजौराके टुकड़ोंका मिलकर फिर समूचा फल बन गया । यह देखकर राजाकी पुत्रीने उसे अपने हाथोंमें ले लिया । वह बालिका राजाके अंक (गोद) में शुब्लपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति बढ़ने लगी । उसे देखकर राजाके मनमें चिन्ता हुई कि 'यह कन्या मैं किसको दूँ, इसके योग्य वर कौन है' ॥ १९६—१९७ ॥ सदनन्तर राजाने विचार करके उसका स्वयम्बर रचाया । उसी स्वयम्बरमें उन्होंने यज्ञ भी आरम्भ कर दिया ॥ २०० ॥ स्वयम्बर तथा यज्ञके लिए निमन्त्रणपत्र भेजकर पद्माक्षने राजाओंको बुलाया । वे लोग शृङ्गार करके छड़े ठाठ-बाटसे पद्माके स्वयम्बरमें आकर सम्मिलित हुए । स्वयम्बरका समाचार सुनकर बड़े-बड़े मुनीश्वर, देवता, गन्धर्व, दानव, मानव, जैसा चाहें वैसा रूप धारण करनेवाले खग, पर्वत, नदी, समुद्र, यज्ञ, किञ्चर और रामणादि राक्षस भी वहाँ आ पहुँचे ॥ २०१—२०३ ॥ उन सबको जाया हुआ देखकर यज्ञाने उनसे कहा कि जो

पद्मासौन्दर्यसंब्रांतास्तां हतुं ते समुद्यताः । तान् कन्याहरणोद्युक्तान्नुपान् दृष्टा सनिर्जरान् ॥२०६॥
 चकार संगरं तैः स पद्माक्षो लोमहर्षणम् । तद्वाणपीडिता देवा मानवा विमुखा रणे ॥२०७॥
 वभूवुस्तत्र दैत्यैश्च पद्माक्षो निहतो रणे । ततस्ते मिलिताः सर्वे तां धतुं दुदुर्वर्जवात् ॥२०८॥
 सा दृष्टा धर्तुमुद्युक्तान् जुहावाण्नौ कलेवरम् । तामदृष्टा नृपाद्यास्ते विचिन्वन्नगरे तदा ॥२०९॥
 वर्मजुर्नुपगेहानि भूमि चक्ररितस्ततः । इमश्चानतन्यं नगरं जातं वै क्षणमात्रतः ॥२१०॥
 पद्माक्षनृपतेलक्ष्मीसंगाज्जातेदृशी दशा । तस्मान्न मुनयो लक्ष्मीं कामयंति कदाचन ॥२११॥
 लक्ष्म्याश्चित्तस्य चांचल्यं भयं शोको वधोऽपि च । भवत्येव महदःस्वं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२१२॥
 पद्माक्षे निहते युद्धे नृपपत्न्यः सहस्रशः । भर्त्रा सहैव गमनं चक्रस्ता भयनिर्भराः ॥२१३॥
 ततस्ते दैत्यवर्याद्या ययुः स्वं स्थलं प्रति । एकदा वह्निकुण्डात्सा पद्मा शक्तिः स्थिरा हरेः ॥२१४॥
 वहिनिर्गत्य कुण्डस्य समीपे समूपाविशत् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकस्थो दशाननः ॥२१५॥
 विचरन् जगतीं जेतुमाकाशवर्त्मना ययौ । सारणस्तां ददर्शश्च वह्निकुण्डे वहिः स्थिताम् ॥२१६॥
 सारणो दर्शयामास रावणाय वचोऽत्रवीत् । पुरा सुरामुराद्याश्च यां धतुं समुपस्थिताः ॥२१७॥
 सेयं पद्माक्षनृपतेः कन्या पद्माऽप्यसन्निधौ । तत्सारणवचः श्रुत्वा तां दृष्टा काममोहितः ॥२१८॥
 यानाज्जवादुत्पात तां धतुं साऽनलेऽविशत् । तामग्नौ संप्रतिष्ठां स दृष्टा ज्ञात्वाऽथ तत्स्थलम् ॥२१९॥
 ततः प्राह दशास्यः स त्वया देवा नृपादयः । कुम्हाऽग्नौ वसति पद्मे श्रमग्रस्ताः कृताः पुरा ॥२२०॥
 तदद्य वासस्थानं ते मया ज्ञातं मनोरमे । पद्मेऽधुनाऽहं त्वां धतुं शोधयाम्यनलस्थलम् ॥२२१॥

कोई अपने शरीरको आकाशके नीले रंगसे रंग लेगा (अर्थात् जो ऐसा कर सकेगा) उसे ही मैं यह अपनी पद्मा नामकी कन्या दूँगा । यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है । राजाके इस दुष्टं वचनको सुनकर वे नृपश्चेष्ट पद्माके सौदर्यपर मोहित होते हुए उसका वरवस हरण करनेके लिए उद्यत हो गये । देवताओं सहित उन राजाओंको कन्याहरणके लिए उद्यत देखकर राजा पद्माक्षने उनके साथ लोमहर्षण अर्थात् रोमांचकारी युद्ध किया । उनके बाणोंसे पीड़ित होकर मनुष्य तथा देवता रणसे भागने लगे । परन्तु अन्तमें दैत्योंके द्वारा राजा पद्माक्ष रणमें मारा गया । तदनन्तर वे सब मिलकर पद्माको पकड़नेके लिए बड़े वेगसे दौड़े । उनको पकड़नेके लिए आते देखकर पद्मा अग्निमें कूद पड़ी । उसको न देखकर राजाओंने उसे सारे नगरमें ढैड़ना आरम्भ किया । राजमहल खोदकर गिरा दिया और बहुत-सी इधर-उधरकी जमीन खोद डाली । क्षणभरमें सारा नगर श्मशान बन गया ॥ २०४-२१० ॥ लक्ष्मीके संसर्गसे राजा पद्माक्षकी ऐसी दशा हुई । इसीलिये मुनि लोग लक्ष्मीको कभी नहीं चाहते ॥ २११ ॥ लक्ष्मासे चित्तकी चंचलता बढ़ती है, भय बढ़ता है, शोक बढ़ता है, मनुष्य मारा जाता है और बड़ा भारी दुःख पाता है । इस वास्ते लक्ष्मीसे दूर रहना चाहिए ॥ २१२ ॥ युद्धमें राजा पद्माक्षके मारे जानेपर राजाकी हजारों स्त्रियें भयभीत होकर राजाके साथ ही सती हो गयीं ॥ २१३ ॥ बादमें वे सब दैत्य भी अपने अपने स्थानको छले गये । एक समय श्रीहरिकी स्थिरशक्तिरूपा लक्ष्मी अग्निकुण्डसे बाहर निकलकर कुण्डके समीप बैठी थीं । इतनेमें रावण पुष्पक विमानपर बैठकर विचरता हुआ जगत्को जीतनेके लिए आकाशमार्गसे उधर ही निकला । तब रावणका मंत्री सारण पद्माको अग्निकुण्डके बाहर बैठी देख रावणको दिखलाकर कहने लगा कि पूर्वकालमें जिस राजा पद्माक्षकी कन्याके लिए देवताओं और असुरोंको राजाके साथ युद्ध करना पड़ा था, वही कन्या अग्निकुण्डके पास बैठी है । सारणके इस वचनको सुन तथा पद्माको देख कामसे मोहित होकर रावण ज्यों ही वेगसे उसको पकड़नेके लिए नीचे कूदा, त्यों ही वह फिर अग्निमें प्रवेश कर गयी । उसको अग्निमें प्रवेश करती तथा उस स्थानको देखकर रावण कहने लगा-॥ २१४-२१६ ॥ हे पद्म ! तुमने पहिले भी अग्निमें प्रवेश करके राजाओं तथा देवताओंको बड़ा भारी दुःख दिया है । हे मनोरम ! तुम्हारा निवास-स्थान आज मैंने देख लिया है । अब मैं तुमको खोजनेके लिये सारा अग्निकुण्ड छान डालूँगा

इन्युक्त्वा जलकंभैश्च मिषेचार्पिन् दशाननः । यावत्पश्यति कक्षायां तावत्तत्र दर्दश ह ॥२२२॥
 पञ्च रन्नानि दिव्यानि गृहीत्वा तानि रावणः । करंडिकायां संस्थाप्य विमानेन ययौ पुरीम् ॥२२३॥
 करंडिकां देवगेहे संस्थाप्य रावणस्तदा । रात्रौ मन्दोदरीं प्राह मंचकस्थां रहःस्थितः ॥२२४॥
 हे मन्दोदरि रत्नानि मया त्वत्तोपदानि हि । समानीतानि यत्नेन त्वदर्थं सुरसम्भवनि ॥२२५॥
 करंडिकायां वर्तन्ते गच्छ गृहीत्वा तानि हि । तदशास्यवचः श्रुत्वा सा ययौ देवमन्दिरम् ॥२२६॥
 करंडिकां तत्र हृष्टा तां नेतुं पतिसन्निधौ । यावदुच्चालयामास न चचाल तदा भ्रुवः ॥२२७॥
 तदा सा लज्जिता गत्वा रावणाय न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा स प्रहस्याथ स्वयं नेतुं ययौ तदा ॥२२८॥
 तां सोऽप्युच्चालयामास न चचाल करंडिका । यदा विशद्भुज्जर्भम्या न चचाल करंडिका ॥२२९॥
 तदा स विस्मयाविष्टो भयं मेने दशाननः । तत्रैवोद्घाटयामास रावणस्तां करंडिकाम् ॥२३०॥
 तावदर्दशं तस्यां स कन्यां सुर्यप्रभोपमाम् । तत्त्वेजोहरतेजस्तान्यासशक्त्वां पि रक्षसाम् ॥२३१॥
 तां द्रष्टु वालिकां स्म्यां ययौः सुहन्मुतादयः । तदा मन्दोदरीं प्राह तस्या वृत्तं रणोद्भवम् ॥२३२॥
 पद्माक्षकुलजात्यादि सर्वं वृत्तं दशाननः । क्रोधान्मन्दोदरी प्राह भयभीता दशाननम् ॥२३३॥
 इयं कृत्या प्रचंडा च कुलविष्वंसकारिणी । लंकां किमर्थमानीता द्वास्या ज्ञात्वाऽपि चेष्टितम् ॥२३४॥
 दुष्टां स्ववंशघाताय त्यजैनां सत्वरं न ने । बालत्वेऽपीदृशी गुर्वी तारुण्ये किं करिष्यति ॥२३५॥
 वधोऽस्यास्तव जानेऽहं मृत्युरेव भविष्यति । स्थापनीया न लंकायामियमर्थैव रावण ॥२३६॥
 इति तस्या वचः श्रुत्वा मन्यं मेने दशाननः । मन्त्रिभिश्चाथ सम्पन्न्य दृतानाज्ञापयत्तदा ॥२३७॥
 करंडिकेयं नीत्वाऽपि विमाने स्थाप्य यत्नतः । त्यक्तव्या मम वाक्यात् वने गच्छत वेगतः ॥२३८॥
 ततस्ते राक्षसाः सर्वं संभील्य पुष्पकेऽथ ताम् । करंडिकां तु संस्थाप्य निन्युथाकाशवर्तमना ॥२३९॥

॥ २२० ॥ २२१ ॥ ऐसा कहकर दशाननने पार्नीकं घडोसे अग्निको बुझा दिया और ज्यों ही रखमें देखने लगा, त्यों ही उसमें उसे दिया पाँच रत्न दिखायी दिये ॥ २२२ ॥ रावणने उन पाँचों रत्नोंको उठा लिया और एक सन्दूकमें रख तथा विमानपर चढ़कर अपनी नगरीको चला गया ॥ २२३ ॥ वहाँ जाकर रावणने उस सन्दूकको देवगृहमें रखकर रात्रिके समय एकान्तमें पलेंगपर बैठी हुई मन्दोदरीसे कहा— ॥ २२४ ॥ हे मन्दोदरी ! जिन्हे देखकर तुम सन्तुष्ट हो जाओगी, ऐसे कुछ रत्न में बड़े परिश्रमसे तुम्हारे लिए ले आया हूँ । वे देवालयमें संदूकके भीतर रखे हैं । जाकर ले आओ । रावणका वचन सुनकर वह देवालयमें गयी ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ सन्दूकको देख उसे पतिके पास ले आनेके लिये उठाया तो वह जमीनसे तनिक भी नहीं उठी ॥ २२७ ॥ तब उसने लज्जित होकर रावणसे सब हाल कहा । यह सुना तो हँसकर रावण स्वयं उसे लानेके लिये गया और उसे उठाया, किन्तु पेटी जमीनसे नहीं हिली ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ इससे रावण बड़ा विस्मित हुआ और डर गया । फिर उसने वहाँ उसको खोला ॥ २३० ॥ तब उसमें सूर्यके समान कान्तिवाली एक कन्या दिखायी दी । उसके तेजसे हृतप्रभ होकर राक्षसोंकी आँखें चकपकाने लगीं ॥ २३१ ॥ उस मनोहर वालिकाको देखनेके लिये उसके मित्र तथा पुत्र आदि आने लगे । उस समय रावणने मन्दोदरीको युद्धका तथा जैसे वह राजा पद्माकके कुलमें उत्पन्न हुई थी, वह सब वृत्तान्त कह मुनाया । मन्दोदरी भयभीत होकर क्रोधपूर्वक दशाननसे कहने लगी— ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ इस कृतधना, कुलविष्वंसकारिणी तथा प्रचण्डाके कर्मोंको जानते हुए भी तुम इसको लंकामें क्यों ले आये ? ॥ २३४ ॥ यह दुष्टा हमारे कुलका नाश करनेवाली है । इसको शीघ्र बनमें छुड़वा दो । वचपतमें ही यह इतनी भारी है तो जवानीमें न जाने क्या करेगी ॥ २३५ ॥ इससे तुम्हारी मृत्यु होगी । ऐसा मुझे जान पड़ता है । इसको लंकामें घड़ी भर भी नहीं रखना चाहिये ॥ २३६ ॥ रावणने मन्दोदरीकी बात सत्य समझ तथा मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करके दूतोंको आज्ञा दी— ॥ २३७ ॥ इस सन्दूकको यत्नपूर्वक शीघ्र विमानमें रखकर आज ही मेरे कथनानुसार बनमें छोड़ आओ ॥ २३८ ॥ पश्चात् वे सब राक्षस इकट्ठे हो तथा उस सन्दूकको विमानमें रखकर आकाशमार्गसे चले ॥ २३९ ॥ उस समय

दशास्यपत्नी तानाह कार्या भूमिगता त्वियम् । स्थापनीया वहिनेयं दर्शनाद्वधकारिणी ॥२४०॥
 गृहस्थाश्रमयुक्तो यस्तथा च विजितेद्रियः । वृद्धिमेष्यति तद्गेहे कुमारीयं शुभानना ॥२४१॥
 चराचरेषु सर्वत्र आत्मरूपेण यः स्थितः । तस्य गेहे चिरं कालं स्थास्यतीयं न संशयः ॥२४२॥
 इति मन्दोदरीवाक्यं श्रुत्वा दृताः सविस्तरम् । यावत्ते गंतुमुद्युक्तास्तावत्कन्या वचोऽब्रवीत् ॥२४३॥
 यास्याम्यहं पुनर्लङ्कां राक्षसानां वधाय च । निधनाय दशास्यस्य सपृत्रस्य समंत्रिणः ॥२४४॥
 अथ तृतीयवेलायामागत्याहं पुनस्त्विवह । निकुम्भजं पौड़कं तं शतशीषं च रावणम् ॥२४५॥
 हनिष्यामि पुनर्गत्वा पुनर्यस्यामित्वत्पुरीम् । अहं चतुर्थवेलायामङ्गुतं मूलकासुरम् ॥२४६॥
 कुम्भर्णसुतं शूरं मद्दीयिष्याम्यहं पुनः । तत्स्या वचनं श्रुत्वा हृदि विद्वो दशाननः ॥२४७॥
 जातास्ते राक्षसाः सर्वे भयभीताः शबोपमाः । रावणश्चित्यामास हंतव्याऽर्थव चालिका ॥२४८॥
 तीक्ष्णं खड़ करे घृत्वा पद्मां दुद्राव रावणः । हतुकाम पतिं दृष्ट्वा मयकन्या न्यवारयत् ॥२४९॥
 साहसं कुरु माऽर्थव सत्यायुषि दशानन । भविष्यति वधस्त्वद्य तव नास्या वचो मृषा ॥२५०॥
 यद्भविष्यति भवतु तदग्रे त्यज कानने । कालान्तरेण यो मृत्युस्तमद्य त्वं किमिच्छमि ॥२५१॥
 इति भायविचः श्रुत्वा तृष्णीमास दशाननः । ततः सा पेटिका दृतैर्नाता यानेन वै जवात् ॥२५२॥
 पश्यन् वनानि सर्वाणि सीतायै मैथिलस्य च । कृता भूमिगता दृतैस्तदा सर्वे करिंडिका ॥२५३॥
 ततो ययुः पुनर्लङ्कां दृतास्ते रावणस्य च । न्यवेदयन् रावणाय सर्वं वृत्तं यथाकृतम् ॥२५४॥
 सा भूमिः सूर्यग्रहणे विदेहेन समर्पिता । ब्राह्मणाय द्विजश्चापि तां कर्षयितुमुद्यतः ॥२५५॥
 पश्यन् मुहूर्तं प्रियः स प्रत्यवदं वै पुनः पुनः । चिरकालेन दृष्ट्वाऽथ मुहूर्तं परमोदयम् ॥२५६॥

रावणकी रथीने उनसे कहा कि दर्शनमात्रसे वध करनेवाली इस धातिनीको बाहर खुली न रखना, बल्कि जमीनमें गाढ़ आना ॥२४०॥ गृहस्थाश्रमी होते हुए भी जो जितेन्द्रिय होगा, उसीके घरमें यह शुभानना कुमारी वृद्धिको प्राप्त होगी ॥२४१॥ सब चराचरके साथ अपनी आत्माके समान वर्ताव करनेवाला जो होगा, उसके घरमें यह चिरकाल स्थित रहेगी । इसमें सन्देह नहीं है (अर्थात् समदर्शी तथा जितेन्द्रियके घरमें ही लक्ष्मी चिरकालतक रहती है—हृतरेके यहाँ नहीं) ॥२४२॥ इस प्रकार मन्दोदरीकी वात सुनकर ज्यों ही दूत लोग चलनेको उद्यत हुए, त्यों ही कन्या कहने लगी—॥२४३॥ मैं फिर राक्षसों तथा मन्त्री और पुत्रसहित रावणका वध करनेके लिए लंकामें आऊँगी ॥२४४॥ पुनः तीसरी बार यहाँ आकर निकुम्भपुत्र पौड़कों तथा सौ सिरवाले रावणको मारूँगी । फिर बादमें पुनः चौथी बार आकर शूरवीर कुम्भकणं तथा मूलकासुरको मारूँगी । उसके वचनको सुनकर दशाननका हृदय विद्ध हो गया ॥२४५-२४६॥ वे सब राक्षस भी भयभीत होकर सृतक सरीखे हो गये । रावणने सोचा कि इस चालिकाको अभी मार डालना चाहिये । यह विचार तथा तीक्ष्णं तलवार हाथमें लेकर वह पद्माकी तरफ दौड़ा । पतिको इस प्रकार कन्याको मारनेके लिये उद्यत देखकर मयदानवकी कन्या मन्दोदरीने कहा—॥२४६॥२४६॥ हे दशानन ! आयु शेष रहनेपर भी आज ही तुम यह साहस मत करो । इससे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी । इसका वचन इश्या न होगा ॥२५०॥ आगे जो होनेवाला होगा सो होगा । अभी तो तुम इसे बनमें छुड़वा दो । कालान्तरमें होनेवाली मृत्युको आज ही क्यों बुलाते हो ? ॥२५१॥ भायकि इस वचनको सुनकर दशानन चुप हो गया । पश्चात् दूत उस सन्दूकचीको शीघ्र विमानमें रखकर ले गये ॥२५२॥ सीताके शोभ्य मिथिला नरेशके बनोंको देखते हुए बहीपर सब दूतोंने उस करिंडिकाको भूमिमें गाढ़ दिया ॥२५३॥ तदनन्तर दूत लड्डा लौट गये और जो किया था, सो सब वृत्तान्त रावणसे निवेदन कर दिया ॥२५४॥ राजा विदेहने वह जमीन सूर्यग्रहणके अवसरपर एक ब्राह्मणको दान दे दी थी । ब्राह्मणने उस जमीनको जुतवानेका विचार किया ॥२५५॥ प्रतिवर्षं शुभ मुहूर्तं देखते-देखते बहुत वधों बाद

शुद्रेण कर्षयामास भूमि कृष्यर्थमादरात् । तदा हलसिताग्रेण निर्गता सा करंडिका ॥२५७॥
 तां गृहीत्वा स शूद्रोऽपि ययौ भूमिपतिं द्विजम् । स मत्वा तच्चिधानं तु हर्षात्प्राह द्विजोत्तमम् ॥२५८॥
 श्रेष्ठस्तव मुहूर्तोऽयं महाभास्यं तव द्विज । इमां हलाग्रमंभृतां गृहाण त्वं करंडिकाम् । २५९॥
 निधानपूरितां गुर्वीं मया यत्नेन वाहिताम् । ततः स द्विजवर्यस्तु तां जग्राह करंडिकाम् । २६०॥
 तामानीय विदेहाय सभामध्ये ददौ मुदा । नृपतिं प्राह वृत्तं तद्विप्रः श्रुत्वा नृपोऽपि सः ॥२६१॥
 उत्तराच ब्राह्मणं भक्त्या मया भूमिः समर्पिता । तस्यां लब्धा त्वया चेयं तवैवास्तु करंडिका ॥२६२॥
 विदेहनृपतेचाक्यं श्रुत्वोत्तराच द्विजः पुनः । महां समर्पिता पूर्वं भूमिरेव त्वया नृप ॥२६३॥
 नेयं करंडिका रस्या वसुपूर्णा समर्पिता । यद्भूमौ वर्तते वित्तं तन्नृपस्य न संशयः ॥२६४॥
 मा मामधर्मः अपृश्यतु गृहाणेमां करंडिकाम् । एवं नृपस्य विग्रेण कलहोऽभूत्सुदारुणः ॥२६५॥
 तदा सभामदाः सर्वं नृपतिं वाक्यमनुवृत्तम् । मा कार्यः कलहो राजन् पश्यास्या किं तु वर्तते ॥२६६॥
 तां तदोद्घाटयामास दृत्यनृपतिसत्त्वमः । तस्यां दृष्ट्वा वालिकां तु विस्मयं प्राप पार्थिवः ॥२६७॥
 दिजस्त्यक्त्वा ययौ गेहं पालयामास तां नृपः । तदा खेचरवाद्यानं नेदुः कुसुमवृष्टिभिः ॥२६८॥
 ववर्षुः सुरसंधाश्च तां कन्यां जनकं नृपम् । गंधर्वा गायनं चक्रुन्नेन्नतुश्चाप्सरोगणाः ॥२६९॥
 तदा मैने निजां कन्यां जनकस्तोपमाप सः । जातकं कारयामास विग्रेस्तस्याः सविस्तरम् ॥२७०॥
 ददौ दानानि विग्रेभ्यो ननृतुर्वारियोपितः । मातुलुज्जात्रिगता या मातुलुज्जीति सा स्मृता ॥२७१॥
 अग्निवासादग्रिगर्भा तथा रत्नावलीति च । रत्नांतरनिवासाच्च प्रोच्यते जगतीतले ॥२७२॥
 धरण्या निर्गता यस्मात्तस्माद्वरणिजेति च । जनकेनाविता यस्माऽजानकीति प्रकीर्त्यते ॥२७३॥

अच्छा तथा परम उदयको करनेवाला मुहूर्तं देखकर ॥ २५६ ॥ उस ब्राह्मणने आदरपूर्वक शूद्रसे उस जमीनमें खेतीके लिए हुल चलवाया । उसी समय हलके फालसे वह सन्दूक निवाल आयी । २५७ ॥ उसको लेकर वह शूद्र जमीनके मालिकके पास गया और उसको वह खजाना समझकर सहृष्ट ब्राह्मणसे कहने लगा—हे द्विज ! आप वडे भाग्यशाली हैं । आपने अच्छे मुहूर्तमें खेती आरम्भ करवायी । यह हलके अग्रभागसे (अर्थात् फालसे जिसको संस्कृतमें सीता कहते हैं) संभूत (प्राप्त) सन्दूकको लीजिये । मैं खजानेसे भरी हुई वडी भारी इस पिटारीको वडी कठिनाईसे बहाँ ले आया हूँ । उस द्विजने उसको ले लिया ॥ २५८-२६० ॥ उसको ले जाकर ब्राह्मणने सभाके सामने राजा विदेहको दिया और सब समाचार कड़ सुनाया । राजा भी यह सुनकर ब्राह्मणसे कहने लगे कि मैने तो भक्तिसे भूमि आपको समर्पण कर दी है । तब उसमेंसे मिली हुई यह पिटारी भी आप ही की है ॥ २६१ ॥ २६२ ॥ राजा विदेहके वचनको सुनकर ब्राह्मण उनसे कहने लगा—हे नृप ! आपने मुझे भूमि ही दी है ॥ २६३ ॥ यह घनपूर्ण सुन्दर सन्दूक नहीं दी थी । इसलिये जो भूमिमें घन है, वह निविवाद राजाका ही होता है ॥ २६४ ॥ मुझे अवमंगल न डालें और इस पिटारीको आप स्वीकार करें । इस प्रकार राजा तथा ब्राह्मणमें वडा झगड़ा होने लगा । तब सब सभासदोंने राजासे कहा—हे राजन् ! कलहको छोड़ें और देखें कि इसमें क्या है ? ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ तब नृपतियोंमें श्रेष्ठ नृपति विदेहने दूतोंसे सन्दूक खुलवायी । उसमें वालिकाको देखकर राजा वडे विस्मित हुए । ब्राह्मण उसे बहीं छोड़कर घर चला गया । तब राजाने ही उस कन्याको पाल लिया । तब देवताओंके बाजे वजे और उन्होंने उस कन्या तथा राजाके ऊपर पुष्पवृष्टि की । गन्धर्व गाने लगे । अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥ २६७-२६९ ॥ तब राजा जनकने प्रसन्न होकर उसको अपनी पुत्री माना । ब्राह्मणोंके द्वारा विस्तारपूर्वक उसका जातकर्मसंस्कार (सन्तानके उत्पन्न होनेपर करनेका संस्कार) करवाया ॥ २७० ॥ विश्रोंको वहृतसे दान दिये और वेष्याओंका गायन करवाया गया । जगत्में वह कन्या मातुलुज्जफलसे निकलनेके कारण मातुलुज्जी, अग्निमें वास करनेसे अग्निगर्भा तथा रत्नोंमें निवास करनेसे रत्नावली कही जाने लगी ॥ २१ ॥ २७२ ॥ धरणीसे निकलने-

मीराग्रान्विर्गता यस्मात्सीतेत्यत्र प्रगीयते । पद्माक्षनृपतेः कन्या तस्मात्पद्मेति सा स्मृता ॥२७४॥
एवं नामान्यनंतानि सीतायाः संति भो नृप । आकाशनीलवर्णाभवपुषाऽनेन जानकी ॥२७५॥
लब्ध । रामेण पद्माक्षप्रतिज्ञा सफलीकृता । एवं त्वया यथा पृष्ठं तथा त्वां विनिवेदितम् ॥२७६॥
चतस्रस्त्वं स्तुषास्त्वत्र कर्तुमर्हसि भो नृप ।

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्ननंतरे तत्र पूर्वं दशरथेन च ॥ २७७ ॥

समाहृता ययुः सेन्यैः स्त्रीपुत्रैः शशुराश्च ते । कोसलो मगधेशश्च कैकेयश्च युधाजितः ॥२७८॥
मानयामाम तान् राजा जनकोपि मुदान्वितः । ततो दशरथं पूज्य श्रीरामं लक्ष्मणं तथा ॥२७९॥
भरतं चापि शत्रुघ्नं संपूज्याभरणादिभिः । निनाय जनकस्तुष्टः स्वपुरीं परमोत्सवैः ॥२८०॥
तदा रामो नृपं नत्वा राजा चालिंगितो मुहुः । वसिष्ठं गाधिजं नत्वा कौसल्यादिं प्रणम्य च ॥२८१॥
राजा दशरथस्याग्रे त्वंः स्त्रीभिर्वन्युभिः सह । गजारुढो ययावग्रे तेऽप्यभूवन् गजस्थिताः ॥२८२॥
नदत्सु वायसंधेषु स्तुत्सु मागधादिषु । नर्तसु वारनारीषु विवेश नगरीं प्रभुः ॥२८३॥
तदाऽसीत्संभ्रमः पौरस्त्रीणां श्रीरामदशने । विशृज्य स्त्रीयकृत्यानि ददुवुर्गोप्तुरादिषु ॥२८४॥
कथां निधाय वालाश्च ददृश् रघुनंदनम् । राजमार्गमतं रामं वर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२८५॥
एवं महोत्सवैर्वासस्थलं दशरथः सुर्तः । ययौ वस्त्रान्नतोयांधैः परिपूर्णं मनोरमम् ॥२८६॥
कृत्वा ज्यातिर्विदा लग्नदिवसस्य विनिश्चयम् । मंडपांश्च तोरणानि पताकाश्च ध्वजास्तथा ॥२८७॥
रोपयामासुः सवत्र मंत्रिणो मिथिलां पुरीम् । मार्गांश्चंदनलिप्ताश्च पुष्परच्छादिता अपि ॥२८८॥
मालाभिस्तोरणः पुष्पघोषाद्यंस्ते चकाशिरे । ततो मुहूर्तसमये वभूच्छिष्टां निशां शुभाम् ॥२८९॥

क कारण धर्मणजा, जनकके द्वारा पालित होनेसे जानकी, सोता (फाल) के अग्रभागसे प्रकट होनेके कारण सोता और राजा पद्माक्षकी कन्या होनेसे वह पचा कहलायी ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ हे महाराज दशरथ ! इस प्रकार सोताके अनेक नाम हैं । आकाशके समान नीलवर्णके रङ्गवाले रामने सोताको प्राप्त करके राजा पद्माक्षकी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दी । इस प्रकार जो आपने पूछा सो मैने निवेदन कर दिया । अब आपका ये चारों पुत्रवधुएं स्वाकार करनां चाहियें । शिवजो बोले—इतनेमें पहिलेसे राजा दशरथके द्वारा बुलवाये गये उनक श्वसुर कोसलराज तथा मगधराज युधाजित् नामके कैकेयराज अपनी स्त्री और सेनाका साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे । राजा जनकने भी उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया । पश्चात् राजा दशरथको वस्त्र-आभूदण आदिसे और राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नकी पूजा करके राजा जनक महान् उत्सवक साथ अपने नगरम ले गये ॥ २८५-२८० ॥ तदनन्तर रामने राजा दशरथको प्रणाम किया । राजाने उन्हें हृदयसे लगाया । फिर रामने गुह वशिष्ठको तथा कोसल्या आदि माताओंको प्रणाम करके राजा दशरथके आगे उन स्त्रियों तथा वस्तुओंके सहित हाथियोंपर चढ़कर आगे-आगे चले । उनके पौछे और सब लाग गजारुढ़ होकर चल पड़े । इस प्रकार वायसमूहक शब्दोंको सुनते, चारणोंकी स्तुतियोंको श्रवण करते तथा वेष्याओंके नाचको देखते हुए प्रभु रामने नगरमें प्रवेश किया । उस समय रामके दशनके लिये नगरको लिये व्याकुल हो उठो । अपने-अपने गृहकार्योंको छोड़ सबकी सब वालकोंको गोदमें लिये नगरके दरवाजे आदिपर जाकर रघुनन्दन रामका दर्शन करने लगीं । राम जब सड़कपर आ गये, तब उन्होंने उनपर पुष्पवृष्टि की ॥ २८१-२८५ ॥ इस तरह महोत्सवके साथ राजा दशरथ राम आदिको लेकर अग्न (भोजनका सामान), वस्त्र (ओड़ने-विछानेका सामान) तथा जल (नहाने-बोने तथा पीने का पानी) आदिसे परिपूर्ण मनोहर वासस्थानपर (वरके ठहरनेके स्थानपर) गये ॥ २८६ ॥ मन्त्रियोंने ज्योतिषीके द्वारा लग्नका दिन निश्चय कराकर समस्त मिथिलापुरीको नष्टपोसे, तोरणोसे, पताकाओंसे तथा रङ्ग-विरङ्गी ध्वजाओंसे सजवा दिया । बड़े-बड़े रास्तोंको चत्वर्दनसे लिपवाया गया । उनपर भाँति-

सुतेलाद्वयां स्त्रियः सर्वाः कौसल्याद्यास्तु मातरः । रामादीन् परिलिप्यादौ नीराजनपुरःसरम् ॥२९०॥
 करकुंभांस्तोयपूर्णश्चतुदिन्जु सदीपकान् । संस्थाप्य स्नापयामासुर्महावाद्यपुरःसरम् ॥२९१॥
 तदाभ्यंगं स्वयं चापि कृत्वा सस्तुथ मातरः । रामादीन् पुरतः कृत्वा वस्त्रालंकारभूषिताः ॥२९२॥
 अभ्यङ्गपूर्वकं सस्नौ राजा दशरथोऽपि सः । समाहृय नृपस्त्रीश्च सभायां स्वस्तिके गुरुः ॥२९३॥
 मुक्ताचिनिर्मिते राज्ञः पाश्चेव वामे न्यवेशयत् । अग्रे रामादिकान्कृत्वा ताः स्त्रियोऽवनताननाः ॥२९४॥
 हरिद्राकुंकुमालिमचरणा रेजिरेऽङ्गणे । वसिष्ठो ब्राह्मण्युक्तो राज्ञा रामादिभिर्मुदा ॥२९५॥
 कृत्वा गणपतेः पूजां पुण्याह्वादित्रयं क्रमात् । कारयामास विधिवत्प्रतिष्ठां देवकस्य च ॥२९६॥
 ग्रामाचारं कुलाचारं वृद्धाचारं तथा पुनः । देशाचारं च प्रमदाचारादीनकरोन्नपः ॥२९७॥
 तोयकुम्भं मंडपादिकानां पूजनमाचरत् । कौसल्याद्याः स्त्रियः सर्वा हरित्पीतारुणोर्वर्णः ॥२९८॥
 हेमतंत्वंकितैर्वस्त्रैविरेजुमंडपांगणे । जनकश्च नृपैर्युक्तो महावाद्यपुरःसरम् ॥२९९॥
 रामादीन्स निजं गेहं नेतुकामः समाययौ । मंडपे पूजयामास रामादान् जनकस्तदा ॥३००॥
 हेमतन्तूद्वैदिव्यैर्वस्त्रैरामरणादिभिः । तदा विरेजुस्ते चालाः सर्वे प्रमुदिताननाः ॥३०१॥
 ततस्ते वारणेदस्था दिव्यचामरवीजिताः । शृण्वतो वाद्यधोषांश्च वर्षिता पुष्पवृष्टिभिः ॥३०२॥
 हरिद्रांकितधान्यैश्च मांगल्यमौक्तिकादिभिः । मारुभिर्वारणस्त्रीपु संस्थिताभिर्मुहुर्मुहुः ॥३०३॥
 एवं ते राघवाद्याश्च पुरस्त्रीभिनिरीक्षिताः । ग्रासादोपरि संस्थामिल्जाभिर्विषिता मुहुः ॥३०४॥
 ददृशुर्नर्तनान्यग्रे वारस्त्रीणां स्मिताननाः । वाटिकाः पुष्पवृक्षाणां वरमृत्पात्रनिर्मिताः ॥३०५॥

भौतिके पुष्प विशेष दिये और खास-खास स्थानोंमें मालाएं तथा तोरण बैंधवा दिये । पुष्पलताओं और माङ्गलिक शब्दों द्वारा उस समय वह नगरी और भी दिव्य मालूम पढ़ने लगी । तदनन्तर शुभ मुहूर्तमें जिस रातके सीताके शरीरमें स्त्रियोंके द्वारा तेल-हल्दी आदि मला गया । उसा रातमें कौसल्या आदि माताओंने आँगन लीप तथा राखका पानी छिड़ककर जलपूर्ण दीपक सहित चार सुन्दर घड़ोंको चारों दिशाओंमें स्थापित करके राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्नको वाद्यध्वनिके साथ माङ्गलिक स्नान कराया ॥ २८७-२९१ ॥ फिर तेल आदि मलकर अपने आप भी सब माताओंने स्नान किया । पहिले राम आदिको वस्त्र तथा अलङ्घारोंसे भूषित करके तेल-हरदी आदिका शरीरमें अभ्यङ्ग करके (मलकर) राजा दशरथने भी स्नान किया । पश्चात् गुरु वशिष्ठने राजाकी सब स्त्रियोंको सभामण्डपमें बुलाकर राजाके वामभागमें मुक्तानिर्मित स्वस्तिक अंकित (वेदी या आसन) पर बैठाया । उस समय सभाके आँगनमें स्त्रियें राम आदि बालकोंको सामने बैठाकर निम्न मुख किये तथा हल्दी और तेल चरणोंमें लगाये अत्यन्त सुशोभित होने लगीं । ज्ञात्राणोंके सहित वशिष्ठजीने राजा दशरथ तथा रामादिके द्वारा गणपतिपूजन तथा पुण्याह्वाचन ये दोनों कर्म क्रमसे करवाये और तीसरा कर्म विधिवत् देवताकी प्रतिष्ठा करवायी । राजा दशरथने भी बादमें प्रसन्नतापूर्वं ग्रामाचार, कुलाचार, वृद्धाचार, देशाचार तथा प्रमदाचार आदि किया ॥ २९२-२९६ ॥ तदनन्तर जलपूर्ण कुम्भ तथा मण्डप आदिकी पूजा की । मण्डपके आँगनमें हरी, लाल, पीली तथा जरीदार साड़ियोंको पहिनकर कौसल्या आदि स्त्रियें बड़ी सुन्दर दीखने लगी । बड़े बड़े बाजोंको बजवाते हुए अन्य राजाओंके सहित राजा जनक भी राम आदिको अपने भवनमें लिवा ले जानेके लिये बहाँ आये । मण्डपमें जाकर राजा जनकने राम आदिका पूजन किया ॥ ३०० ॥ उस समय प्रसन्न मुखवाले वे सब बालक जरीदार दिव्य वस्त्रों तथा आभरणोंको पहने हुए बड़े सुन्दर लगने लगे ॥ ३०१ ॥ बादमें वे सब जो कि उत्तम हायियोंपर बैठे हुए थे, जिनपर सुन्दर चैवर हुल रहे थे । हायियोंपर बैठी हुई माताएं चारों तरफसे बारम्बार जिनपर मोतियों, माङ्गलिक हल्दीमिश्रित चावलों तथा पुष्पोंकी बीछार कर रहीं थीं । जिनकी ओर नगरकी स्त्रियें बड़े चावसे देख रही थीं तथा भवनोंपरसे धानका लावा बरसा रही थीं । आनन्दभरे मुखोंसे वहाँके रास्तेमें वेश्याओंके नृथ

तथा कृत्रिमवृक्षांश्च पताकाश्च ध्वजास्तथा । वह्निसंगादोपधीनां पुष्पवृक्षविनिर्मितान् ॥३०६॥
 तडित्प्रभोपमांशापि गगनान्तविंगजितान् । वह्निसंज्ञादोपधीभ्यः प्राकारान् विविधान् वरान् ॥३०७॥
 चंद्रज्योत्सनाकृत्रिमांश्च दीपवृक्षान् सहस्रशः । दीपमालाश्च व्याघ्रादीन्कृत्रिमान् रथसंस्थितान् ॥३०८॥
 ओपधीभिः पूरितांश्च केकीचक्रोपमादिकान् । दृष्टशुर्वारणेऽद्रस्था एवं ते राघवादयः ॥३०९॥
 तदा देवा विमानस्था ददृशुः कौतुकं मुदा । एवं नानोत्सवैर्वाला ययुर्जनकमंदिरम् ॥३१०॥
 अवरुद्ध गजेन्द्रेभ्यस्तस्थुस्ते मंडपांगणे । मधुपर्कविधानानि विष्टरादीनि च क्रमात् ॥३११॥
 तयोर्गुरुं चक्रतुस्तौ वसिष्ठगौतमात्मजौ । वाल्मीक्यादिमुनिगणेऽवैष्टितौ तुष्टमानसौ ॥३१२॥
 ततः पूजां वधूनां च मुदा दशरथो नृपः । चकार गुरुणा युक्तस्तदा स मंडपाङ्गणे ॥३१३॥
 ततो लग्नमुहूर्ते तान् वधूभिश्च पृथग्वरान् । वेदिकासु स्थितान् कृत्वा दम्पत्योरतरे पटान् ॥३१४॥
 कृत्वा मंगलघोपांश्च मुनिभिश्चकर्तुर्गुरुं । तदा तूष्णीं सभाया ते शुश्रुतुः सकला जनाः ॥

पुष्पोषः पीतधान्यांश्च ववृष्टुर्दम्पतीन् स्त्रियः ॥ ३१५ ॥

श्रीदेवीतनयौ शिवः सुखकरो मित्रः शशा कंपनः सर्वे ते मुनयश्चला दश दिशः सर्वा मृगेन्द्राः खगाः ।
 नद्यः पुष्पसरोवराणि दितिजास्तीर्थानि कंजासनश्चेंद्रो वह्न्यमरा नदी जलधयः कुर्वतु वो मंगलम् ॥३१६॥
 तदेव लग्नं सुदिनं तदेव तारावलं चंद्रवलं तदेव । विद्यावलं देववलं तदेव काशीपतेर्यत्स्मरणं विधेयम् ॥३१७॥
 एवं मंगलशब्देश्च महावाद्यपुरःसरम् । तेषां मंतःपटान्मुक्त्वा अङ्गुष्ठोऽस्तूचतुर्गुरुं ॥३१८॥
 तासां ते पाणिग्रहणविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाहोमादिकं सर्वं चक्रमंगलपूर्वकम् ॥३१९॥
 तदा महावाद्यघोषा निनेदुमंडपांगणे । ननृतुर्वारनार्यश्च जगुर्मागधवदिनः ॥३२०॥

मनोहर मिट्ठी आदिके बने हुए गमलों, वृक्षों तथा फूल-पत्तियोंसे बनी हुई वाटिकाओंको, कृत्रिम वृक्षोंको, पताकाओंको, ध्वजाओंको, अग्निके संयोगसे जलनेवाले, तडितके समान रोशनीवाले और आकाशमें चमकनेवाले नाना प्रकारकी आतशबाजीसे सजे पुष्प-वृक्ष-लता आदिको, हजारों चन्द्रमाओंकी छाँदनीके कृत्रिम दीपवृक्षोंको, दीपमालाओंको, रथोंमें रखे हुए बनावटा व्याघ्र-गज आदिको, ओषधिसे भरे हुए मोर तथा चर्खी आदिको देखने लगे ॥३०२-३०६॥ सब दवता भी आनन्दसे उस कौतुकको देख रहे थे । इस प्रकार विविध उत्सवों सहित वे राम आदि बालक राजा जनकके भवनको गय ॥३१०॥ वहाँ जा तथा हाथियोंसे उत्तरकर वे मण्डपके अंगनमें लड़े हा गय । वाल्मीकि आदि मुनियोंसे घिरे हुए दोनों पक्षके गुरु वशिष्ठ तथा गोतमपुत्र शतानन्दने प्रसन्नतासे मधुपर्क (मधुनिश्चित दहा) का विधान और आसन आदिका विधान करवाया ॥३११॥३१२॥ पश्चात् राजा दशरथने गुरु वशिष्ठको साथ लेकर सहर्ष भावी पुत्रवधुओंकी पूजा की । किरणुभ मुहूर्तं तथा सुलग्नमें मुनियों तथा गुरुजनोंने उन-उन वधुओं और उन-उन बीर बालकोंको पृथक्-पृथक् वेदियोंपर बैठाकर उन दम्पत्तियोंके बीचमें वस्त्रका आङ्ग करके मगल-मय शब्दोंका उच्चारण किया । सभाके सभी मनुष्य चुप होकर उसे सुनने लगे । स्त्रियें केसरसे रंगे पाले चावल तथा फूल बरवधूके ऊपर बरसाने लगीं ॥३१३-३१५॥ सरस्वती, देवीतनय गणपति, सुखकारक शिव, सूर्य, चन्द्र, वायु, सब मुनि, चल-अचल जीव, दसों दिशायें, सर्प, मृगेन्द्र, खग, नदी, पवित्र सरोवर, देत्य, तीर्थ, व्रह्मा, इन्द्र, अग्निदेवता तथा नदी-समुद्र आदि तुम लागोंका कल्पण करें ॥३१६॥ काशीपति श्रीविश्वनाथ भगवानका स्मरण ही तुम्हारे लिए सुन्दर लग्न, शुभ दिन, ग्रहवल, विद्यावल तथा देववल बन जाय ॥३१७॥ ऐसे मांगलिक शब्दों और मांगलिक वाजोंकी ध्वनि होने लगी । उसके बाद बीचमें पढ़े हुए वस्त्रोंको हटा दिया गया और दोनों ओरके गुरुओंने “अङ्गुष्ठोऽस्तु” ऐसा कहा ॥३१८॥ इस प्रकार उन लोगोंने मिलकर विधिपूर्वक उनका विवाहकार्य तथा लावाका हवन आदि सभी हृत्य मञ्जलपूर्वक संपादित कर दिया ॥३१९॥ तब मण्डपकी अँगनाईमें बड़े-बड़े छाजोंका निनाद होने लगा, वेश्यायें नाचने लगी, भाँट और बन्दीजव यशोगान करने लगे ॥३२०॥

नटा मंगलगीतैश्च तुष्टुवुस्ते महाभवनैः । तदा दानान्यनेकानि चक्रतुस्तौ नृपोत्तमौ ॥३२१॥
 अथ ते बालकाः सर्वे वधुः स्थाप्य कटीषु वै । कौसल्यादिवनिताभिर्जग्मुस्ते भोजनगृहान् ॥३२२॥
 तत्राभ्रसिंचनं चक्रुः संपूज्य त्वां च मामपि । ततो रामादिकाः सर्वे स्वस्वपत्न्या पृथड़मुखाः ॥३२३॥
 चक्रुस्ते भोजनं हृष्टाः स्खाभिः सर्वत्र वेष्टिताः । राजा दशरथश्चापि सुहृद्धिश्च नृपोत्तमैः ॥३२४॥
 पौरे जानपदैरिष्टमुनिभिः परिवारितः । जनकस्य गृहं गत्वा चकार भोजनं मुदा ॥३२५॥
 कौसल्याद्याः त्रियः स्त्रीभिर्शकुभर्जिनमुत्तमम् । सुमेधया प्रार्थितास्ता वंदिताश्च मुहुमुहुः ॥३२६॥
 एवं नानाममुत्साहानश्चकार जनको मुदा । अथ ते बालकाः सर्वे स्त्रीचाक्यान्मातृसन्निधी ॥३२७॥
 स्वस्वपत्न्याः पादयोः स्वशिरोभिर्नैमन्मुहुः । चक्रुस्तुष्टुचेतसस्ते तास्ता नेमुः पृथक् पृथक् ॥

कुम्भांकितपादाश्च तेषामकेषु ता ददुः ॥३२८॥

श्रीरामः समवाप्य भूमितनयामाश्रां जगत्स्वाभिनीं सर्वात्मा वरहेतुसुन्दरतनुः कारुण्यपूर्णक्षणः ॥
 विद्युद्वर्णविराजमानवसनत्त्वलोक्यचूडामणिः शोभामाप जगत्त्रयेऽप्यनुपमां मुक्ताविराजद्वलः ॥३२९॥
 चतुर्थे दिवसे रात्रौ वंशपात्रविराजितैः । दीपैर्नैराजिताः सर्वे विरेजू राघवादयः ॥३३०॥
 रामादीनां पारिवर्हन् ददौ स जनकस्तदा । नियुतान् वारण्द्रांश्च शिविकाश्चापि तन्मिताः ॥३३१॥
 तुरणान् दशलभानश्च नियुतान् स्पंदनान् ददौ । नानालंकारवासांसि गोदामीसेवकादिकान् ॥३३२॥
 ददौ स राघवादिष्यो येषां सख्या न विद्यते । एवं सम्मानितास्तेन ते बाला जनकेन हि ॥३३३॥
 पूर्ववदुत्सवद्यैश्च स्वस्वपत्न्या समन्विताः । गजारुद्धा नृत्यगीतैस्ताभिः स्वमंडपं ययुः ॥३३४॥
 ततो राजा मासमेकं निनाय नृपत्राक्यतः । ततः सैन्येन स्वपूर्वीं गन्तुं पुर्या चहिर्ययौ ॥३३५॥
 सीताद्या निर्युमुख्याः साश्रुनेत्राः सुविहृलाः । सुमेधास्ताः समालिङ्ग्य सात्त्वयित्वा व्यसर्जयत् ॥३३६॥

नट लोग जोरसे मङ्गलमीर्तोंको गाँकर रतुति करने लगे और दोनों नृपथेष्टोंने अनेक दान दिये ॥३२१॥
 तदनन्तर वे सब बालक अपनी-अपनी बहूको कमरपर चढ़ाकर कौसल्या आदि माताओंके साथ भोजनालयमें
 गये ॥३२२॥ हे पार्वति ! वहाँ आज्ञासेचन करके तुम्हारी तथा हमारी (शिव-पार्वतीकी) पूजा करनेके
 बाद राम आदिने अपनी-अपनी एतियोंके साथ आनन्दपूर्वक भोजन किया और सब स्त्रियाँ उन्हें
 घेरकर खड़ी हो गईं । राजा दशरथने भी दूसरे राजाओंको, मुहुर्दोंको, नगर तथा देशके लोगोंको
 और मुनियोंको साथ ले तथा जनकके घरपर जाकर सहृदयं भेजन किया ॥३२३-३२५॥ सुमेधासे वार-
 वार प्रार्थित तथा आनंदित कौसल्या आदि स्त्रियोंने भी अग्नान्द मित्रोंके साथ जाकर भोजन किया ॥३२६॥
 राजा जनकके यहाँ अनेक सम्पादोह दुए । फिर उन बालकोंने प्रसन्न होकर स्त्रियोंके कहनेसे माताओंके
 सम्मुख अपनी-अपनी स्त्रियोंके पैरोंपर आना-आना सिर रखकर नमस्कार किया । पश्चात् उन स्त्रियोंने
 भी उनको अलग-अलग नमस्कार करके उनकी गोदोंमें कुंकुमसे रंजित पांवें रखते ॥३२७॥३२८॥
 समस्त संसारके आत्मास्वरूप सुन्दर प्रारीरकों धारण किये हुए, करुणापूर्ण नेत्रोंबाले, विद्युतके समान
 वर्णबाले, पीले वस्त्रोंको धारण किये हुए, त्रिलोकीके चूडामणिस्त्वरूप गलेमें मोतीकी माला पहने हुए श्रीराम
 जगत्की आदित्वाभिनी और भूमितनया सीताको प्राप्त करके तीनों लोकोंमें अनुपमेय शोभाको प्राप्त हुए
 ॥३२९॥ चौथे दिन बाँसके पात्रमें जलाये हुए दीपकोंसे नीराजित तथा पूजित राम आदि चारों
 भाई बड़े ही शोभायमान होने लगे ॥३३०॥ राजा जनकने राम आदिको ये दहेज दिये-दस लाख हाथी, दस
 लाख पालकियाँ, दस लाख घोड़े तथा दस लाख रथ, असंख्य अलंकार, पोशाक, गोएं तथा दास-दासिएं
 दीं । इस प्रकार राजा जनकके द्वारा सम्मानित वे बालक ॥३३१-३३३॥ अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथ
 ले तथा हाथीपर सबार होकर नृत्य-गीत तथा बाजेके साथ अपने मण्डपको लौट आये ॥३३४॥ पश्चात्
 राजा दशरथ राजा जनकके आयहसे एक महीना वहीं व्यतीत करके अपने पुरको जानेके लिये सेनाके साथ
 उस पुरीसे बाहर आये ॥३३५॥ सीता बादि अथृपूर्ण नेत्रोंसे बहुत विहृल होकर चली । सुमेधाने उनको

अथ राजा दशरथो जनकं विन्यवर्तयत् । तदा दशरथं प्राह जनकः साशुलोचनः ॥३३७॥
 श्वसन् कवोष्णग्लानास्यो विरहाद्द्रदाक्षरः । एताक्षकालपर्वन्तं सीताद्वा लालिता मया ॥३३८॥
 अधुना त्वमिमास्त्वग्रे लालयम्य कृतेक्षणः । इन्द्रुक्त्वा नपति नत्वा मिथिलां जनको ययौ ॥३३९॥
 ततो दशरथश्चापि स्तुपास्त्रीतनयादिभिः । नृपैः संन्देवं स्वपुर्वां ययौ मागें शनैः शनैः ॥३४०॥
 अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्वोजनत्रयम् । निमित्तान्यनिधोराणि ददर्श नृपमत्तमः ॥३४१॥
 नत्वा वसिष्ठं प्रपच्छ किमिदं मुनिपुञ्जन् । निमित्तानीह दृश्यन्ते विषमाणि समंततः ॥३४२॥
 वसिष्ठस्तमथो प्राह भयमागानि सूच्यते । पुनरप्यभावं तेऽब्र शीघ्रयेव भविष्यति ॥३४३॥
 मृगाः प्रदक्षिणयांति त्वां पश्य शुभमूचकाः । एवं वै वदतस्तस्य वर्वा घोरतरोऽनिलः ॥३४४॥
 मुष्णंश्चक्षुपि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिर्दृश्यत् । ततो ददर्श परमं जामदग्नयं महाप्रभम् ॥३४५॥
 नीलमेवनिभं प्रांशुं जटामण्डलगंडितम् । धनुः गशहस्तं च साक्षात्कालमिव स्थितम् ॥३४६॥
 कार्तवीर्यांतिकं रामं दृश्यत्रियमद्दनम् । प्रामं दशरथस्याग्रे रक्तास्ये रक्तलोचनम् ॥३४७॥
 तं दृश्या भयसंत्रस्तो राजा दशरथस्तदा । अश्यादिपूजां विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाववीत ॥३४८॥
 दंडत्प्रवणिपत्याह पुत्रप्राणान्प्रयच्छ मे । इति ब्रुवतं राजानभनादत्य गघृतम् ॥३४९॥
 उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः । त्वं राम इति मन्माना चरसि श्वत्रियाधम ॥३५०॥
 द्वंद्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽमि मे । पुराणं जर्जरं चापं भंडत्वा त्वं दृश्यसे मुधा ॥३५१॥
 इदं तु वैष्णवं चापमारोपयति चेदगुणम् । तदिं युद्धं त्वया माद्वं न करोमि नृशत्तमज ॥३५२॥
 नो चेत्सर्वान्हनिष्प्यामि श्वत्रियांतकरस्त्वद्य । इति तद्रचनं शुन्वा राखों वाक्यमववीत ॥३५३॥

छातीसे लगाया तथा आश्वासन देकर विदा बिदा ॥ ३३६ ॥ तब राजा दशरथने राजा जनको लौटनेके लिये कहा । राजा जनक आँखोंमें आँमू भरकर लुँछ गरम रास लेते हुए मालन नुग्व विद्ये पुत्रियोंके वियोगसे गदगदस्वर होकर राजा दशरथसे कहने लगे कि आज तक मैंने सीता आदिका लालन-पालन किया और अब आजसे आप अपनी कृपादृष्टिसे इनका पालन-पोषण करें । ऐसा कह और राजाको नमस्कार दरके राजा जनक मिथिलाको लौट गये ॥ ३३८-३३९ ॥ राजा दशरथ भी पुत्रों, पुत्रद्वयुओं, स्त्रियों, राजाओं तथा सेनाको साथ लेकर धीरे-धीरे अपनी नगरोंको चले ॥ ३४० ॥ जब श्रीराम मैथिल देशसे निवलकर वारह कोस आगे बढ़े । तब राजा दशरथको अतिधोर अपशकुन दिखाई दिये ॥ ३४१ ॥ तब वे नमस्कार करके वसिष्ठजीसे कहने लगे—हे मुनिपुगव ! यह कहा कारण है कि चारों तरफ ये अपशकुन दिखाई दे रहे हैं ? ॥ ३४२ ॥ वसिष्ठजीने कहा कि ये भावी भयके सूचक हैं । परन्तु शीघ्र ही आपका भय निवृत हो जायगा ॥ ३४३ ॥ देविए, शुभमूचक हर्षिण शतिनी और जा रहे हैं । इतना कहना ही था कि घोरतर वायु वहने लगी ॥ ३४४ ॥ उसने धूमसे रववी आँखें भर दी । बादमें वह तेजस्वी, नीले गेधके समान रंगवाले, ऊँची जटाओंसे मंडिल, हाथमें धनुष तथा फरसा लिये, साक्षात् कालके समान लाल मुँह किये हुए, कार्तवीर्य (सहस्रदाहु) को नारनेवाले, उद्वाङ्ग तथा घमण्डी श्वत्रियोंका नाश करनेवाले परशुरामजी दशरथके आगे खड़े हो गये ॥ ३४५-३४६ ॥ राजा उनको देहकर भरसे विहूल हो सत्कार-पूजा भूलकर त्राहि-त्राहि करने लगे ॥ ३४८ ॥ उन्होंने दंडदत् श्रणाम करके कहा कि आप मेरे पुत्र रामके प्राण बचायें । परन्तु परशुरामने क्रोधातुर होकर राजाका अनादर दरके रघृत्तम रामसे इस प्रकार निष्ठुर बचन कहा—अरे श्वत्रियाधम राम ! तू मेरे नामसे संसारमें झूठ-मूँठ बयों प्रसिद्ध हुआ फिरता है ? ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ यदि तू सच्चा श्वत्रिय हो तो मेरे साथ युद्ध कर । पुराना सङ्ग हुआ धनुष तोड़कर बयों अपनी बड़ाईकी झूठी ढोंग हाँक रहा है ? ॥ ३५१ ॥ ओ रघुवंशज ! यदि तू इस विष्णुके धनुषपर होरी चढ़ा दे तो मैं तेरे साथ युद्ध न करूँगा ॥ ३५२ ॥ नहीं तो मैं तुम सबको मार डालूँगा । बयोंकि श्वत्रियोंका नाश करना ही मेरा काम है । परशुरामका यह बचन सुनकर रामने कहा—॥ ३५३ ॥

वयमेकगुणाः स्वामिन् युयं चैव गुणाधिकाः । गोविप्रदेवनारीषु राघवा नात्रधारिणः ॥३५४॥
 मयैतैश्च जीवितानि तव पादार्पितानि हि । यथेच्छं वातयास्माकं विप्रैर्युद्धं करोमि न ॥३५५॥
 हति ब्रुवति रामे वै चचाल वसुधा भृशम् । क्रुद्धं दृष्ट्वा जामदग्न्यं क्षत्रियांतमुपस्थितम् ॥३५६॥
 अंधकारो वभृवाथ चुच्छुभुः सप्त सागराः । रामो दाशरथिर्वारो वीक्ष्य तं भार्गवं रुषा ॥३५७॥
 धनुराच्छिव्र तद्वस्तादारोप्य गुणमंजसा । तुषीराद्वाणमादाय संधायाकृष्य वीर्यवान् ॥३५८॥
 उवाच भार्गवं रामः शृणु ब्रह्मन् वचो मम । लक्ष्यं दर्शय वाणस्य ह्यमोघो रामसायकः ॥३५९॥
 लोकान् पादयुगं वापि वद शीघ्रं ममाज्ञया । एवं वदति श्रीरामे भार्गवो विकृताननः ॥३६०॥
 संस्मरन् पूर्ववृत्तांतमिदं वचनमब्रवीत् । राम राम महावाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ॥३६१॥
 पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलयोद्भवम् । वाल्येऽहं तपसा विष्णुमाराधयितुमंजसा ॥३६२॥
 गत्वा हि तीर्थे गोमत्यास्तपसा तोष्य शाङ्किणम् । अहनिंशं महात्मानं नारायणमनन्यधीः ॥३६३॥
 यस्यांशेन मया भृम्यामवतारो धृतोऽस्ति हि । भूभारहरणार्थाय कार्तवीर्यवधेष्य ॥३६४॥
 ततः प्रसन्नो देवेशः शंखचक्रगदाधरः । उवाच माँ रघुश्रेष्ठ प्रसन्नमुखपंकजः ॥३६५॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन् विहितं ते तपो महत् । मच्चिदंशेन युक्तस्त्वं जहि हैह्यपुंगवम् ॥३६६॥
 कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसा श्रमः । ततस्त्रिःसप्तकृत्वस्त्वं हृत्वा क्षत्रियमडलम् ॥३६७॥
 कृत्स्नां भूमिं कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमुपावह । त्रेतायुगे दाशरथिर्भव्यः रामोऽहमव्ययः ॥३६८॥
 उत्पत्स्ये परया भक्त्या तदा द्रष्ट्यसि मां पुनः । मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया कृतम् ॥३६९॥
 तदा तपश्चरङ्गोके तिष्ठ त्वं ब्रह्मणो दिनम् । इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवस्तथा सर्वं मया कृतम् ॥३७०॥
 स एव विष्णुस्त्वं राम जातोऽसि ब्रह्मणाऽर्थितः । मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम् ॥३७१॥

हे स्वामिन् ! हम एक गुणवाले तथा आप अनेक गुणवाले हैं । रघुवंशी लोग गो, ब्राह्मण, देवता तथा स्त्रीपर शास्त्र नहीं उठाते ॥ ३५४ ॥ मैंने और इन सबने आपके चरणोंमें जीवन अपेण कर दिया है । आप जैसा चाहें वैसा करें । यदि चाहें तो मार डालें, परन्तु मैं ब्राह्मणके साथ युद्ध करापि नहीं कहेंगा ॥ ३५५ ॥ रामके ऐसा कहनेपर क्षत्रियोंके नाशकस्वरूप जामदग्न्य (परशुराम) को क्रुद्ध देखकर वसुधा कौपने लगी । चारों ओर अन्धकार छा गया तथा सातों समुद्र क्षुभित हो उठे । तब दशरथपुत्र वीर रामने भी परशुरामको श्रीघरसे देखकर उनके हाथसे धनुष छीन लिया और ढोरी चढ़ा तथा भाष्यमेंसे बाण निकाल और उसपर चढ़ा तथा बलपूर्वक खींचकर भार्गव परशुरामसे कहने लगे—हे ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनिए और मुझे लक्ष्य बताइए । मेरा बाण खाली नहीं जा सकता ॥ ३५६-३५७ ॥ शीघ्र ही मुझे या तो लोकोंको विद्ध करनेकी आज्ञा दीजिए अथवा अपने दो चरणोंको । रामके इस वचनको सुनकर विकृतमुख होते हुए परशुरामने पूर्व वृत्तान्तको स्मरण करते हुए कहा—हे राम ! हे राम ! हे महावाहो ! मैं आपको जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलयके कारणस्वरूप पुराणपुरुष साक्षात् परमेश्वर विष्णु समझता हूँ । वचपनमें मैंने गोमती-तीर्थमें जाकर शार्ङ्गधनुषघारो विष्णुभगवान्को, जिनके एक अंशसे मैंने संसारमें भूमार हरण करने तथा कातंवीर्यको मारनेके लिए अवतार लिया है, उन्हें अपने तपसे प्रसन्न किया । तब प्रसन्नमुख होकर शंख-चक्रगदापद्मधारी उन देवेशने मुझसे कहा ॥ ३६०-३६५ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन् ! तप करना छोड़कर तू उठ खड़ा हो । मैंने तेरे तपोबलको जान लिया है । मेरे चिदंशसे युक्त होकर तू हैह्यश्रेष्ठ तथा अपने पिताको मारनेवाले कातंवीर्यको मार । जिसके लिए तूने तपका परिश्रम किया है । वादमें इक्कीस बार क्षत्रिय-समुदायका नाश करके समस्त पृथिवी कश्यपको दान देकर शान्त हो । पश्चात् त्रेतायुगमें मैं अविनाशी दाशरथी राम होकर उत्पन्न होऊँगा । तब तू परम भक्तिसे मुझे देखेगा । उस समय मैं तुझे दिया हुआ अपना तेज लौटा लूँगा ॥ ३६६-३६७ ॥ तदनन्तर ब्रह्माके एक दिन तक तू तप करता हुआ संसारमें

अद्य मे सफलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो । नमोऽस्तु जगता नाथ नमस्ते भक्तिभावन ॥३७२॥
 नमः कारुणिकानंतं रामचन्द्रं नमोऽस्तु ते । देव यद्यत्कृतं पुण्यं मया लोकजिगीपया ॥३७३॥
 तत्सर्वं तव ब्राणाय भूयाद्रामं नमोऽस्तु ते । ततो मुक्त्वा शरं गमस्तत्कर्म भस्ममात्करोत् ॥३७४॥
 ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः । जामदग्न्यं तदा प्राह वरं वरय चेति सः ॥३७५॥
 ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममव्रीत । यदि मेनुऽग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन ॥३७६॥
 त्वद्भक्तसंगस्त्वत्पादे मम भक्तिः सदाऽस्तु वै । तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥३७७॥
 पूजितस्तदनुज्ञातो महेन्द्राचलमन्वगात् । रावणेन जिता देवाः सगर्वो रावणो महान् ॥३७८॥
 सहस्रबाहुना वद्धः सोऽर्जुनो भार्गवेण हि । हतः क्षणेन समरे सोऽद्य श्रीभार्गवोऽपि च ॥३७९॥
 जितस्तद्वनुपा ब्राणमोचनाद्राघवेण हि । एवं श्रीरामचंद्रस्य पौरुषं कि वदाम्यहम् ॥३८०॥
 अथ राजा दशरथो रामं मृतमिवागतम् । दृढमालिङ्ग्य हृष्णेण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजन् ॥३८१॥
 ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुरीं ययौ । अयोध्यायां सुमंत्रोऽपि नृपं श्रुत्वा समागतम् ॥३८२॥
 नगरीं शोभयामास पताकाध्वजतोरणैः । वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य रामं प्रत्युद्ययौ जवात् ॥३८३॥
 अथो नदत्सु वाद्येषु राजा पुत्रः सुहृजनैः । विवेश नगरं पोर्णः पश्यन्नृत्यादिकं पथि ॥३८४॥
 रामादयः स्वपत्न्या ते गजसंस्था ययुः पुरीम् । ननृत्वार्गनार्थं तुष्टुमार्गधादयः ॥३८५॥
 एवं राजा गृहं गत्वा बालकैः स्वीयसम्भवनि । रमापूजाः कार्यित्वा ददौ दानान्यनेकशः ॥३८६॥
 तदाऽलकारवस्त्रादैः सुहृदः पार्थिवादयः । रामादीन्पूजयामासुस्तथा दशरथं नृपम् ॥३८७॥

रह। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्छानि हो गये । मैंने भी सब वैसे ही किया ॥ ३७० ॥ हे राम ! वही आप ब्रह्मासे प्राप्ति होकर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं । मेरे तनमें स्थित अपना तेज आपने ही फिर आज आहरण कर लिया है ॥ ३७१ ॥ आपके दर्शनसे मेरा जन्म सफल हो गया । हे भक्तिभावन ! हे जगन्नाथ ! हे करुणाशील ! हे रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे देव ! लोकोंको जीतनेकी इच्छासे मैंने जो जो कर्म किये हैं, वे सब आपके बाणको समर्पित हैं (अर्थात् उन्हें आप अपने बाणका लक्ष्य बनाकर नष्ट कर दें) । तब रामने बाण छोड़कर उनके कर्मोंको भस्म कर दिया ॥ ३७२-३७४ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर करुणामय भगवान् थे रामने परशुरामसे कहा कि तुम वर माँगो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ ॥ ३७५ ॥ यह सुनकर प्रसन्न मनसे भाग्यवते रामसे कहा—हे मधुसूदन राम ! यदि आप मेरेपर अनुग्रह रखते हों तो मुझे सदा आप अपने भक्तोंका संग तथा अपने विषयमें निर्मल भक्ति प्रदान कर । तब रामचन्द्रजीने 'तथास्तु' कहा । तदनन्तर परशुराम उन्हें नमस्कार तथा परिक्रमा करके और आज्ञा लेकर महेन्द्राचलकी ओर चल दिये । जिस रावणने देवताओंको जीता था, उस सगर्वं महान् रावणको सहवृत्ताहु अर्जुनने वाँध लिया था । उसी अर्जुनको परशुरामने दुद्ध करके क्षणभरमें मार डाला था । उन परशुरामको भी रामने उन्हींके दिये हुए घनुपर बाण चढ़ाकर जीत लिया । हे पार्वती ! इस प्रकार रामके पुरुषार्थका वर्णन मैं कहाँ तक कहूँ । उनके बल-वीर्यका अन्त नहीं है ॥ ३७६-३८० ॥ पश्चात् राजा दशरथ रामको मरकर लीटे हुए की तरह आलिगन करके हृष्णके आंसू बहाने लगे ॥ ३८१ ॥ वादमें प्रसन्न मन होकर वे स्वस्थ चित्तसे अयोध्यापुरोंको चल पड़े । उधर अयोध्यामें सुमन्त्रने जब राजा दशरथके आगमनकी बात सुनी तो उन्होंने नगरीको पताका, ध्वजा तथा तोरणोंसे खूब सजाया और हाथी लेकर रामको लेनेके लिए आगे आये ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥ राजा दशरथने पुत्र-मित्र तथा नगरनिवासियोंके साथ रास्तेमें नृत्य आदि देखते हुए बाजे-गाजेके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ ३८४ ॥ राम आदिने भी अपनी स्त्रियोंके साथ हाथियोंपर बंठकर पुरोंमें प्रवेश किया । वेश्यायें नृत्य करने लगीं तथा भाट आदि स्तुति करने लगे ॥ ३८५ ॥ राजाने घर जाकर बालकोंसे लक्ष्मीका पूजन करवाया और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ३८६ ॥ पश्चात् सुहृदों तथा राजाओंने वस्त्र-अलङ्कारसे राम आदिकी और राजा दशरथकी पूजा की ॥ ३८७ ॥

दशरथोऽपि तान्सर्वान् पूजयामास वैभवैः । ततस्ते सुहदः सर्वे नृपाश्च स्वस्थलं ययुः ॥३८८॥
ग्रीत्या युधाजितं राजा स्थापयामास स्वांतिकम् । रामाद्या रमयामासुः स्वस्वदारैः स्वसञ्चासु ॥३८९॥
पार्वत्युवाच

श्रीविष्णोस्तु चिदंशेन जामदग्न्यस्त्वया स्मृतः ॥३९०॥

तद्वचायं राघवः किं तु द मे संशयं प्रभो ।

श्रीशिव उवाच

अष्टावंशेन विघृता अवताराश्च विष्णुना ॥३९१॥

रामकृष्णावतारौ च पूर्णरूपेण तौ घृतौ । वरिष्ठौ सकलेष्वेवावतारेषु हि तावुभौ ॥३९२॥
तयोरपि वरः पूर्वः सत्यसंधो जितेन्द्रियः । ज्ञेयो रामावतारो हि नानेन सद्वशः परः ॥३९३॥
कृष्णः कृष्णरुचिज्ञेयः श्रीरामो रुक्मसंरुचिः । एवं गिरीन्द्रजे प्रोक्तं सीतायाश्च स्वयंवरम् ॥

अस्य सर्गस्य अवणान्मंगलं लभ्यते नरैः ॥३९४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे सीतास्वयंवरो नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका शत्रु राजाओंके साथ युद्ध तथा विष्णुको बृन्दाका शाप)

श्रीशिव उवाच

अथ सीतायुतः श्रीमान् रामः साकेतसंस्थितः । बुझुजे विविधान् भोगान् राजसेवापरोऽभवत् ॥ १ ॥
शरत्कालाश्विने मासि जनकेन स्वमन्त्रिणः । आह्वानाय च राजानं प्रेषितास्त्वरितं ययुः ॥ २ ॥
तानागतानन्दशरथः शीघ्रं सत्कृत्य सादरम् । प्रच्छागमने हेतुं तेऽपि नत्वा तमूचिरे ॥ ३ ॥
दीपावल्युत्सवार्थं त्वां स कुदुम्बं समंत्रिणम् । पौरजानपदैः साकमाह्यामास ते सुहृत् ॥ ४ ॥
तत्तेषां वचनं श्रुत्वा दूतानाज्ञापयन्नृपः । कथ्यतां नगरे राष्ट्रे गमनं मिथिलां प्रति ॥ ५ ॥

राजा दशरथने भी उन सबका अनेक विभवोंसे सत्कार किया । वादमें वे सब सुहृद् तथा राजा लोग अपने-अपने स्वानोंको चले गये ॥ ३८८ ॥ किन्तु राजाने ग्रीत्यांतिको रोक लिया । राम-लक्ष्मण तथा भरत आदि भी अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ जाकर अपने-अपने महलोंमें रमण करने लगे ॥ ३८९ ॥ पार्वतीजी कहने लगीं—हे शिवजी ! श्रीविष्णुके चिदंशसे परशुरामजीका अवतार आपने बताया और उसीसे आपने रघुपति रामचन्द्रजीका भी अवतार बताया है । फिर इन दोनोंमें क्या अन्तर है ? सो कहकर मेरी शङ्खा दूर कीजिये । श्री शिवजीने उत्तर दिया कि विष्णुभगवानने अपने अंशसे कुल आठ अवतार घारण किये थे । उनमेंसे राम तथा कृष्णका पूर्ण अवतार था । सब अवतारोंमें ये दो अवतार श्रेष्ठ थे ॥ ३९०-३९२ ॥ उन दोनोंमें भी सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय रामावतार उत्तम था । रामके समान और कोई नहीं था ॥ ३९३ ॥ कृष्णको कृष्णरुचिवाले तथा रामको रुक्महचिवाले जानो । इस प्रकार शिवजीने गिरीन्द्रितनया (पार्वती) को सीताका स्वयम्भव कह सुनाया । इस सर्गको सुननेवाले मनुष्योंको मङ्गल लाभ होता है ॥ ३९४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकायां सारकाण्डे सीतास्वयम्भवरो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीशिवजी बोले— हे देवि । श्रीमान् राम सीताके साथ अयोध्यामें विविध राजभोगोंका सुख भोगने लगे ॥ १ ॥ शरत्कालके आश्विन महीनेमें राजा जनकने अपने मन्त्रियोंको महाराज दशरथको बुलानेके लिये भेजा । वे शीघ्र अयोध्या जा पहुँचे ॥ २ ॥ राजा दशरथने उनका आदर-सत्कार करके आनेका कारण पूछा । मन्त्रियोंने नमस्कार करके कहा—॥३॥ आपके मित्र राजा जनकने सकुदुम्ब आपको मन्त्रियों, पुण्यासियों तथा

मुमुहूर्ते ततो राजा हस्त्यश्वरथपत्तिभिः । पौरजनिपदेः साकं ययौ करिविराजितः ॥६॥
 राजः पृष्ठे समाजग्रुग्जोपरि विराजिताः । रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नास्ते स्वलंकृताः ॥७॥
 कौसल्याद्या राजदाराः स्तुषाभिस्ताः पृथक् पृथक् रत्नमाणिक्यमुक्तादिशोधितासु वरासु च ॥८॥
 करिणीषु समासीना वेष्टिता वेत्रपाणिभिः । धातुकाभिः स्वदासीभिर्युर्बुद्धादिभूपिताः ॥९॥
 आगतं नृपतिं श्रुत्वा जनकः पौरवासिभिः । प्रत्युद्गगाम हयेण निनाय नगरीं प्रति ॥१०॥
 वाद्यघोषनिनादैश्च दुन्दुभीनां महास्वनैः । वारांगनानां नृत्याद्यैर्गायिकानां च गायनैः ॥११॥
 मार्गे मार्गे महासौधारूढ़स्त्रीणां कदम्बकैः । पुष्पबृष्टिविवर्याभिर्ययौ नृपगृहं नृपः ॥१२॥
 ततो गृहाणि रम्याणि पूरितान्यन्ववारिभिः । प्रविवेश नृपश्चेष्टो जनकेनातिमानितः ॥१३॥
 ततो नानासमुत्साहैर्मिष्टान्नैर्नृत्यगायनैः । वस्त्रं रामरणः सर्वान् जामातंश्च विशेषतः ॥१४॥
 मणिरत्नादिदीपैश्च मुहुर्नाराजनैरपि । जनकः पूजयामास दीपावल्यां महादिने ॥१५॥
 दीपोत्सर्वैर्महापुण्यैर्वलिराज्य प्रवर्तते । आनन्दः सर्वलोकानां मंगलानि गृहे गृहे ॥१६॥
 अस्यंगोद्वर्तनादैश्च वरपकाशभोजनैः । गोदासदासीदानैश्च हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ॥१७॥
 चकार तुष्टान् जामातन् जनको नृपतिं तथा । नृपपत्नी स्वदुहितरयोध्यास्थादिकान् क्रमात् ॥१८॥
 वतः प्रस्थानमकरोत्पुर्णी दशरथो नृपः । ततो राजा दशरथः सैन्येन परिवेष्टिः ॥१९॥
 ययौ शनैः शनैर्मार्गं सुहन्मन्त्रिपुरःसरः । एतस्मिन्नन्तरे मार्गे सीतार्थं धनुषा पुरा ॥२०॥
 मग्नमाना नृपतयः पूर्ववैरमनुस्मरन् । असंख्याताः ससंन्यास्ते रुहधुर्नृपतिं पथि ॥२१॥

देशवासियोंके सहित दीवालीके उत्सवपर बुलाया है ॥४॥ उनका यह वचन सुनकर राजाने दूतों द्वारा मिथिला घलनेका समाचार सारे गाँवों तथा नगरोंमें कहला दिया ॥५॥ फिर शुभ मुहूर्तं देखकर राजा बश्वारूढ़, गजारूढ़ तथा पंदल संनिकोंको साथ लेकर नगर तथा राष्ट्रके लोगोंके साथ हाथीपर सवार होकर चले ॥६॥ राजाके पीछे सुन्दर अलंकार धारण करके हाथीपर सवार होकर राम, लक्ष्मण, भरत और शशुभ्ज चले ॥७॥ उनके पीछे कोसल्या आदि राजाकी स्त्रिएँ भी अपनो-अपनी पुत्रवधुओंके साथ रत्न-माणिक्य-मोती आदिसे सुशोभित उत्तम हृषिनियोंपर अलग-अलग सवार हो बैतधारी सिपाहियों, बाइयों तथा दासियोंसे घिरे हुई वस्त्र आदिसे भूषित होकर चल पड़ी ॥८॥९॥ राजा दशरथका आगमन सुनकर राजा जनक पुरवासियोंको साथ लेकर स्वागत करनेके लिए गये और राजा दशरथको नगरमें ले आये ॥१०॥ रास्तेमें जगह-जगह वायोंका धोषनाद और नगाढ़ोंका तुमुल निनाद होने लगा, वारांगनाएँ नाचने लगीं, गायकोंके गाने होने लगे तथा बड़े-बड़े महलोंकी अटारियोंपर स्थित स्त्रियोंके क्षुण्ड फूलोंकी बौठार करने लगे । इस प्रकार राजा दशरथ राजभवनमें पहुँचे ॥११॥१२॥ पश्चात् जनकसे सम्मानित होकर अन्न-जल आदिसे परिपूर्ण भवनोंमें पशारे ॥१३॥ बादमें विशेषरूपसे राजा जनकने सब जामाताओंकी विविध उत्सवोंसे, मिष्ठान्नसे, नृत्यसे, गीतसे, वस्त्रसे, अलंकारसे तथा मणिरत्नमय दीपकोंका आरतीसे दीपावलीके शुभ दिन बारम्बार पूजन तथा सल्कार किया ॥१४॥१५॥ दीपोत्सवके महापुण्यसे राजा बलिका राज्य आरम्भ हुआ था । इसांसे सब लोगोंको आनन्द हुआ तथा घर-घर मंगल होने लगा ॥१६॥ राजा जनकने उन जामाताओंके शरीरमें तेल और चन्दन आदि लगा तथा गुलाबजल छिड़ककर इत्र आदि लगाया और उन्हें सुन्दर पकवान जिमा तथा हाथी, घोड़े, रथ, गाएँ, प्यादे, दास तथा दासिएँ देकर जमाइयों और राजा दशरथको सन्तुष्ट किया । तदनन्तर क्रमशः राजाको, स्त्रियोंको, अयोध्यानिवासियोंको और अपनी लड़कियोंको भी राजा जनकने यथेच्छ वस्तुएँ देकर हनुष्ट किया ॥१७॥१८॥ तदनन्तर जब कि राजा दशरथ राजाओं, मन्त्रियों, सेना तथा मित्रोंके साथ धीरे-धीरे अयोध्याको जा रहे थे । उसी समय उन राजाओंने जिनका कि सीतास्वयम्बरमें मानभंग हुआ था, उस बैरका स्मरण करके असंख्य सेनाओंके साथ आकर राजा दशरथको धेर लिया । उनको देखा

तान्दृष्टा नृपतींश्चापि किमेतदीति विहूलः । मन्त्रिभिर्मन्त्रयामासु जनकः स्वजन्नरपि ॥२२॥
 एतांस्मन्नन्तरं रामः श्रुत्वा चिन्ताणवे निजम् । निमग्नं पितरं शीघ्रं ययौ लक्ष्मणसंयुतः ॥२३॥
 नत्वा दशरथं रामः किञ्चिन्नभ्रहं जगौ । तात राजन्न कर्तव्या चिन्ता सति मयि त्वया ॥२४॥
 क्षणादेव वधिष्यामि पश्य त्वं कौतुकं मम । ततो रामवच्चः श्रुत्वा राजाऽऽलिङ्ग्य रघृत्तमम् ॥२५॥
 प्राह पड्वाषिको बालस्त्वं कथं योद्धामच्छसि । अरण्ये सकुटुम्बोऽहं वेष्टितोऽस्मि नृपाधमैः ॥२६॥
 अहमेव गमिष्यामि योद्धुं रक्षस्व वाहिनीम् । तत्तातवचनं श्रुत्वा रामस्तं पुनरब्रवीत् ॥२७॥
 यदा मे कुठिता शक्ति पश्यसि त्वं रणांगणे । तदा मे कुरु साहाय्यं तावदत्र स्थिरो भव ॥२८॥
 स्वां वाहिनीं सकुटुंचां तात त्वं रक्ष मद्विदा । इत्युक्त्वा पितरं नत्वा सज्जीकृत्य शरासनम् ॥२९॥
 जगाम रथमारुढो लक्ष्मणोऽपि तमन्वगात् । तां दृष्टा भरतश्चाथ शत्रुघ्नोऽपि जगाम सः ॥३०॥
 तान्दृष्टा दशसाहस्रीं राजसेनामचोदयत् । ततस्ते पायिवाः सर्वे रथस्थं तं रघृत्तमम् ॥३१॥
 निरीक्ष्य दर्शयामासुः स्वसेनायां परस्परम् । समागतोऽयं श्रीरामः स्वपितृस्यन्दनस्थितः ॥३२॥
 एष वै सुमहृच्छ्रीमान् विटपी सम्प्रकाशते । विराजत्युज्ज्वलस्कन्धः कोविदारघ्वजो रथे ॥३३॥
 दशरथाज्ञया तस्य रथे शस्त्राधपूरिते । घ्वजबद्धपताकोच्चकोविदारे स्थितस्त्वयम् ॥३४॥
 एवं वदन्तस्ते सर्वे रथ्येद्विधुं समाययुः । ततोऽभवन्महद्युद्धं घोरं तच्च परस्परम् ॥३५॥
 अस्त्रः शस्त्रभिन्दिपालैः ज्ञतद्वानाभिः परश्चर्धः । रामस्य सैनिकान् मुक्त्वा राजानो राममन्वयुः ॥३६॥
 ते वर्षुर्महाशस्त्रेणार्णव्याप्य दिग्म्बरम् । तान्दृष्टा नृपतीन् सर्वान् राममेवाभिसम्मुखान् ॥३७॥
 लक्ष्मणः प्राद्रवच्छीघ्र भरतोऽपि च शत्रुहा । स्वामितारकवद्वोरमासीयुद्धं सुदारुणम् ॥३८॥
 ततो नृपतयः सर्वे शस्त्राधैर्मरतं तदा । ते विघ्वा भूच्छितं चक्रः स्पृदनात्पतितो भूवि ॥३९॥

तो घबराकर राजा दशरथ मन्त्रियों तथा स्वजनोंको पास बुलाकर विचार करने लगे कि यह क्या बात है ? ॥ १९-२२ ॥ अपने पिताको चिन्तासमुद्रमें डूबा सुनकर राम लक्ष्मणके साथ उनके पास गये ॥ २३ ॥ पिता दशरथको नमस्कार करके राम नम्रतापूर्वक कहने लगे—हे तात ! हे राजन् । मेरे रहते हुए आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥ २४ ॥ मैं क्षणभरमें इन सबको मार डालूँगा । आप मेरा कौशल देखिये । रामके वचनको सुनकर राजाने उनका आलिगन करके कहा—हे राम ! तैः वर्षका बालक तू क्या युद्ध करेगा ? इस अरण्यमें सकुटुम्ब मुक्षको इन नीच राजाओंने आ घेरा है । इसलिए मैं ही इनको मारूँगा और तू सेनाकी रक्षा कर । पिताके इस वचनको सुनकर राम उनसे फिर कहने लगे—॥ २५-२७ ॥ जब आप मेरी शत्रि को रणाङ्गनमें कुपित होते देखें, तब मेरी सहायता करिएगा । तबतक आप मेरे कहनेसे यहीं रहकर सकुटुम्ब अपनी सेनाकी रक्षा करें । ऐसा कहकर रामने पिताको नमस्कार किया और घनुषको ठीक करके रथपर चढ़कर चल दिये । उनके पीछे लक्ष्मण भी गये । उन दोनोंको जाते देख भरत और शत्रुघ्न भी उनके साथ चल दिये ॥ २८-३० ॥ उन सबको जाते देखकर राजा दशरथने दस हृजार संनिकोंकी सेना उनके साथ भेजी । उधर सब राजे रथस्थित रामको बाते देख अपनी सेनामें एक दूसरेको दिखाने लगे कि यह राम अपने पिताके रथपर चढ़कर आ रहा है । यह बड़ा तेजस्वी है । विशाल शाखावाले पेढ़के समान ऊँचे तथा शोभित कन्धेवाला राम रथमें कोविदार (कचनार या रत्तकान्वन) की घ्वजा लगाये हुए अपने पिताकी आजासे उनके ही रथपर सवार होकर आ रहा है । ऐसा कहकर वे सब राजे युद्ध करनेके लिए रथ लेकर चले । पश्चात् परस्पर बड़ा भारी युद्ध होने लगा ॥ ३१-३५ ॥ वे सब एक दूसरेपर अस्त्र, शस्त्र, तीर, तोप तथा फरसे चलाने लगे । वे राजे रामके संनिकोंको छोड़कर रामपर झपटे ॥ ३६ ॥ वे लोग आकाशको व्याप्त करके बड़े-बड़े शस्त्रों तथा बाणोंकी वर्षा करने लगे । उन सब राजाओंको अकेले रामके साथ युद्ध करते देख लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न भी दौड़ पड़े और उनमें तारकासुर तथा कार्तिकेयकी तरह भयानक युद्ध होने लगा । तब सुत-

भरतं पतितं दृष्टा शत्रुघ्नं विन्यधुः शरेः । तं चापि विरथं कृत्वा दृद्रुवुर्लक्षणं नृपाः ॥४०॥
 ववर्षुनिंशितैर्वाणश्चकुस्तं व्याकुलं रणे । तथेव राघवं चापि शरराच्छादयन्नृपाः ॥४१॥
 ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि लीलया समरांगणे । पठ्यत्सु जालरं ध्रुश्च कौसल्याद्यासु मारुषु ॥४२॥
 सीतया आतृपत्नाषु पित्रा मंत्रिकुलेष्वपि । टणत्कृत्य महच्चाप वायव्याख्येण तान्नृपान् ॥४३॥
 शुष्कपर्णवदुद्धूय प्राक्षिपदावधोधसि । मोहनास्त्रेण शेषान् हि मोहयामास राघवः ॥४४॥
 लुलुंठ सकलं सेन्यं हस्त्यश्चरथसंकुलम् । ततो मूर्छितमालोक्य भरतं कैक्यी रणे ॥४५॥
 करिण्याःशीघ्रमुत्प्लुत्य शुशोचाके निधाय तम् । ततो दशरथश्चापि कौसल्याद्या नृपस्त्रियः ॥४६॥
 सात्वयित्वाऽथ तान् रामः सौमित्रिं प्राह वेगतः । इतो विदूरे सौमित्रे मुद्रलस्य तपोनिधेः ॥४७॥
 आश्रमोऽस्ति हि तत्र त्वं गत्वा वल्लीः शुभावहाः । संजीविन्यादिकाः सर्वाः शीघ्रमानय लक्षणं ॥४८॥
 मुनेस्तपःप्रभावेण बहवः संति तत्र वै । तथेति लक्षणो गत्वा स्यदनस्थस्त्वरान्वितः ॥४९॥
 अवरुद्ध रथाद्वीरः संविवेशाश्रमं मुनेः । निवारितः स बदुकैः समाधिविरमे मुनेः ॥५०॥

याञ्चां कृत्वा शुभा वल्लीः प्राप्त्यसे त्वं न चान्यथा ।

कालातिक्रमभीत्या स लक्षणोऽपि रघूत्तमम् ॥५१॥

बृत्तं निवेदयामास पुनस्तं राघवोऽव्रवीत् । निवारयित्वा बदुकान् विना शुखेस्त्वरान्वितः ॥५२॥
 आनय त्वं शुभा वल्लीर्मा शंकां च मुनेः कुरु । सोऽपि राम ज्यया गत्वा निवार्य बदुकान् लक्षणात् ॥५३॥
 बलात्कारेण ता वल्लीर्गृहीत्वा राममागतः । भरतं जीवयामास विश्वल्यं कृत्य सानुजम् ॥५४॥
 ततः समुत्थितं दृष्टा कैक्यी भरत मुदा । संतोषं परमं चक्रे कैक्यी पितरं तदा ॥५५॥
 राघवं सा समालिङ्ग्य भरतं परिषस्वजे । ततो राजाऽतिसंतुष्टः समालिङ्ग्य रघूत्तमम् ॥५६॥

राजाओंने शस्त्रोंसे भरतको बींधकर मूर्छित कर दिया और वे रथसे गिर पड़े ॥ ३७-३९ ॥ भरत-
 को पृथ्वीपर गिरा देखकर राजाओंने शरोंसे शत्रुघ्नको भी बिछू किया । उनको भी गिराकर वे राजे
 लक्षणको और दीड़े ॥ ४० ॥ उनपर भी बाणोंकी वर्षा करके व्याकुल कर दिया । इसी प्रकार राघव
 रामको भी राजाओंने बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ ४१ ॥ बादमें श्रीरामचन्द्रने समरके मंदानमें
 पालकियोंकी खिड़कियोंमें लगी हुई चिकोंमेंसे देखती हुई कौसल्या आदि माताओंके, सीताके तथा
 अपने भाइयोंकी स्त्रियोंके समक्ष राजाओं और मन्त्रियोंके सामने अपने बड़े भारी घनुषका टकोर करके उस-
 पर वायव्यास्त्र चढ़ाकर उससे उन राजाओंको सूखे पत्तोंकी तरह उड़ाकर समुद्रके किनारे फेंक दिया । बाकी
 लोंगोंको रामने मोहनास्त्रसे मूर्छित कर दिया ॥ ४२-४४ ॥ हायी, घोड़े, एव तथा पंदलोंकी समस्त सेगा-
 को जमीनमें लिटा दिया । रणमें भरतको मूर्छित देख केकेयी हथिनीसे उतरी और उनको गाढ़में
 लेकर विलाप करने लगी । तदनन्तर राजा दशरथ तथा उनकी स्त्रियै कौसल्या आदि भी विलाप करने
 लगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तब रामने सबको आश्वासन दकर कहा—लक्षण ! यहाँसे कुछ दूरपर एक तपोनिधि
 मुद्रूलमुनिका आश्रम है । वहाँ जाकर तुम कल्याणकारिणी संजीवनी आदि बूटियोंको ले आओ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥
 मुनिके तपके प्रभावसे वहाँ अनेक प्रकारकी जड़ियें उगी हुई हैं । ‘बहुत अच्छा’ कहकर बीर
 लक्षण रथपर चढ़ाकर शीघ्र मुनिके आश्रममें गये । वहाँके ब्रह्मचारियोंने उनको बूटिये लेनेसे
 रोका और कहा कि तुम मुनिके समाधिसे उठनेपर उनसे पूछकर ही बूटियें ले जा सकते हो—अन्यथा
 नहीं । समय बीत जानेके डरसे लक्षणने आकर रामसे सब हाल कहा । रामने फिर कहा कि उन
 बदुकोंको अस्त्रके बिना हाथसे हटाकर शीघ्र ही उन शुम जड़ियोंको ले आओ । मुनिसे मत डरो । रामकी
 आज्ञा पाकर वे वहाँ गये तथा बलप्रयोगके बिना ही बदुकोंको हटाकर उन जड़ियोंको लेकर रामके पास
 लौट आये । तब रामने भरतके शरीरसे बाण निकालकर उन्हें जड़ीसे जीवित किया । भरतको स्वस्थ देखकर
 कैक्यी बहुत प्रसन्न हुई । उसने रामका आलङ्घन करके भरतको छातीसे लगा लिया । राजाने भी प्रसन्न

हर्षान्नानोत्सवांस्तत्र चकार गुरुणा द्विजैः । ततस्ते वटवः सर्वे हाहाकृत्य मुनीश्वरम् ॥५७॥
 वृत्तं निवेदयामासुः समाधिविरमे मुनेः । स मुद्रलोऽपि तच्छ्रुत्वा विस्मयेनाब्रवीद्वृत्तम् ॥५८॥
 कोलक्षणः किमर्थं कस्याज्ञया सोऽहरद्वृत्तम् । विदित्वा सकलं वृत्तमागच्छध्वं त्वरान्विताः ॥५९॥
 तथेति ते दशरथं गत्वा प्रोचुस्त्वरान्विताः । कस्त्वं किमर्थमानीता वल्लयो लक्षणहस्ततः ॥६०॥
 तान्दृष्ट्वा क्रोधसंयुक्तान् राजा चिन्तातुरोऽब्रवीत् । अहं दशरथो वल्लयो भरतार्थं ममाज्ञया ॥६१॥
 आनीता मुनये सर्वे ब्रूवध्वं नतिपूर्वकाः । अहमप्यागमिष्यामि मुनिं सांत्वयितुं जवात् ॥६२॥
 ततस्ते मुनये सर्वे नृशनामाद्यवर्णयन् । श्रुत्वा रामस्य पितरं क्रोधं संहृत्य वेगतः ॥६३॥
 दर्शनार्थं मति चक्रे तावदृष्टो नृपः पुरः । वद्ध्वा करसंपुटं तं प्रणमतं नृपोत्तमम् ॥६४॥
 प्रार्थयन्तं समुत्थाप्य पूजयामास सादरम् । रामाद्या नृपपुत्राश्च कौसल्याद्या नृपख्लियः ॥६५॥
 प्रणम्याथ मुनिं स्तुत्वा तस्युर्मुद्रलभार्यया । सुमत्या पूजिताः सर्वां राजदारा विशेषतः ॥६६॥
 ततो दशरथः प्राह मुनिं स्तुत्वा पुनः पुनः । मयाऽपराधितं राजा क्षम्यतां तत्त्वया मुने ॥६७॥
 मुनिर्दशरथं प्राह द्युपकारो महान् कृतः । नोचेत्कथं दर्शनं मे ध्यानस्थस्य सुतस्य ते ॥६८॥
 श्रीरामस्य ससीतस्य नृवेषस्य हि मायया । इति तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तुष्टं मुनीश्वरम् ॥६९॥
 उवाच नृपतिर्नेत्वा किंचित्प्रष्टुमना मुनिम् । ज्ञात्वा नृपस्य स मुनिर्हृदतं प्रष्टुकामुकम् ॥७०॥
 एकांते तुलसीखडं नीत्वा तं नृपमेव सः । पग्रच्छ किं ते वांछाऽस्ति वदस्व कथ्यते मया ॥७१॥
 तमब्रवीदशरथः श्रीरामस्य हि भावि यत् । हिताहितं सविस्तारं ज्ञातुमिच्छे मुनीश्वर ॥७२॥
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरब्रवीत् ।

मुद्रल उवाच

साभान्नारायणो विष्णुः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥ ७३ ॥

होकर रामका हृदयसे लगाया । उस समय उन्होंने आनन्दसे गुरु तथा ब्राह्मणों द्वारा अनेक उत्सव कराये ।
 उधर समाविसे निवृत्त होनेपर सब वटुकोंने हाहाकार करके मुनिको सब हाल सुनाया । सब मुद्रल मुनि
 विस्मित होकर वटुकोंसे कहने लगे—॥ ४९-५८ ॥ जाओ, वह लक्षण कौन है, किस लिये और किसके
 कहनेसे ब्रूटियाँ ले गया है । शीघ्र इस वातका पता लगाकर आओ ॥ ५९ ॥ ‘अच्छा, कहकर उन्होंने
 दशरथके पास जाकर पूछा कि तुम कौन हो और तुमने लक्षणके द्वारा जड़ियें क्यों मँगवायी हैं ? ॥ ६० ॥
 उन्हें कुछ देखकर राजा चिन्तापूर्वक कहने लगे कि मैं राजा दशरथ हूँ । लक्षण मेरे कहनेसे भरतके लिये
 जड़ियें ले आया है । मेरा नमस्कार कहकर मुनिसे यह सब वृत्तान्त कह दें । मैं भी मुनिको समझानेके
 लिये शोध्र ही आ रहा हूँ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ लौटकर वटुकोंने मुनिको राजाका नाम आदि कह सुनाया । रामके
 पिताका नाम सुना तो मुनिने क्रोधको रोक तथा शोध जाकर राजासे मिलनेका विचार किया ही था कि
 इतनेमें राजा दशरथ स्वयं आकर सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़े प्रणाम करके प्राप्यना करने लगे ।
 तब खड़े होकर मुनिने उनकी सादर पूजा को । राम आदि राजाके पुत्र तथा कौसल्या आदि राजाकी
 स्त्रियें भी मुनिको प्रणाम करके उनको स्तुति करती हुई खड़ी हों गयीं । मुद्रल मुनिका भार्या सुमतिने
 विशेषरूपसे राजाकी स्त्रियोंका सत्कार किया ॥ ६३-६६ ॥ राजाने वारम्बार स्तुति करके मुनिसे कहा—हे मुनि !
 मुझसे जो अपराध हुआ है । उसको क्षमा करें ॥ ६७ ॥ मुनिने महाराज दशरथसे कहा कि नहीं, तुमने
 मेरा बड़ा भारी उपकार किया है । नहीं तो ध्यानयोग्य और मायासे मनुष्यका रूप धारण किये हुए सीताके
 सहित आपके पुत्र रामका दर्शन मुझे कैसे मिलता ? मुनिके वचन सुन तथा उन्हें प्रसन्न देखकर राजाने
 नमस्कार करके उनसे कुछ पूछना चाहा । इतनेमें मुनि राजाके हृदयकी बात जान गये और एक ओर
 तुलसीकी ज्ञाड़ीमें ले जाकर वे स्वयं राजासे कहने लगे—हे राजन् ! कहो, तुम्हारी क्या पूछनेकी इच्छा
 है, वे उसका उत्तर देंगा ॥ ६८-७१ ॥ राजाने कहा—हे मुनीश्वर ! रामका भविष्य कौसा है ? वे उसका

भूमारहरणार्थाय तवापि वरदानतः । अवतीर्णोऽस्ति त्वतो हि तव पुण्यमहोदयात् ॥७४॥
 अधर्मस्य विनाशं च वृद्धिं धर्मस्य सादरम् । निर्दलनं हि दुष्टानां सज्जनानां च पालनम् ॥७५॥
 करिष्यति महानेष तव पुत्रो रघूत्मः । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥७६॥
 करिष्यति महद्राज्यं गते त्वयि दिवं नृप । सप्तद्वीपपतिश्वार्यं भविष्यति नृपो महान् ॥७७॥
 द्वौ तौ भविष्यतः पुत्रौ चतस्रश्च स्तुपास्तथा । चतुविशतिपौत्राश्र पौत्र्यस्तु द्वादशैव हि ॥७८॥
 असंख्याताः प्रपौत्राद्या भविष्यन्ति सुतस्य ते । कियद्विनैरयं वृदाशापं भोक्तुं हि दंडके ॥७९॥
 गमिष्यति ततः पश्चान्महद्राज्यं करिष्यति । तत्स्य वचनं श्रुत्वा नृपः प्राह मुनिं पुनः ॥८०॥

दशरथ उवाच

का वृदा कस्य भार्या साकथं शप्तो हरिस्तया । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्व मुनीश्वर ॥८१॥
 मुद्रूल उवाच

पुरा जलधरेणासोदद्वं श्रीशंकरस्य च । वृदापातिव्रतबलाद्रक्षितं विष्णुना तदा ॥८२॥
 ज्ञात्वा तदर्शितपथा पार्वत्या धर्षणादिना । जालंधरपुरं गत्वा तदेत्यपुटभेदनम् ॥८३॥
 पातिव्रत्यस्य भंगाय वृदायाश्वाकरोन्मतिम् । अथ वृदारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह ॥८४॥
 भर्तरं महिषारुढं तैलाभ्यक्तं दिगंवरम् । दक्षिणाशागतं मुण्डं तमसाऽप्यावृतं तदा ॥८५॥
 ततः प्रबुद्धासा वाला तं स्वप्नं स्वं विचिन्तती । कुत्रापि नालभच्छर्म गोपुराङ्गलभूमिषु ॥८६॥
 वतः सखीद्रययुता नगरोद्यानमागता । वनाद्वनांतरं याता ददर्शतीव भीषणौ ॥८७॥
 राक्षसौ सिंहवन्नादौ दंष्ट्रानयनभीषणौ । तौ हृष्टा विहृलाऽतीत्र पलायनपरा तदा ॥८८॥
 ददर्श तापसं शांतं सशिष्यं मौनमास्थितम् । ततस्तत्कठमासज्य निजवाहुलता भयात् ॥८९॥
 मुने मां रक्ष शरणमागतामित्यभाषत । तत्स्या वचनं श्रुत्वा ध्यानं मुक्त्वा स वै मुनिः ॥९०॥

हित-अहित जानना चाहता हूँ ॥७२॥ राजाको बात सुनकर मुनि मुद्रूल कहने लगे—साक्षात् नारायण तथा सर्वव्यापी जनादंत विष्णुभगवान् पृथ्वीका भार उतारने तथा पूर्वजन्ममें आपको वरदान देनेके कारण आपके पुण्य-प्रतापसे स्वयं अवतरे है । ये अधर्मका नाश करके धर्मकी वृद्धि करेंगे । रामचन्द्रजी दुष्टोंका दलन करके सज्जनोंका पालन करेंगे । हे नृप ! आपके देवलोक चले जानेपर ये दस हजार दस सौ वर्ष तक राज्य करेंगे । ये सप्तद्वीपके अविष्टि और महान् राजा होंगे ॥७३-७७॥ इनके दो पुत्र और चार पुत्रवधुएं होंगी । चौबीस पांते और बारह पोतियें होंगी । आपके पुत्र रामके परपोते असंख्य होंगे । कुछ दिनोंके लिए ये दण्डकारण्यमें बन्दोंसे प्राप्त शापको छुड़ाने जायेंगे । उसके बाद विशाल राज्य करेंगे । यह सुनकर राजा ने फिर मुनिसे कहा ॥७८-८०॥ राजा दशरथ बोले—वृन्दा कौन थी तथा किसकी स्त्री थी ? उसने भगवान्को नयों शाप दिया ? हे मुनीश्वर ! यह सब विस्तारपूर्वक कहें ॥८१॥ मुद्रूल बोले—पूर्वकालमें जलधर नामका एक दंत्य था । वृन्दा उसकी बड़ी पतिव्रता स्त्री थी । उसके पातिव्रतके बलसे वह शिवजीके साथ युद्ध करके भी नहीं हारा । तब भगवान् विष्णु पार्वतीसे उसका कारण जानकर उनके कथनानुसार जालधरपुर गये । वहाँ दैर्यमिथुनका भेदन करके वृन्दाका पातिव्रत भङ्ग करनेके लिए उन्होंने उसके साथ भोग करनेका विचार किया । तभी वृन्दादेवीने स्वप्नमें अपने पति तो तेलसे नहाये, नगे शरीर, भैसेपर चढ़कर दक्षिण दिशाको जाते, सिर मुड़ाये तथा तमसे आच्छादित देखा । जब वह वाला जागी तो स्वप्नपर विचार करने लगे । गोपुर, छत तथा अंटारी आदिपर उसे कहीं चैन नहीं मिली ॥८२-८६॥ तब वह अपनी दो सखियोंको साथ लेकर नगरके बाहर बागमें मन बहलाने लगी । वहाँ एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे बागमें वह जब फिरने लगी, तब उसको भयानक सिंहके समान गर्जन करनेवाले और भयंकर दाँत तथा नेत्रवाले दो राक्षस दिखाई दिये । उसको देख तथा विहृल होकर वह इवर-उघर भागने लगी । उसे वहाँ सहसा शिष्योंसे युक्त एक मौनव्रतथारी शांत तपस्थी दिखायी दिये । तब वह अपनी दोनों भुजारूपिणी

उन्मीलय नयने वृंदा हृदि दृष्टाऽब्रवीद्वचः । तिष्ठ त्वं बालिके शत्र मा भयं कुरु सर्वथा ॥११॥
इत्युक्त्वा पुरतो दृष्टा राक्षसौ मुनिसत्तमः । निर्भर्त्सर्यंतौ हुंकारैः क्रोधेन महता शृतः ॥१२॥
तौ तदुंकारतखस्तौ पलायनपरौ तदा । तन्सामध्यं मुनेऽदृष्टा वृंदा सा विस्मयावृता ॥१३॥
प्रणम्य दंडवदभूमौ मुनिं वचनमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

रक्षिताऽद्य त्वया घोराद्भूयादस्मात्कृपानिधे ॥१४॥

किंचिद्दिज्ञमुमिच्छामि कृपया तद्ददस्व माम् । जलंधरो हि मे भर्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ॥१५॥
स तत्रास्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत । मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्धर्वमवैक्षत ॥१६॥
तावत्कपी समायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ । ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञाप्रयुक्तौ गगनांतरात् ॥१७॥
गत्वा शुणार्धादिगत्य वानरावग्रतः स्थितौ । शिरःकवंधहस्तौ च दृष्टाऽविधतनयस्य सा ॥१८॥
पपात मृच्छिता भूमौ भर्तुव्यसनदुःखिता । कर्मण्डलुज्जलैः सिक्ता मुनिनाऽश्वासिता तदा ॥१९॥
रुदित्वा सुचिरं वृंदा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठं जीवयैनं मुने प्रियम् ॥१००॥

त्वमेवास्य पुनः शक्तो जीवनाय मतो मम ।

मुनिरुवाच

नायं जीवयितुं शङ्खो रुद्रेण निहतो युधि ॥१०१॥

तथापि त्वत्कृपाविष्टः पुनः संजीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वात्तर्दधे यावत्तावत्सागरनन्दनः ॥१०२॥
वृंदामालिङ्गं तद्वक्त्रं चुचुंबं प्रीतमानसः । अथ वृंदाऽपि भर्तारं दृष्टा हर्षितमानसा ॥१०३॥
रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् । कदाचित्सुरतस्यांते दृष्टा विष्णुं तमेव हि ॥१०४॥

लताएं उनके गलेमें डालकर भयभीतभावसे कहने लगी—हे मुने ! आपकी शरणमें आयो हूई मुझ अवलाकी रक्षा करिए । उसके इस आर्त वचनको सुना तो धान छोड़कर मुनिने उसे अपने हृदयसे लिपटी हूई पाया । तब वे उससे कहने लगे—बालिके ! तुम यहाँ निर्भय होकर रहो ॥ ८७-९१ ॥ उसे इस प्रकार समझाकर मुनिश्रेष्ठने डराते तथा हुंकार करते हुए उन दोनों राक्षसोंको अपने सामने देखा । तब कुद्द होकर वे भी हुंकार करने लगे । उनके हुंकारसे अस्त होकर वे दोनों राक्षस भाग गये । मुनिके इस अद्भुत सामर्थ्यको देखा तो वृन्दा आश्चर्यचकित होकर भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगी । वृन्दा बोली हे कृपानिधे ! मुझे आपने इस ओर संकटसे बचा लिया । अब मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ । सो कृपा करके कहिये । हे प्रभो ! मेरा पति जलंधर शिवजीसे युद्ध करने गया है । हे सुव्रत ! वह वहाँ किस दशामें है, यह मुझे बताइए । मुनिने उसकी बात सुनकर कृपापूर्वक उमरकी ओर देखा तो उपरसे दो बन्दर आये और मुनिको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये । उनके हाथोंमें वृन्दाने अविधतनय जलन्धरका कटा सिर, हाथ तथा घड़ देखा । यह देखनेके साथ ही वह पतिविष्णुके दुःखसे दुःखित तथा मौर्छित होकर घरतीपर गिर पड़ी । तब मुनिने उसके मुँहपर कमण्डलुका जल छिड़का और सचेत करके शात किया ॥ ६२-६६ ॥ बहुत समय तक रोनेके बाद वृन्दा कहने लगी—हे कृपानिधे ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मेरे प्रिय पतिको जीवित कर दें ॥ १०० ॥ मेरी समझमें आप ही इसको जिलानेमें समर्थ हैं । मुनि बोले—युद्धमें शिवजीके द्वारा निहत जलन्धरको जीवित करना असम्भव है । फिर भी तुमपर दया करके मैं इसे जीवित करता हूँ । ऐसा कहकर वे अन्तर्धान ही गये । इतनेमें सागरनन्दन जलन्धर प्रकट हो गया और आनन्दसे वृन्दाका आलिङ्गन करके मुख चुम्बन करने लगा । वृन्दाने भी अपने पतिको देखा तो प्रसन्न होकर उस बनमें बहुत दिनतक उसके साथ रमण करती रही । एक दिन सभोगके अनन्तर उसी जलन्धरको विष्णु के रूप में

निर्भत्स्य क्रोधसंयुक्ता वृदा वचनमवशीत् ।

वृन्दोवाच

तव ज्ञातं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ॥१०५॥

त्वं ज्ञातोऽसि मया सम्यड्मायी प्रत्यक्षतापसः । यौ त्वया मायया द्वौ तौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ॥१०६ ।
तावेव राक्षसौ भून्वा तव भार्या विनेष्यतः । जयविजयनामानौ ज्ञातौ कृत्रिमरूपिणी ॥१०७॥
त्वं चापि भार्यादुःखातो वने कपिसहायवान् । भव सर्वेश्वरोऽपि त्वं यत्ते शिष्यौ समागतौ ॥१०८॥
पुण्यशीलसुशीलौ तौ कपिरूपधरावुभौ । अतस्ते वानरस्तु संगतिर्दण्डके वने ॥१०९॥
वदुरूपधरः शिष्यो यस्ताक्षर्यश्चेति वेष्यथहम् । इत्युक्त्वा सा तदा वृदा प्रविवेश हुताशनम् ॥११०॥
ततो जालधरो दैत्यो निहतो युधि शंभुना । तस्माद्राजन्निदानीं तौ कुम्भकर्णदशाननौ ॥१११॥
ज्ञातौ सागरमध्ये तौ लंकायामधुना स्थितौ । नीन्वा जनकजां वालां पंचवत्यास्तु मातृवत् ॥११२॥
पालयित्वाऽथ पृष्ठमासान् रामवाणान्मरिष्यति । रामोऽपि चालिनं हत्वा सुग्रीवेण समन्वितः ॥११३॥
शिलाभिः सागरं वदृध्वा सीतामादाय यास्यति । यात्रायज्ञविलासांश्च सप्तद्वीपप्ररक्षणम् ॥११४॥
करिष्यति दयितया वंधुभिश्च यथासुखम् । हदं गोप्यं त्वया राजन् कथनीयं न कुत्रचित् ॥११५॥

श्रीशिव उवाच

हन्त्युक्त्वा मुद्रलः सर्वं भावि रामस्य कौतुकात् । चरित्रं वर्णयामास यदा यद्यत्करिष्यति ॥११६॥
तत्सर्वं नृपतिः श्रुत्वा तुष्टः पप्रच्छ तं पुनः । पूर्वजन्मनि कश्चाहं किं मया सुकृतं कृतम् ॥११७॥
तत्सर्वं वद मां ब्रह्मन् यस्माज्ञातो हरिः सुतः । मम साक्षाद्रामचंद्रो लक्ष्मीः सीता त्वभूत्स्नुषा ॥११८॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपमाह पुनर्मुनिः ।

मुद्रल उवाच

आसीत्सद्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा ॥११९॥

ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्दर्मदत्त इति श्रुतः । विष्णुव्रतकरः सम्यग्विष्णुपूजारतः सदा ॥१२०॥

देखा तो कुद्ध होकर शिक्कारती हूई वृन्दा बोली—हे हरे ! तुम्हारे इस परस्त्रीगमनरूपी व्यवहारको विकार है ॥१०१॥ मैने अब जाना कि तुम मायावी तथा बनावटी तपस्वी हो । तुमने अपने निजी दो दूतोंको वानर-रूपमें मुझे दिखलाया था, वे ही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी स्त्रीका हरण करेंगे । वे दोनों कृत्रिमरूपधारी जयविजय तुम्हारे पार्षद थे ॥१०२-१०७॥ सर्वेश्वर होनेपर भी तुम स्त्रीके वियोगसे दुःखी होकर वानरोंके साथ बनमें चक्कर लगाओगे । तुम्हारे वे दोनों पुण्यशील-सुशील शिष्य भी वानर बनेंगे । उनमेंसे ताक्षर्य नामका शिष्य वटरूप घारण करेगा । और भी बहुतसे वानर दंडकवनमें तुमको मिलेंगे । इतना कहकर वृन्दा अग्निमें प्रविष्ट हो गयी ॥१०८-११०॥ इस प्रकार वृन्दाका पातिव्रत खडित हानेके बाद जलन्धर वास्तविकरूपमें जन्मके हारा मारा गया । हे महाराज दशरथ ! इस शापके कारण इस समय रावण-कुम्भकर्ण जन्म लेकर समुद्र-के दीच लंकामें निवास करते हैं । वे पंचवटीसे जनककी पुत्री सीताको ले जाकर छः मास तक माताकी तरह दालन करनेके पश्चात् रामके वाणीसे मारे जायेंगे । राम भी बालीको मारकर सुग्रीवके साथ पत्थरोंसे समुद्रको बाँध तथा उस पार जाकर सीताको ले आयेंगे । पश्चात् प्राणप्रिया सीता तथा बन्धुओंके साथ राम तीर्थयात्रा, यज्ञ तथा विलास करते हुए सप्तद्वीपोंकी रक्षा करेंगे । हे राजन् ! यह गोप्य बात किसीको न बतलाइएगा ॥१११-११५॥ श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार मुद्रलने रामका समस्त भावी चरित्र बता दिया ॥११६॥ इन सब बातोंको सुन तथा प्रसन्न होकर राजा दशरथने फिर पूछा कि मैं कौन था और मैने कौनसे मृत्यु किये थे कि जिससे साक्षात् भगवान् रामरूपमें मेरे पुत्र बने तथा साक्षात् लक्ष्मी सीता होकर मेरी पुत्रवधू बनी । हे ब्रह्मन् ! यह सब हाल मुझे कह सुनाइये ॥११७॥११८॥ यह सुनकर मुद्रल मुनि राजासे फिर कहने लगे । मुनि बोले—हे राजन् ! सह्याद्रिपर करवीरपुरमें परम वर्मज वर्मदत्त नामसे विश्वात एक ब्राह्मण

द्वादशाक्षरविद्यायां जपनिष्टोऽतिथिप्रियः । कदाचित्कार्तिंके आसि हरिजागरणाय सः ॥१२१॥
रात्र्यां तुर्याविशेषायां जगाम हरिमंदिरम् । हरिपूजोपकरणान् प्रगृह्ण ब्रजता तदा ॥१२२॥
तेन इष्टा समायाता राक्षसी भीमनिःस्वना । वक्रदण्डा ललिजिह्वा निनश्ना रक्तलोचना ॥१२३॥
दिगंबरा शुक्रमांसा लंबोष्ठी घर्घरस्वना । तां दृष्टा भयसंत्रस्तः कंपितावयवस्तदा ॥१२४॥
पूजोपकरणः सर्वेः पयोभिश्वाहनद्वलात् । संस्मृत्य यद्वरेनामि तुलसीयुक्तवारिणा ॥१२५॥
मोऽहनद्वारिणा तस्मात्तत्पापं लयमागतम् । अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजम् ॥१२६॥
स्वां दशामब्रवीत्तीव्रं दंडवच्च प्रणम्य सा ।

कलहोवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गताऽस्म्यहम् ॥१२७॥
तन्कथं तु पुनर्विप्र याम्यहं गतिमुत्तमाम् ।

मुद्गल उवाच

तां दृष्टा प्रणतामातां वदमानां स्वकर्म च ॥१२८॥
अतीत विस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ।

घर्मदत्त उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदर्शीं गता ॥१२९॥
कृतः प्राप्ता च किंशीला तत्सर्वं विस्तराद्वद् ।

कलहोवाच

सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन् भिक्षुनामाऽभवद्द्विजः ॥१३०॥

तस्याहं गृहिणी ब्रह्मन कलहार्थ्याऽतिनिष्टुरा । न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कृतम् ॥१३१॥
नापितं तस्य मिष्टानं भर्तुर्वचनभंगया । पाककाले मया नित्यं यद्यच्चान्नं मनोरमम् ॥१३२॥
तत्तत्पूर्वं स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्गत्र्वं निवेदितम् । एकदा स पतिर्मित्रं मम वृत्तं न्यवेदयत् ॥१३३॥
नैव शृणोति मे पत्नी मद्वाक्यं किं करोम्यहम् । तेन श्रत्वा तु सकलं क्षणं संचित्य वै हृदि ॥१३४॥
उवाच मन्यति किंचित्युक्तिं तां ते वदाम्यहम् । निषेधोक्तथा वदस्व त्वं गृहिणी सा करिष्यति ॥१३५॥

रहता था । वह विष्णुके द्वातोंको करनेवाला, भली भाँति विष्णुपूजामें रत, सदा वारह अक्षरके मन्त्र (ढँगमो भगवते वामुदेवाप) के जपमें निष्टा रखनेवाला तथा अध्यागतोंका प्रेमी था । एक बार वह कार्तिक-में रात्रिजागरण करके जौथे पहर पूजाकी सामग्री लेकर हरिमन्दिरमें जा रहा था कि रास्तेमें सहसा उसने एक भयानक घरघर शब्द करती हुई, टेढे दाँतोंवाली, जीभको हिलाती, नितान्त नग्न, लाल नेत्रोंवाली, जिसके शरीरका सब मांस मूळ गया था—ऐसी लम्बे होठों और नग्न शरीरवाली एक राक्षसीको आते देखा । उसको देखकर जाह्नव भयसे कौप उठा । तब वह समस्त पूजाकी सामग्री तथा जल आदि फेंक-फेंककर उसको मारने लगा । वह नारायणका नाम लेता हुआ उसके ऊपर तुलसीपत्र तथा जल फेंकता जाता था । वस, इसीसे जनायास उस राक्षसीके सब पाप छुल गये और उसको पूर्वजन्मके कर्मोंका रमरण हो आया ॥ ११६-१२६ ॥
तब वह जाह्नव को दंडवत् प्रणाम करके कहने लगी । कलहा बोली—हे विष ! मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके फलस्तदरूप इस दशाको प्राप्त हुई हूँ । हे वहान् ! सौराष्ट्रनगरमें भिक्षुनामका एक जाह्नव रहता था । मैं उसकी कलहा नामकी बही निष्टुर स्त्री थी । मैंने कभी वचनसे भी पतिकी भलाई नहीं की ॥ १२७-१३१ ॥ रसोईमें कभी मैं मिष्टान बनाती तो पतिसे झूठा बहाना करके तथा उसकी बात टालकर मिठाई नहीं देती थी । भोजनके समय प्रतिदिन जो जो अच्छी चीज बनाती, पहिले उसको मैं खा लेती थी तब पतिको देती थी । एक दिन मेरे पतिने जाकर अपने एक मित्रसे कहा कि मेरी स्त्री मेरी बात नहीं मानती । मैं क्या करूँ ? उसके

तव वाक्येन कार्यादि यत्किञ्चित्तव चांछितम् । तथेति मित्रवाक्येन गृहमेत्य पतिर्मम ॥१३६॥
 मामाह दयिते मा त्वं भोजनार्थं समाहय । मम मित्रं महद् दुष्टं तच्छ्रुत्वा स्वपतेर्वचः ॥१३७॥
 तदा भर्ता मयोक्तः स मित्रं ते साधुसम्मतम् । समाहयाम्यशनार्थमद्यैव ब्राह्मणोत्तमम् ॥१३८॥
 ततो मया समाहृतः स्वयं गत्वा पतेः सखा । तदारभ्य निषेधोक्त्या कार्यमाज्ञापयत्पतिः ॥१३९॥
 एकदा स पितुर्द्वाक्षयाहः स्वपतिर्मम । मामाह दयिते श्राद्धं न करिष्याम्यहं पितुः ॥१४०॥
 तदाक्यं स्वपतेः श्रुत्वा मया विप्रा निमंत्रिताः । मया धिक् धिक् कृतो भर्ताकथं श्राद्धं करोषि न १४१॥
 पृत्रधर्मं न जानामि का गतिस्ते भविष्यति । ततः पुनः स मामाह पकान्नमद्य मा कुरु ॥१४२॥
 द्विजं निमंत्रयस्वैर्कं मा विस्तारं कुरु प्रिये । तत्स्य वचनं श्रुत्वा मयाऽष्टादश भूसुराः ॥१४३॥
 निमंत्रितास्तु श्राद्धार्थं पकान्नानि कृतानि हि । ततः पुनः स मामाह प्रिये शृणु वचो मम ॥१४४॥
 मया सहादौ त्वं मिष्ट पाकं भुक्त्वा ततः परम् । स्वीयोच्छिष्टं त्वद्य विप्रान् परिवेषणमाचर ॥१४५॥
 तन्मया कथित श्रुत्वा स पतिर्धिक्कृतः पुनः । कथमादौ स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्विप्रान्समर्पयेत् ॥१४६॥
 एव सर्वं निषेधोक्त्या श्राद्धं चांगं चकार सः । पिंडानादिकं कृत्वा मामाह स पतिः पुनः ॥१४७॥
 अहश्चोपोषणं त्वद्य करिष्यामि न संशयः । तत्स्य वचनं श्रुत्वा मिष्टान्नेन स भोजितः ॥१४८॥
 ततो दैववशाद्धर्ता विस्मृत्यं प्राह मां पुनः । नीत्वा पिंडान् क्षिपस्वाद्य सत्तीर्थे परमादरात् ॥१४९॥
 ततो मया शौचकूपे नीत्वा पिंडा विसर्जिताः । ततः खिन्नमना विप्रो हाहेत्युक्त्वा स्थिरोऽभवत् १५०
 क्षणं विचित्य मामाह पिष्टान्मा त्वं बहिः कुरु । तदोत्तीर्थं शौचकूपे मया पिंडा बहिः कृताः ॥१५१॥
 ततः पुनः स मामाह पिंडान् तीर्थे क्षिपस्व मा । तदा तीर्थे मया क्षिप्तास्ते पिंडाः परमादरात् ॥१५२॥

मित्रने यह सुनकर मनमें विचार किया ॥ १३२-१३४ ॥ तदनन्तर उसने मेरे पतिसे जो कुछ कहा था, मैं मैं कहती हूँ । उसने कहा—हे मित्र ! तुम अपनी स्त्रीसे उलटी बात कहा करो, तब वह तुम्हारे मना किये हुए कामका अवश्य करेगी और तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा । मित्रकी बात सुन तथा 'बहुत अच्छा' कहकर मया पति धरपर आया ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ वह मुझसे कहने लगा—हे प्रिये ! मेरे मित्रको तुम कभी भोजनके लिये न बुलाया करो । वह बड़ा दुष्ट है । पतिके इस वचनको सुनकर मैंने कहा कि तुम्हारा मित्र ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ तथा बड़ा सज्जन है । उसको मैं आज ही भोजनके लिये बुलाती हूँ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ तब मैं स्वयं जाकर पतिके मित्रको बुला लायी । तबसे मेरा पति विपरीत कथनसे ही काम लेने लगा ॥ १३९ ॥ एक दिन मेरा पति अपने पिताकी मरणतिथि आनेपर कहने लगा—हे दयिते । मैं आज अपन पिताका श्राद्ध नहीं करूँगा ॥ १४० ॥ यह सुनकर मैंने उसके कहनेके प्रतिकूल झटपट ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे दिया और पतिसे कहा कि तुमको विवकार है, जो अपने पिताका श्राद्ध भी नहीं करते ॥ १४१ ॥ तुम पुत्रके धर्मको नहीं जानते । इसलिये न जाने तुम्हारी क्या गति होगी । तब उसने कहा कि यदि करना हा है तो केवल एक ब्राह्मणको निमंत्रण दे देना, आद्यक बचेड़ा नहीं बढ़ाना । पकवान-मिठाई आदिमें व्यथं खचं नहीं करना । यह सुनकर मैंने एक साथ अठारह ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे दिया । श्राद्धके लिए अनेक प्रकारके पकवान बनाये । फिर पतिने मुझसे कहा कि आज तुम पहले मेरे साथ मिष्टान्न भोजन करके बादमें अपना जूठा भोजन ब्राह्मणोंको परोसना ॥ १४२-१४५ ॥ यह सुनकर मैंने पतिको घिवकारा और कहा कि तुमको घिवकार है । पहले स्वयं खाकर पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करानके लिये कहते हो ? ॥ १४६ ॥ इस प्रकार विपरीत कथनसे पतिने मेरे द्वारा विविवत् श्राद्ध करवाया । पिंडान ब्रादि करके फिर उन्होंने मुझसे कहा—॥ १४७ ॥ मैं आज कुछ भी न खाकर उपवास करूँगा । यह सुनकर मैंने उन्हें खूब मिष्टान्न खिलाया ॥ १४८ ॥ बादमें दैववशात् भूलकर पतिने मुझसे कहा कि इन पिंडोंको ने जाकर प्रेमसे किसी पवित्र तीर्थके जलमें फेंक आओ ॥ १४९ ॥ यह सुनकर मैंने उन पिंडोंको ले जाकर पाखाने-में डाल दिया । यह देखा तो वह विप्र हाय-हाय करने लगा ॥ १५० ॥ क्षणभर सोचकर मुझसे कहा कि देखो, पाखानेसे पिंडोंको बाहर न निकालना । तब शौचकूपमें उतरकर मैंने उन पिंडोंको निकाल लिया

एवं मया कदा भर्तुर्वचनं न कृतं तदा । कलहप्रियया नित्यं मध्युद्विजनमना यदा ॥१५३॥
परिणेतुं ततोऽन्यां वै मनश्चके पतिर्मम । ततो गरं समादाय प्राणस्त्यक्तो मया द्विज ॥१५४॥
अथ बद्धच्छ्वा बध्यमानां मां निन्युर्यमकिंकराः । यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तपृच्छत ॥१५५॥

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म फलं शुभमथाशुभम् । प्राप्नोत्येषा च तत्कर्म चित्रगुप्तावलोक्य ॥१५६॥

कलहोवाच

चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच ह ।

चित्रगुप्त उवाच

अनया तु शुभं कर्म कृतं किञ्चिन्न विद्यते ॥१५७॥

मिष्ठानं भुज्यमानेयं न भर्तरि तदर्पितम् । अतश्च बगुलीयोन्यां स्वविष्ठादाऽत्र तिष्ठतु ॥१५८॥

पति द्वेष्टि सदा त्वेषा नित्यं कलहकारिणी । विष्ठादा शूक्रीयोन्यां तस्माच्छ्रित्वियं यम ॥१५९॥

पाकमांडे सदा शुक्ले गुप्ते चैका यतस्तः । तस्मादोपाद्विडालाऽस्तु स्वजाताऽत्यभिष्ठिणी ॥१६०॥

भर्तरिमपि चोदित्य आत्मघातः कृतोऽनया । तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेकाऽतिनिंदिता ॥१६१॥

अतश्चैषा भरुदेशे प्रापितव्या हरेभट्टैः । तत्र प्रेतशरीरस्य चिरं तिष्ठत्वियं ततः ॥१६२॥

ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा शुनक्त्वशुभकारिणी ।

कलहोवाच

ततो दृतैः प्रापिताऽहं भरुदेशं शुणाद्विज ॥१६३॥

दत्त्वा प्रेतशरीरं मां गतास्ते स्वस्थलं प्रति । साऽहं पञ्चदशाद्वानि प्रेतदेहे स्थिता किल ॥१६४॥

भुत्तुद्भ्यां पीडिताऽत्यर्थंदुःखिता स्वेन कर्मणा । ततः भुत्पीडिता नित्यं शरीर वणिजस्त्वहम् ॥१६५॥

प्रविश्य दक्षिणे प्राप्ता कृष्णावेण्यास्तु संगमे । तच्चीरं संथ्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः ॥१६६॥

त्रिविष्णुगणंदूरमपाकृष्टा चलादहम् । ततः ज्ञुत्क्षामया दृष्टो भ्रमत्या त्वं मया द्विज ॥१६७॥

॥ १५१ ॥ फिर पतिने कहा—देखो, कहों इनको किसी तीयंमें न डालना । तब मैंने ले जाकर उन पिंडोंका बड़े आदरपूर्वक तोर्धजलमें डाल दिया ॥ १५२ ॥ इस तरह मुझ कलहप्रियाने जब कभी भी पतिका सीधी तीरपर कहा हुआ काम नहीं किया, तब दुःखित होकर उसने अपनादूसरा व्याह करना निभ्रित किया । हे द्विज ! तब मैंने जहर खाकर अपने प्राण त्याग दिये ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ तब यमदूत मुझे बाँधकर यमराजके पास ले गये । यमराज मुझे देखकर चित्रगुप्तसे कहने लगे ॥ १५५ ॥ यमराजने कहा—चित्रगुप्त ! देखो, इसने अच्छा कर्म किया है या दुरा, जिससे इसको बैसा ही फल दिया जाय ॥ १५६ ॥ कलहा कहने लगी—यह सुनकर चित्रगुप्त मुझे घमकाते हुए कहने लगे कि इसने तो कोई अच्छा कर्म कभी किया नहीं । यह मिष्ठान बनाकर खाती थी परन्तु अपने पतिको नहीं देती थी । इसलिये यह बगुलीकी योनिमें जाकर अपनी ही विष्ठा खानेवाली पक्षिणी बने प्रतिदिन झगड़ा तथा पतिसे द्वेष करनेके कारण यह विष्ठा भक्षण करनेवाली सूकरयोनिमें पंदा हो । हे यम इघर-उघर छिपकर भोजन बनानेके पात्रमें अकेली ही खानेवाली यह बिल्ली बने ॥१५७-१६०॥ पतिके उद्देश्य इसने आत्मघात किया है । इस कारण यह अतिनिन्दित प्रेतयोनिमें अकेली रहे ॥ १६१ ॥ हे यम ! इसके दूतोंके द्वारा भरुदेशमें भेज देना चाहिये । वहाँ जा तथा प्रेत बनकर यह बहुत काल पर्यन्त निवास करे ॥ १६२ ॥ यह पापिनी उपर्युक्त सभी योनियोंको भोगे । कलहा बोली—हे द्विज ! तब यमदूतोंने क्षण ही भरमें मुझे भरुदेश पहुँचा दिया ॥ १६३ ॥ वहाँ प्रेतयोनिमें डालकर वे अपने स्थानको छले गये । मैं पन्द्रह वर्षं तक प्रेतयोनि रही ॥ १६४ ॥ अपने किय हूये कर्माके अनुसार मैं सदा भूख-प्याससे अत्यन्त दुःखिनी रहने लगा । इस प्रका नित्य भूखसे पीडित हो एक बनियेकी देहमें पैठकर मैं दक्षिणमें कृष्णा-वेणोंके संगमपर आयी । वहाँ आनंदित तथा विष्णुके गणोंने मुझे बरबस उस वणिकके शरीरसे अलग करके दूर भगा दिया । तदनन्तर हे द्विज

त्वद्दस्ततुलसीवारिसंस्पर्शाद्रतपातका । तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्ता भवाम्यहम् ॥१६८॥
 योनित्रयादग्रभाव्यादस्माच्च प्रेतभावतः । मामुद्रर मुनिश्रेष्ठ न्वामहं शरणं गता ॥१६९॥
 इत्थं निशम्य कलहावचनं द्विजश्च तत्पापकमभयविस्मयदुःखयुक्तः ।
 तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिध्यात्मा चिरं सुवचनं निजगाद दुःखात् ॥१७०॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमद्वानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
 वृन्दाशापकलहाव्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(धर्मदत्त द्वारा कलहाका उद्घार)

धर्मदत्त उवाच

विलयं यांति पापानि तीर्थदानवतादिभिः । प्रेतदेहे स्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ॥१॥
 त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात् खिन्नं च मम मानसम् । नैव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥२॥
 पातकं च तवात्युग्रं योनित्रयविपाकजम् । नैवाल्पैः क्षीयते पृष्ठैः प्रेतत्वं चातिगर्हितम् ॥३॥
 तस्मादाज्ञन्मजनितं यन्मया कार्तिकवतम् । तत्पृष्यस्यार्धभागेन सद्गतित्वमवाप्नुहि ॥४॥
 कार्तिकवतपृष्ठेन न साम्यं यांति सर्वथा । यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्पिति ततो ध्रुवम् ॥५॥
 मुद्गल उवाच

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामम्यवेचयत् । तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन् द्वादशाक्षरम् । ६ ।
 तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा । दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथोर्वशी ॥७॥
 ततः सा दंडवद्धूमो प्रणनाम यदा द्विजम् । उवाच सा तदा वाक्यं हषगद्वदभाषिणी ॥८॥

कलहोवाच

तत्प्रसादादद्विजश्रेष्ठ विमुक्ता निरयादहम् । पापान्धौ मज्जमानायास्त्वं नौभूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥९॥

मूर्खों मरती एवं भ्रमण करती हुई मैंने यहाँ तुमको देखा ॥ १६५-१६७ ॥ यहाँ तुम्हारे हाथके जल तथा तुलसीसे मेरे सब पाप दूर हो गये हैं । इस कारण हे विप्रेन्द्र ! अब ऐसी कृपा करो कि जिससे भाषी तीन योनियोंसे मेरी मुक्ति हो जाय । हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । तुम मेरा इस प्रेतयोनिसे भी उद्घार करो । ज्ञात्याणने कलहाके वृत्तान्तको सुना तो उसके पापकमसे भय विस्मय तथा दुःखसे इस और उसकी इस ग्लानिपूर्ण दशाको देखकर कृपासे चञ्चलचित्त हो और बहुत देरतक सोचकर दुःखसे इस प्रकार सुन्दर वचन कहना आरम्भ किया ॥ १६८-१७० । इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमद्वानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां सारकाण्डे वृन्दाशापकलहाव्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

८८-धर्मदत्त बोले—तीर्थ, दान तथा व्रतके द्वारा पाप क्षीण होते हैं, परन्तु प्रेतशारीरमें रहनेसे तुम्हारा उनपर अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ तुम्हारी इस दुर्दशाको देखकर मेरा मन बहुत दुखी हो रहा है । जबतक तुम्हारा इस दुःखसे उद्घार न होगा, तबतक मुझको शान्ति नहीं मिलेगी ॥ २ ॥ यह नीच प्रेतत्व और तीन योनियोंको भोगानेवाला तुम्हारा महान् पाप साधारण पृष्ठोंसे क्षोण न होगा ॥ ३ ॥ इस कारण जन्मसे लेकर अवतक किये हुए अपने कार्तिकवतके पृष्ठका आधा भाग मैं तुमको देता हूँ । उससे तुम सद्गतिको प्राप्त होओगी ॥ ४ ॥ कार्तिकवतके पृष्ठके समान यज्ञ-दान-तीर्थ आदि कोई भी नहीं हो सकता । यह बात निश्चित है ॥ ५ ॥ मुनि मुद्गल कहने लगे—हे राजन् ! इतना कहकर धर्मदत्तने ज्यों ही उसके ऊपर तुलसीदल तथा जल छिड़ककर द्वादश अक्षरोंका मंत्र सुनाया । त्यों ही प्रेतयोनिसे मुक्त होकर वह जलती हुई अग्निकी लपटके समान दिव्य रूप धारण करके उर्वशीके सदृश सुन्दर स्त्री बन गयी ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब वह ज्ञात्याणके धरणोंको दण्डवत् प्रणाम करके सहृद गद्वद वाणीसे कहने लगी ॥ ८ ॥ कलहा बोलो—हे द्विजोंमें ज्ञेषु द्विज ! आपकी कृपासे मैं नरकमें जानेसे बच गयी । पापसमुद्रमें दुबती हुई मुझ पापिनीको बचाकर आपने

मुद्रूल उवाच

इत्थं सा वदती विष्ण ददशायांतमवरात् विमानं सुन्दरं युक्तं विष्णुरूपधरंगणेः ॥१०॥
अथ सा तद्विमानस्थैर्विमाने चाधिरोपिता । पुण्यशीलसुशीलादैरप्सरोगणसेविता ॥११॥
तद्विमानं तदाऽपश्यद्भर्मदत्तः सविस्मयः । पषात दंडवद्धमौ द्वाषा तौ पुण्यरूपिणौ ॥१२॥
पुण्यशीलसुशीलौ च समुत्थाप्यानतं द्विजम् । समभ्यनन्दयन् वाणीं प्रोचतुर्धर्मसंयुताम् ॥१३॥

गणावृचतुः

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यस्त्वं विष्णुरतः सदा । दीनानुकंपी धर्मज्ञो विष्णुव्रतपरायणः ॥१४॥
आबालत्वात्त्वया हेतद्यत्कृतं कार्तिकव्रतम् । तव तस्याधैरानेन पुण्यं द्वैरुण्यमागतम् ॥१५॥
त्वत्पुण्यस्याधैर्भागेन यदस्याः पूर्वकर्मजम् । जन्मान्तरशतोऽन्तं पापं तद्विलयं गतम् ॥१६॥
स्नानंरेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम् । हरिजागरणाधैश्च विमानमिदमागतम् ॥७॥
वैकुण्ठं नीयते साधो नानाभोगयुता त्वियम् । दीपदानभवैः पुण्यैस्तैजसं रूपमाश्रिता ॥१८॥
तुलसीपूजनाधैश्च कार्तिकव्रतकैः शुभैः । विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तैः कृपानिधे ॥१९॥
त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्यया सह यास्यसि । वैकुण्ठभूवनं विष्णोः सान्निध्यं च सरूपताम् ॥२०॥
ते धन्याः कृतपुण्यास्ते तेषां च सफलो भवः । यैर्भक्त्याऽराधितो विष्णुर्धर्मदत्तं त्वया यथा ॥२१॥
सम्यगाराधितो विष्णुः किं न यच्छति देहिनाम् । औचानपादियेनैव ध्रुवत्वे स्थापितः पुरा ॥२२॥
यन्नामस्मरणादेव देहिनो यांति सद्गतिम् । ग्राहगृहीतो नागेन्द्रो यन्नामस्मरणात्पुरा ॥२३॥
विमुक्तः संनिधिं प्राप्तो जातोऽयं जयसंज्ञकः । ग्राहोऽयं विजयो नाम्ना श्रीविष्णोश्चितनादभृत् ।
यतस्त्वयाऽचिंतो विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि । बहून्यष्टसहस्राणि भार्याद्विययुतस्य ते ॥२४॥

नावका काम किया है ॥ ९ ॥ मुद्रूल मुनि कहने लगे कि इस बातको कहते ही कहते उसने देखा कि आकाशमांगसे विष्णुरूपधारी गणोंसे युक्त एक सुन्दर विमान उत्तर रहा है ॥ १० ॥ बाइमें विमानमें बंठे हुए पुण्यशील तथा सुशील आदिने कलहाको विमानमें बैठा लिया और अप्सरायें उसकी सेवा करने लगी ॥ ११ ॥ धर्मदत्तको वह विमान देखकर बड़ा आश्रयं हुआ और उसमें पुण्यात्मा तथा पुण्यशील सुर्णालको देखकर उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १२ ॥ उन दोनोंने भी उस विनाय द्विजको खड़ा देख तथा अभिनन्दन करके धर्मयुक्त वाणीमें कहा ॥ १३ ॥ दोनों गण कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ ! याह-वाह, तुम धन्य हो । तुम दीनोंपर दया करते हो, धर्मको जानते हो और सदा विष्णुभूतिमें रत रहते हुए विष्णुके व्रतमें तत्पर रहते हो ॥ १४ ॥ तुमने जो अच्चपनसे ही कार्तिकमासका ऋत करके आज उस पुण्यका आधा भाग दान दिया है, इससे तुम्हारा पुण्य दुगुना हो गया है ॥ १५ ॥ तुम्हारे आधे पुण्यसे इसके संकड़ों जन्मके पापकर्मोंका नाश हो गया ॥ १६ ॥ तुम्हारे कराये हुए तुलसीदलयुक्त जलके स्नानसे ही इसके पूर्वमें किये हुए सब पाप दूर हो गये थे । अब विष्णुजागरणके पुण्यसे इसके लिए यह विमान आया है ॥ १७ ॥ हे साधो ! तुम्हारे दीपदानके पुण्यसे इस तेजस्वी रूप धारण करनेवालीको हम विविध सुख भोगनेके लिए वैकुण्ठ ले जा रहे हैं ॥ १८ ॥ हे कृपानिधे ! तुम्हारे दिये हुए तुलसीपूजन तथा कार्तिकव्रतके पुण्यसे यह विष्णुभगवानके सानिध्यको प्राप्त हुई है ॥ १९ ॥ तुम भी इस जन्मक अन्तमें स्त्रीसहित वैकुण्ठमें जाकर विष्णुके सानिध्य तथा सरूपताको प्राप्त होओगे ॥ २० ॥ हे धर्मदत्त ! वे लोग धन्य हैं और बड़े धर्मात्मा तथा सफल जन्मवाले हैं, जिन्होंने कि तुम्हारी तरह विष्णुकी आराधना की है ॥ २१ ॥ भली भाँति पूजित विष्णुभगवान् भनुष्यको क्या नहीं देते ? जिन्होंने पूर्वसमयमें राजा उत्तानपादके पुत्रको ध्रुवपदपर स्थापित किया ॥ २२ ॥ जिनके नामस्मरणमात्रसे ही मनुष्य सदूतिको प्राप्त हो जाता है । प्राचीन समयमें मगरसे पकड़ा गया गजेन्द्र जिनके नामका स्मरण करनेसे मुक्त होकर विष्णुके सानिध्यको प्राप्त हुआ और जय नामका द्वारपाल बना । प्राह भी विष्णुका चिन्तन करके विजय नामका द्वारपाल बना था ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसी प्रकार तुमने भी विष्णुभगवानका पूजन किया है ।

तत् पुण्ये क्षयं प्राप्ते यदा यास्यसि भूतलम् । सूर्यवशोङ्करो राजा विख्यातस्त्वं भविष्यसि ॥२६॥
 नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वयुतः पुमान् । तृतीयेयं तदा भार्या पुण्यस्यैवार्धभागिनी ॥२७॥
 कलहा कैकेयी नाम्नी भविष्यति न संशयः । तत्रापि तत्र सान्निध्यं विष्णुदार्दस्यति भूतले ॥२८॥
 आत्मानं तत्र पुत्रस्त्रं प्रकल्प्यामरकार्यकृत् । रामनाम्ना रावणादीन् हत्वा राज्यं करिष्यति ॥२९॥
 तत्राजन्मव्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारणात् । न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥३०॥
 अतस्त्वग्रेऽपि धर्मज्ञ नित्यं विष्णुवते स्थितः । त्यक्तमात्सर्यदंभोऽपि भन्त्वं समदर्शनः ॥३१॥
 कार्तिके माघे माघे चैत्रे मासचतुष्टये । प्रत्यब्दं त्वं धर्मदत्तं प्रातःस्नायी सदा भव ॥३२॥
 एकादशीत्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः । ब्राह्मणानपि गाढ़ापि वैष्णवांशं सदा भज ॥३३॥
 मसूरिकाश्वारनालं वृन्ताकादीनि खाद मा । एवं त्वमपि देहांते रद्विष्णोः परमं पदम् ॥३४॥
 प्राप्नोपि धर्मदत्तं त्वं तद्वक्त्यव्यया यथा वयम् । पुण्यशीलसुशीलाख्यौ जयश्च विजयस्तथा ॥३५॥
 धन्योऽसि विप्राग्रथं यतस्त्वयैतद्वतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ।
 यदर्धभागात्सफलान्मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥३६॥

मुद्रल उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ । तया कलह्या सादृ वैकुण्ठभुवनं गतौ ॥३७॥
 धर्मदत्तोऽप्यसौ राजन् प्रत्यब्दं तद्वते स्थितः । देहांते परमं स्थानं भार्याभ्यामन्वितोऽभ्यगात् ॥३८॥
 वहून्यब्दसहस्राणि स्थित्वा वैकुण्ठसञ्चनि । ततः पुण्यक्षये जाते जातोऽसि त्वं नृपो महान् ॥३९॥
 त्रिभिः स्त्रीभिर्दशरथ ते विष्णुः पुत्रता गतः । रामोऽयं लक्ष्मणः शेषो भरतोऽव्योऽरिशत्रुहा ॥४०॥
 एवं सर्वं मयाऽख्यातं यथा पृष्ठं त्वया मम । धन्यस्त्वं यस्य तनयः साक्षान्नारायणोऽभवत् ॥४१॥

इसलिए तुम भी दोनों स्त्रियोंके साथ कई हजार वर्षं पर्यन्त उनके सान्निध्यको प्राप्त होओगे ॥ २५ ॥ तत्पश्चात् पुण्य क्षण होनेपर जब तुम पुनः पृथ्वीपर आओगे, तब सूर्यवंशमें बड़े प्रख्यात राजा बनोगे ॥ २६ ॥ दोनों स्त्रियाँ तुम्हारे साथ रहेंगी और तुम श्रीमान् दशरथ नामके राजा बनोगे । उस समय यह आधे पुण्यकी भागिनी कलहा निःसःदेह कैकेयी नामको तुम्हारी तीसरी स्त्री होगी । वहाँ पृथ्वीपर भी भगवान् सदा तुम्हारे सन्निकट रहेंगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ वे प्रभु देवताओंका कार्य साधन करनेके लिए अपने आपको तुम्हारा पुत्र बनाएँगे तथा रामनाम धारण करके रावण आदिको मारकर राज्य करेंगे ॥ २९ ॥ विष्णुको प्रसन्न करनेवाले तुम्हारे जन्मसे लेकर किये हुए इस व्रतसे बढ़कर कोई यज्ञ, दान तथा तीर्थ आदि नहीं हैं ॥ ३० ॥ इस कारण आगे भी तुम धर्मज्ञ, नित्य द्विष्णुके व्रतमें स्थित और मात्सर्य-दम्भ आदिसे रहित होकर समदर्शी बनो ॥ ३१ ॥ हे धर्मदत्त ! प्रतिवर्ष कार्तिक, वैशाख, चैत तथा माघ इन चारों महीनोंमें प्रातःकाल स्नान करके तुम एकादशीका व्रत और तुलसीका पूजन करो । ब्राह्मण, गौ तथा विष्णुभक्तोंकी सेवामें तत्पर रहा करो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मसूर, सौवीर तथा बैंगन आदिका खाना छोड़ दो । हे धर्मदत्त ! ऐसा करनेसे तुम भी जय-विजय तथा पुण्यशील-सुशील आदि हम लोगोंकी तरह विष्णुके उस परम पदको उनकी भत्ति मात्रसे ही प्राप्त होजाओगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मणश्वेष ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुमने जगद्गुरु विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाला यह व्रत किया है, जिसके अमोघ पुण्यभागके प्रभावसे हमलोग भी मुरारि भगवान्की सलोकताओं (समानलोकको) प्राप्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ मुद्रल बोले—इस प्रकार वे दोनों धर्मदत्तको उपदेश दे तथा विमानमें बैठकर कहलाके साथ वैकुण्ठवामको चले गये ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! वह धर्मदत्त भी प्रतिवर्ष उस व्रतको करके देहान्त होनेके बाद दोनों स्त्रियोंके साथ परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ वहुत वर्षों पर्यन्त वैकुण्ठ-धाममें रहकर पुण्यक्षय होनेके बाद यहाँ आकर वही तुम इतने बड़े राजा बने हो ॥ ३९ ॥ तुम अपनी तीनों स्त्रियोंके साथ यहाँ आये । विष्णुभगवन् तुम्हारे पुत्र राम बने, शेष लक्ष्मण बने, ब्रह्मा भरत बने तथा चक्र शत्रुघ्न बना ॥ ४० ॥ जो तुमने पूछा था, वह सब मैने तुमको कह सुनाया । तुम धन्य हो । क्योंकि साक्षात् नारायण तुम्हारे पुत्र हुए हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशिवजी

हृत्युक्त्वा नृणिं पूज्य विसर्जे मुनिस्तदा । आलिंगय रामं सौमित्रिं येने च कृतकृत्यताम् ॥४२॥
 तदा राजा स्वसैन्येन महाहर्षसमन्वितः । अयोध्यामगमद्रश्यां गोपुगद्वालमंडिताम् ॥४३॥
 नृपमाशतमाजाय रंत्रिणः पुरवामिनः । पताकातोणाद्यैश्च दिव्यचंदनसेचनैः ॥४४॥
 नगर्गं भृष्टयित्वा ते नृन्यवाद्यादिमंगलैः । निन्यः कुटुम्बसहितं राजानं नगर्गं प्रति ॥४५॥
 गममाशतमाजाय गोपुगद्वालपंक्तिषु । करथां निधाय वालांश्च स्त्रियः स्थित्वा निजैः करैः ॥४६॥
 सुवर्णकुसमाद्यैश्च वर्षः पृष्ठवृष्टिभिः । काश्चिन्मार्गोपरि स्थित्वा कंभदीपादिमंगलैः ॥४७॥
 आतिंक्याद्यैश्च राजानं यगामं शान्निकारकैः । पूजयन्ति इम ताः सर्वा राजमार्गे पृथक् पृथक् ॥४८॥
 एवं नानामपुत्साहैर्नर्तनैर्वायोधिताम् । दंदधीनां निनादैश्च गायकानां च गायनैः ॥४९॥
 मौघोद्धृत्वशावाशैश्च स्त्रीमत्तपृष्ठवृष्टिभिः । ययौ स्वशिविरं राजा वीज्यमानः सुचामरैः ॥५०॥
 ततम्तान जनकामात्यान वस्त्रालंकारवाहनैः । सत्कृत्य भोजनाद्यैश्च ग्रेषयामाम मिथिलम् ॥५१॥
 एवं मनेषुत्सवेषु जनको वार्षिकेषु सः । निनाय मिथिलां राममातृभिः पार्थिवेन च ॥५२॥
 उत्तरेत्तरतः पूज्य तोषयामाम गधवम् । रामोऽपि रमयामाम लीलामिनृपतिं तदा ॥५३॥
 मासैः पठभिर्जनकजा लक्ष्मी श्रीगधवाच्छुभा । लवनात्त्वेकादशे वर्षे रजोयुक्ता वभूव ह ॥५४॥
 तद्वाताँ जनकः अन्वा पत्नीभिर्मन्त्रिभिः मह । अयोध्यामगमच्छीघ्रं राजा प्रत्युज्जगाम तम् ॥५५॥
 परस्परं समालिङ्ग्य माकेतमिथिलाधिष्ठौ । नृन्यवाद्यसमुत्साहैरयोध्यां विविशुः सुखम् ॥५६॥
 ततो महाममुत्साहैर्नामंडपतोरणैः । कदलीम्तंभमालामिरिजुदंडैः सुचामरैः ॥५७॥
 चतुर्द्वारार्मण्डपैश्च घंटाघोषैः सर्वणैः । किंकिणीजालघोषैश्च वितानैर्दीपराजिभिः ॥५८॥

बोले कि ऐसा कहकर मूनिने राजाकी पूजा की और उन्हें विदा किया । राम-लक्ष्मणका आलिङ्गन करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य समझा ॥४२॥ तब राजा दशरथ अत्यन्त हर्षित अपनी सेनाके साथ पुरद्वार तथा अटारियोंसे सुणो भत रमणीक अयोध्यापुरीको गये ॥४३॥ राजाका आगमन सुनकर मन्त्रियों तथा पुरवासियोंने पताकाओं तथा तोशणोंमें नगरीको सजा तथा सङ्कोपर चन्दन छिड़कबाकर नृत्य और मांगलिक वाजेगाजेके साथ मकुटुम्ब राजाको नगरमें ले आये ॥४४॥४५॥ रामको आया जानकर स्त्रियें अपने बालकोंको कमरपर उठाकर पुरद्वार तथा अटारियोंकी पंजियोंपर जाकर खड़ी हो गयीं और अपने हाथसे उनपर सुवर्ण-कुसमोंकी वृष्टि करने लगीं । कुछ स्त्रियां पानीसे भरा मांगलिक कलश और कुछ मांगलिक दीप लेकर रास्तेमें सामने खड़ी हो गयीं और कुछ राजमार्गमें जगह-जगह शान्तिकारी आरती आदिसे रामके सहित राजाकी पूजा करने लगीं ॥४६-४८॥ इस प्रकार अनेक उत्सवोंसे युक्त वेश्याओंके नृत्य तथा नगाढ़ोंके शब्दों एवं गायकोंके गानोंके साथ महलोंके झरोखोंमें स्त्रियों द्वारा की गयी पुण्यवृष्टिसे आच्छादित तथा सुन्दर चमरोंसे बीज्यमान होने हुए राजा दशरथ अपने शिविरमें गये ॥४६॥५०॥ तदनन्तर वस्त्र, अलङ्कार, अश्व-गजादि वाहन तथा भोजन आदिसे राजा जनकके मन्त्रियोंका सत्कार करके उन्हें मिथिला भेज दिया ॥५१॥ इस प्रकार राजा जनक प्रत्येक वार्षिक उत्सवमें रामको उनकी माताओं तथा राजा दशरथको मिथिलापुरीमें बुलाते थे ॥५२॥ राजा जनक रामको सदा संतुष्ट रखनेकी चेष्टा करते थे । राम भी अनेक लीलाओं द्वारा राजाको आनन्दित करते थे । सुन्दरी तथा शुभा जानकी रामसे छः महीना छोटी थीं । विवाहके ग्यारहवें वर्षमें वे रजस्वला हुईं ॥५३॥५४॥ यह समाचार सुनकर राजा जनक अपनी स्त्रियों तथा मन्त्रियोंके साथ अयोध्या गये । राजा दशरथने भी उनकी अगवानी की ॥५५॥ अयोध्यापति तथा मिथिलाधिपति दोनों परस्पर जो भरकर गले मिले । तदनन्तर नृन्यवाद्य आदि उत्सवपूर्वक सुखसे अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥५६॥ पश्चात् विविष मण्डपों, तोरणों, केलेके स्तम्भों, पुष्पोंकी मालाओं, इखके दण्डों, चामरों, चार दरवाजेवाले मण्डपों, घण्टा-घडियालके शब्दों, छोटी-छोटी घण्टियोंके समुदायके शब्दों, शीशों, चौदोवों तथा दीपपंक्तियों द्वारा

वसिष्ठो मुनिभिः सादृं गर्भाधानविधि शुभम् । कारयामास रामेण सीतायाश्वातिहर्षितः ॥५९॥
 तदा वस्त्रलंकारं जनको नुपति मुदा । शूजयामास सहीकं स्नुपापुत्रमन्वितम् ॥६०॥
 मासमेकमतिकस्य ययौ स्वनगरीं सुखम् । रामाऽपि सीतया सादृं नानाभोगान्सुपुष्कलान् ॥६१॥
 बुधुजे हेमरत्नादितिमितेषु गृहेषु सः । रुक्मिंडनयुक्ताभिर्दीपियो जितः सुखम् ॥६२॥
 एवं तासां नृपसुतपत्नीनां च पृथक् पृथक् । यथाकाले निधानेषु गर्भाधानादिकेषु च ॥६३॥
 आगत्य जनकक्षके नानोत्साहान्मुदान्वितः । अयोध्यानगरीमये वाद्यवोपो गृहे गृहे ॥६४॥
 मंगलानि च सर्वत्र न कुत्राप्यस्त्यमगलम् । न दरिद्री त्रूणा नासीन्नाधिव्याधिप्रपीडितः ॥६५॥
 रामादिभिर्ब्रह्मिस्तंवैथुभिस्तदन्तरम् । पृथग्गेहेषु भार्याभिर्गाहैस्थ्यमध्यनुष्टितम् ॥६६॥
 रामः प्रातः समुत्थाय कुतशौचादिसत्क्रियः । आरुद्ध शिविकां दिव्यां स्नानार्थं सरयुं नदीम् ॥६७॥
 गत्वा कूले वाहनादि विसृज्य रघुनंदनः । गच्छेस्तस्याः पावनार्थं सरय्वाः पूलिने मुदा ॥६८॥
 मंत्रिभिर्वैष्टितो गत्वा नत्वा तां सरयूनदाम् । स्नात्वा नित्यविधि कुत्वा त्राह्णाणः परिवारितः ॥६९॥
 दत्त्वा दानान्यनेकानि गोभूधान्यरसादिभिः । संपूज्य सरयुं पुण्यां त्राह्णाणान् पूज्य सादरम् ॥७०॥
 ययौ रथं समारुद्ध रुक्मिन्यन्धनविधितम् । रुक्मिन्तंतुरज्जुभिर्वै सर्वतः परिवेष्टितम् ॥७१॥
 पद्मरुलादिवसन्तरं राज्ञादितं शुभम् । वाजिवाहं सारथिना सुस्नातेन प्रचोदितम् ॥७२॥
 किंकिणीवरमालाभिर्वैटाभिरतिगजितम् । रुक्मिन्दंडधरैर्दृतं ग्रे दर्शितसत्पथम् ॥७३॥
 पथि नीराजितः ख्वाभिर्वैष्टितः पुष्पवृष्टिभिः । प्राप स्त्रीयं गृहं रामः दूर्यकोटिसमप्रभम् ॥७४॥
 अवरुद्ध रथाद्रामः पादयोर्धृत्य पादूके । विवेश सीतासंदत्पादाद्याचमनो गृहम् ॥७५॥
 गत्वाऽपि होत्रशालायां सीतयाऽऽसनसंस्थितः । अग्निहोत्रादिविधिना दह्नि हृत्वा ततः परम् ॥७६॥

महान् उत्सवके साथ गुरु वसिष्ठने मुनियोंको साथ लेकर रामका सीताके साथ आनन्दपूजक शुभ गर्भाधान-संस्कार किया ॥ ५७-५८ ॥ तदनन्तर राजा जनकने हित्रियों, पुत्रों तथा पुत्रवधुओं सहित राजा दशरथकी वस्त्र-अलङ्कार आदिसे प्रसन्नतापूर्वक पूजा की ॥ ६० ॥ इस प्रकार एक मास अयोध्यामें रहकर आनन्दसे वे अपने नगरको लौट गये । राम भी सीताके साथ सुवर्ण-रत्नों आदिसे निर्मित भवनोंमें अनेक प्रकारके भोगोंको भोगने लगे । उस समय सोनेके गहनोंसे मुशांभित दासियें पंखा झलती थीं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसी प्रकार प्रत्येक राजपुत्रको स्वांके गर्भाधानसंस्कारम आकर राजा जनकने विविध उत्सव किये और अयोध्या नगरीमें घर-घर वाजे वजे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ सारी अयोध्या मङ्गलमयी हो गयी । कहीं भी अमङ्गलका नाम न था । उस नगरमें कोई दरिद्र, ऋणी, मानसिक तथा शारीरिक दुःखसे पीड़ित नहीं था ॥ ६५ ॥ पञ्चात् राम आदि चारों भाई अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ अलग-अलग महलोंमें गृहस्वधमंका पालन करने लगे ॥ ६६ ॥ राम प्रतिदिन प्रातः उठते तथा शोचादि कुत्व्यसे निवृत्त हो दिव्य पालकीपर सवार होकर स्नान करनेके लिए सरयु नदीपर जाते थे । सवारी आदिको किनारे छोड़ आनन्दसे सरयुको पवित्र करनेके लिये बालुकापर होते हुए वहाँ जाते थे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ मनि योंके सहित जाकर वे सरयु नदीको नमस्कार करके स्नान तथा नित्यकर्मं करते और त्राह्णाणोंको गौ, भूमि, धान्य तथा मृदुर्णां आदिका दान देकर पवित्र सरयु और त्राह्णाणोंकी साइर पूजा करते थे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ तदनन्तर सोनेके धूंधनोंमें वैष्टिहार्षे हुए मृदुर्णांके तारकी गतिमयोंसे युद्ध रेणाम तथा मखमलके उत्तम वस्त्र द्वारा चारों ओरसे आच्छादित एवं मृदुर्णां सार्वथीसे प्रेरित अश्वोंवाले रथपर सवार होकर लौटते थे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ धूंधहकी मालाओं तथा धण्डियोंके शब्दसे गर्जित उस रथके आगे सोनेकी छड़ियोंवाले छड़ीदार दौड़कर मार्ग दिखलाते चलते थे ॥ ७३ ॥ राम्लेने हित्रियों द्वारा पूजित तथा पुष्पवृष्टिसे आच्छादित राम करोड़ों मूर्तीके समान प्रभासम्पन्न अपने महलमें पधारते ॥ ७४ ॥ वहाँ रथमें उनरकर रामचन्द्र-जी खड़ाऊं पहिनकर धर्म जाते । वहाँ सीताजी स्वयं उन्हें पौत्र तथा हाथ-मुँह बोलेका जल देती थीं ॥ ७५ ॥ पञ्चात् सीता समेत राम अग्निहोत्रशालामें जा तथा आसनपर बैठकर अग्निहोत्रकी विधिसे अग्निमें हवन

स्फटिकस्य च लिंगस्य कर्ममार्गं यथाविधि । लोकानां शिक्षणार्थीय कृत्वा पूजनमुत्तमम् ॥७७॥
 जानक्या दत्तपक्षान्ननेवेद्यादि समर्प्य च । ब्राह्मणान्पूज्य दानाद्यैस्तोध्य लब्ध्वा तदाश्रिष्टः ॥७८॥
 तुलसीं च गुरुं धेनुमश्वत्थं मुनिपादपम् । पूजयित्वा रविं देवं ब्रह्मयज्ञं विधाय च ॥७९॥
 गुरोर्मुखाच्च पौराणीं कथां श्रुत्वा तु सीतया । गुरुं पुनः प्रपूज्याथ बन्धुभिः परिवेष्टितः ॥८०॥
 प्रार्थितश्च मुहुः पतन्या ब्राह्मणः परिवारितः । नारिकेलकपित्थाम्रसुलभाजम्बुदाडिमैः ॥८१॥
 खजूरिकापनसाद्यैः पकान्नैर्घृतपाचितैः । उपाहारं सुखं कृत्वा तांबूलं परिगृह्य च ॥८२॥
 दिव्यवस्त्राणि संगृहा दृष्ट्वा तदेवं निजं मुखम् । निरीक्षितश्च वैदेश्याऽरुद्धा स्यंदनमुत्तमम् ॥८३॥
 वेष्टिता मंत्रिदूताद्यैस्तूर्यध्वनिपुरःसरम् । मारुगेहं ततो गत्वा ताः प्रणम्यावनिं गतः ॥८४॥
 सव्या प्रदक्षिणां कृत्वा गत्वा राजगृहं प्रति । सिंहासनस्थं राजानं नत्वा स्थित्वा तदाज्ञया ॥८५॥
 पौरकार्याण्यनेकानि कृत्वा राजा विसर्जितः । ययौ स्यंदनमास्थाय नृपं नत्वा पुनः पुनः ॥८६॥
 तृघीतनिनादैश्च नर्तनैर्वारयोपिताम् । ययौ स्वीयं गृहं रामः स्यंदनादवरुद्धा च ॥८७॥
 भूमिजादत्तपादाद्यर्याचमनोयासनादिकम् । गृहीत्वा तद्रहिंगत्वा कृतं तत्त्वं न्यवेदयत् ॥८८॥
 सबं वृत्तं कौतुकेन हास्यगीतादिमंगलैः । रमयित्वा भूमिकन्यां दिव्यवस्त्रादिभूपिताम् ॥८९॥
 ततो मध्याह्नमये सरव्यां वाऽथ सञ्चनि । स्नात्वा माध्याह्निकं कर्म चकार रघुनंदनः ॥९०॥
 नित्यं यत्राकरोत्सनानं सरयुनिर्मले जले । तदाख्ययाऽभवतीर्थं रामतीर्थमिति ऋष्टम् ॥९१॥
 तद्विख्यातं त्रिभुवने चैत्रमासि विशेषतः । माध्याह्निकं च सपाद्य ब्राह्मणमन्त्रिभिर्जनैः ॥९२॥
 इष्टः सुवर्णपात्रेषु त्रिपदासु धृतेषु च । परिष्कृतेषु जानक्या सीतया गतिलाघवत् ॥९३॥
 कण्ठकंकणमजीरकिकिणीनूपुरादिषु । नदत्तु भोजनं चक्रे राघवो हृष्पूरितः ॥९४॥
 करशुद्धिं विधायाथ भुक्त्वा ताम्बूलमुत्तमम् । ततः शतपदं गत्वा निद्रां कृत्वा तु सीतया ॥९५॥

करते थे ॥७६॥ लोगोंको कर्म करनेका यथार्थं उपदेश देनेके लिए वे स्फटिकके शिवलिङ्गका पूजन करते और सीताके दिये हुए पक्वान्नका नैवेद्य भोग लगाते थे । तदनन्तर ब्राह्मणोंकी पूजाकर तथा उन्हें दान आदिके द्वारा संतुष्ट करके उनसे अनेक आशीर्वाद लेते थे ॥७७॥७८॥ तदनन्तर तुलसी, गुरु, गौ, पीपल, शमी तथा सूर्योदेवकी पूजा और ब्रह्मयज्ञका विधान करके सीताके साथ गुहमुखसे पुराणोंकी कथा सुनते थे । फिर गुरुकी पूजा करके पत्नीके प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणों तथा बन्धुओंके साथ नारियल, केया, आम, सुलभा (शालपर्णी), जामुन, अनार, खजूर तथा कटहल आदि और धूतके पक्वान्न आनन्दसे खाकर पान खाते थे । ७६-८२ ॥ तत्पश्चात् दिव्य वस्त्र धारण करके शीशोंमें मुख देख वैदेहीके समव उत्तम रथपर चढ़ तथा हूतों और मन्त्रियोंको साथ ने तुड्ही आदि वाजोंके साथ माताके महलमें जाते और भूमिपर लोटकर उन्हें प्रणाम करते थे ॥८३॥८४॥ फिर दाहिनी ओरसे प्रदक्षिणा करके राजा दशरथके महलमें जाते और वहाँ सिंहासनपर बैठे हुए राजाको प्रणाम करके उनकी आज्ञासे बैठ जाते थे ॥८५॥ तदनन्तर नगरसम्बन्धी अनेक कार्योंपर परामर्श करके राजा उनको लौटा देते थे । तब राम राजाको प्रणाम करते और रथपर सवार हो गाने-बजाने तथा नाचनेके शब्दोंको सुनते हुए महल जाते । वहाँ रथसे उतरकर धरमें जाते और सीताके हाथों प्राप्त जलसे पांव-हाथ-मुँह आदि धोकर जो कुछ कार्य कर आते थे, वह सब सीताको कह सुनाते ॥८६-८८॥ पश्चात् दिव्य वस्त्रोंसे भूषित सीताको सुन्दर हास्य-गीत आदिके द्वारा प्रसन्न करते थे ॥८९॥ उसके बाद राम दोपहरको सरयू या धर ही में स्नान करके मध्याह्नके कृत्य करते थे ॥९०॥ जिस जगह वे नित्यप्रति स्नान करते थे, उस स्थानका नाम रामतीर्थ पड़ गया ॥९१॥ तीनों लोकोंमें वह स्थान प्रसिद्ध हो गया । विशेष करके चैत्रमासमें उसका बड़ा माहात्म्य है । मध्याह्नकृत्य करनेके बाद ब्राह्मणों, मन्त्रियों तथा मित्रजनोंके साथ तिपाइयोंपर रखेहुए सुन्दर परिष्कृत सुवर्णपात्रोंमें मन्दगतिवाली तथा जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें कंकण, शांकर, नूपुर और करघनी आदि गहने वज रहे थे, ऐसी सीताके साथ रघुपति राम हृष्पूर्वक भोजन करते थे ॥९२-९४॥ पश्चात् हाथ घो

पुनर्वस्त्राणि मंगला लब्ध्वा शस्त्राणि मादरम् । धनुवाणीं करे धृत्वा रथे स्थित्वाऽथ वंधुभिः ॥१६॥
 पुष्पामोद्यानकादीन् दृढ़ा तु कातुकेन च । वायव्यापर्नेतनायगत्या स्वायं गृहं पुनः ॥१७॥
 मायंसंध्यादि मंपाद्य पुनर्हृत्वा सविस्तरम् । शंखं भक्त्या पुनः पूज्य कृत्या चैवापहारकम् ॥१८॥
 रत्नकांचनमाणिक्यनिर्मिते मंचके चरे । दिव्यप्रामादनव्यं स सातया रघुनायकः ॥१९॥
 हास्यगांतविनोदाद्यैनिंद्रो चक्रे ततः परम् । एव नानासमुत्साहेनिनायाकेसमाः सुखम् ॥२०॥
 एकदा राघवं राजा ज्ञात्वा मुद्रलवाक्यतः । वासष्ट्याक्यतश्चापि चारत्रेश्वाप्यमानुपः ॥२०१॥
 साक्षात्वारायणं विष्णुं मत्वाहृय रहः स्थितः । पप्रच्छ त्रिवनयेनैव हृदि भावं विधाय च ॥२०२॥
 राम नारायणस्त्वं हि भूमारहरणाय च । मत्तो जाताऽसात् लाका वदेत्यज्ञानवुद्यः ॥२०३॥
 अतः पृच्छामि ते गम मायया मोहितस्तत्र । किंचिज्ज्ञानोपदेशन नाशयाज्ञानजां मतिम् ॥२०४॥
 दारापत्यादिगेहषु स्थिता नैवोपशाम्यति । ततिपतुवचनं श्रुत्वा राजानं राघवोऽन्नवीत् ॥२०५॥
 श्रीराम उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि तत्र ज्ञानार्थमुत्तमम् । शृणोतु मम मातेयं कौसल्याऽपि तत्र प्रिया ॥१०६॥
 नश्वरं भासते चैतद्विभवं मायोद्धर्वं नृप । यथा शुक्रो रौप्यभासः काचभूम्यां जलस्य च ॥१०७॥
 यथा गजो मर्पभासो मृगतोये जलस्युहा । तद्वदात्मनि भासोऽयं कल्प्यते नश्वरोऽवृद्धैः ॥१०८॥
 अज्ञानटटिभिनित्यं मन्यते न तु पडितः । आत्मा शुद्धो निर्वर्यलीकः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥१०९॥
 यस्यांशांशेन विश्वेशा ब्रह्माद्याः सकला वयम् । स्थित्युत्पत्तिविनाशार्थं नानासूपाणि मायया ॥११०॥
 धायैते नटवद्राजन्न तेष्वासक्त एव सः । यथा पश्चं न स्पृशति जलं मायां तथा मलः ॥१११॥
 आत्मा नित्यो न स्पृशति परमानन्दविग्रहः । देहागारसुतस्त्रीपु मामकेति च या मतिः ॥११२॥

तथा ताम्बूल खाकर सौ पग टहलने के बार सीताके साथ आराम करत थे ॥१५॥ फिर वस्त्र पहिन तथा शामों हाँ रोमें धनुष-बाण लेकर बन्धुओंके साथ रथपर सवार होकर पुणित वाग-वगाचोंको देखते, आनन्द-पूर्वक गायन सुनते तथा नाच देखते हुए पुनः अपने घर आ साक्षसंध्यादि नित्य कर्म करत और वृत्तविधि हृष्ण करके भक्तिसे शिवजीकी पूजा करते थे । सायंकालको भोजन करके रत्नकाचन तथा माणिक्य-मुग्धर पलंगपर दिव्य महलमें सीताके साथ हास्य-गात् तथा विनाइपूर्वक जयन करते थे । इस प्रकार आनन्दसे सुखपूर्वक वारह वर्ष बीत गये ॥१६-१००॥ एक समय मुनि तुद्वल तथा गुरु वौसष्ठक वाक्तोंसे और रामके देवा चरित्रोंको देख राजा दशरथने रामका साक्षात् नारायण समझकर एकान्तम बुलाया आर भक्तिभाव तथा विनाइपूर्वक कहने लगे—॥१०१॥ १०२॥ हे राम ! तुम साक्षात् नारायण हो । तुमने भूमिका भार हरण करनेके लिए मेरे घर अवतार लिया है । ऐसा अज्ञानवुक्त वुद्धिवाले लोग कहते हैं । इस कारण हे राम ! तुम्हारी मायासे मोहित मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम जानका उपदेश देकर मेरा अज्ञान दूर कर दो ॥१०३॥ १०४॥ स्त्री-पुत्र तथा गृह आदिमें अनुरत्न मेरी वुद्धि कभी शान्ति तथा सुखका अनुभव नहीं करती । पिताके इस वचनको सुनकर राम राजा दशरथसे बोले/॥१०५॥ श्रीरामने कहा—हे राजन् । मैं आपको —ज्ञानलाभके लिए उत्तम उपदेश देता हूँ । उसे आप तथा आपकी प्राणत्रिया और मेरी माता कौसल्या भी ध्यनसे सुनें ॥१०६॥ हे नृप ! मायासे उत्पन्न यह समस्त संसार आत्मामें उसी प्रकार ज्ञान भासित होता है जैसे कि सीपीमें चाँदा, रेतीमें जल, रसीमें सौप तथा मृगमरीचिकामें सलिल भासित होता है । अज्ञानी लोग इस आभासको भी नित्य तथा अनश्वर समझते हैं । परन्तु पण्डित लोग तो इससे विपरीत ही मानते हैं । उनके मतमें आत्मा शुद्ध, नित्य तथा सच्चिदानन्दस्वरूप है ॥१०७॥ १०८॥ उसके अंशमात्रसे समस्त विश्वके स्वामी ब्रह्मादि तथा हम सब प्राणी मायाके अध्रोन होकर जगत्की स्थिति उत्पत्ति तथा विनाशके लिये नटकी तरह विविध रूपोंको धारण करते हैं । किन्तु आत्मा स्वयं निसीमें आसन्त नहीं होता । जिस प्रकार कमल-पत्र जलका स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार अमल, नित्य और परम आनन्दस्वरूप आत्मा भी मायासे निर्लिप्त

उपसंहृत्य बुद्ध्या संन्यस्य ब्रह्मणि चिद्वने । यद्यन्तिकचिद्भासतेऽत्र तत्त्वानारायणात्मकम् ॥११३॥
 पश्य त्वं सर्वभावेन मुच्यसे भवसंकटात् । सत्यं शौचं दया शांतिः क्षमा चेंद्रियनिग्रहः ॥११४॥
 अहिमा भगवद्भूत्तिर्वेदमार्गानुवर्तनम् । इत्याद्या ये गुणा राजन तात् भजस्व निरंतरम् ॥११५॥
 चौर्यै द्यूतं विवादं च मात्सर्यं दंभमेव च । क्रौरै लोभं भयं क्रोधं शोकं निद्यप्रवर्तनम् ॥११६॥
 वेदविप्रयतीनां च साधुनां मानभंजनम् । निदां पैशुन्यमानशं त्यज दूरं स्वतो नृप ॥११७॥
 पूर्वं त्वया तपस्तमं पुत्रत्वं याचितं मम । तस्माज्जातोऽस्मि त्वत्तोऽहं कौसल्यायां नृपोत्तम ॥११८॥
 यन्मया कथितं चेतदज्ञानमलनाश्वनम् । गोपनीयं प्रयत्नेन कथनीयं न कुत्रचित् ॥११९॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा अनरायामलो नृपः । सद्भावपरिपूर्णस्तु रोमांचितवपुर्धरः ॥१२०॥
 प्रणनाम राधवस्य चरणी दृढभावतः । ततो रामः पुनः प्राह पितरं निर्मलाशयम् ॥१२१॥
 नेदं योग्यं त्वया राजन् वंदनादि शिशुं प्रति । मायया नवेपस्य मम उपहासकारणम् ॥१२२॥
 मनसेव च मां नित्यं भज भावेन सादरम् । मन्त्रिचत्तो मद्रत्प्राणो मयि भक्तिं दृढां कुरु ॥१२३॥
 इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा गृहात्वाज्ञां तयोः प्रभुः । ययौ रथमारुदः श्रीरामः स्वनिकेतनम् ॥१२४॥
 कदा मातुर्गृहं गत्वा सीतया भोजनं व्यवधात् । कदा आत्मगृहेष्वेव कदा पंक्तौ पितुः स्वयम् ॥१२५॥
 कदा दशरथं तातं भोजनार्थं निजे गृहे । भार्यापुत्रादिभिर्युक्तं पौरैविंप्रैः समन्वितम् ॥१२६॥
 मुदा रामः समाहूय भोजयामास सादरम् । श्रीरामदर्शनार्थं ते तपोवननिवासिनः ॥१२७॥
 अयोध्यानगरीमेत्य द्वारपरनिषेधिताः । शतशः प्रत्यहं रामं दृष्ट्वा स्तुत्वा पुनः पुनः ॥१२८॥
 आतिथ्यं रघुनाथस्य गृहात्वा तुष्टमानसाः । समपञ्चदिनान्येव स्थिन्वा पुण्यकथादिभिः ॥१२९॥
 रमयित्वा रमानार्थं जर्मुः स्वं स्वं वराश्रमम् । यत्र यत्र हि रामस्य प्रीतिं जात्वा विदेहजा ॥१३०॥

रहतां है । देह-गेह-पुत्र-स्त्री आदिपरसे ममता हटाकर अथवा संन्यास भावके द्वारा समस्त भावनाओंको छोड़कर यह जो दृश्यमान संसार है, उसको चिन्दन ब्रह्मसे अभिन्न नारायणस्वरूप जान तथा उसी ईश्वरको सर्वत्र व्याप्त देखकर आप इस भवसङ्कृतसे मुक्त हो जायेंगे । हे राजन् ! पहले आप सत्यभादण, पवित्रता, दया, प्रान्ति, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, भगवद्भूत्तिं तथा वेदोत्तमागंके अनुवर्तनं आदि गुणोंको निरन्तर धारण कर ॥१०६-११५॥ हे नृप ! चौरी, जुआ, इण्डी, पाखण्ड, कूरता, लोभ, भय, क्रोध, शोक, निन्दनीय काममें प्रवृत्ति, वेद-वप्र-साधु-सन्यासा आदिका मानभङ्ग, निन्दा और चुगलखीरी आदिको अपने दिलसे दूर कर दें ॥११६॥११७॥ हे नृप ! आपने पूर्वकालमें तप करके मुझको पुत्ररूपसे माँगा था । इसी कारण मैं आपके द्वारा कौसल्याके गर्भसे पुत्ररूपमें जायमान हुआ है ॥११८॥ यह जो मैंने आपको अजानरूपी मल नष्ट करने-वाला उपदेश दिया है, उसे आप अपने मनमें ही रखियेगा— किसीसे कहिएगा नहीं ॥११९॥ रामके इस उपदेशको सुनते ही राजाके मनसे मायाकृत मोह दूर हो गया और सद्भावसे परिपूर्णं तथा रोमांचित शरीर हाँकर हृद भौतिभावसे राजा दशरथने रामके चरणाकी बन्दना की । इस प्रकार निमिल हृदयबाले पितासे राम फिर कहने लगे— ॥१२०॥१२१॥ हे राजन् ! पुत्रको प्रणाम करना आपको उचित नहीं है । मायासे मनुष्यदेहधारी मेरा इससे उपहास होगा । इस कारण आप सदा आदरभावसे मनमें ही मेरा भजन किया करें । मन तथा प्राणको मुझे अपर्ण करके मेरी हृद भक्ति करें ॥१२२॥ ऐसा कह तथा माता-पिताकी आज्ञा लेकर श्रीरामने उनको नमस्कार किया और रथपर सवार होकर अपने भवनको चले गये ॥१२४॥ वे सीताके साथ कभी माताके महलमें जाकर भोजन करते, कभी भाइयोंके भवनमें और कभी पिताके साथ पंतिमें बैठकर भोजन करते थे । कभी स्त्रियों पुत्रों ज्ञात्युणों तथा नागरिकोंके साथ पिता दशरथको अपने भवगमें बुलाकर सादर हृष्पूर्वक भोजन कराते थे । प्रतिदिन सैकड़ोंकी सल्लामें बनवासी मुनिजन भी श्रीरामचन्द्रका दर्शन करनेके लिये अयोध्या आते रहते थे । वे विना रोकटोक भीतर जाकर रामका दर्शन तथा स्तुति करते और रामके द्वारा किये हुए सत्कारको ग्रहण करके प्रसन्नतापूर्वक पांच-सात दिन वहाँ रहकर अपने-अपने

तच्चन्वकार सा साध्यी हास्यक्रीडासनादिकम् । विवाहानन्तरं रामः समा द्वादश सीतया ॥१३१॥
रमयामास साकेते महाक्रीडापुरःसरम् । सहस्रवर्षेविज्ञेयं श्रेष्ठं वर्षं कृते युगे ॥१३२॥
शतवर्षश्च त्रितायां द्वापरे दशवर्षजम् । कलेमानेन वोद्भव्यं शून्यद्वासात्त्रिविकमात् ॥१३३॥
एवं श्रीरामचंद्रेण भोगा भुक्ताः सुरोपमाः । यस्मिन् ऋतौ च यदुद्रव्यं फलपृष्ठादिकं शुभम् ॥१३४॥
तत्सर्वं सर्वदेवासाद्रामे साकेतमस्थिते । अनावृष्टिर्न वै कुत्र तस्कराणां भयं न हि ॥१३५॥
हिंसादीनां भयं नासीदयोध्याविषये प्रिये । युधाजिन्नाम कंकेयाभ्राता भरतमातुलः ॥१३६॥
निनाय भरतं स्त्रीयराज्ये शत्रुघ्नसंयुतम् । कौतुकेन नृपं पृष्ठा कंकेयां प्राणिपत्य च ॥१३७॥
एवं रामस्य मांगल्यं वालत्वेऽपि सुखावहम् । ये शृण्वति नरा भक्त्या न तेषामस्त्यमांगलम् ॥१३८॥
एवं यथा त्वया पृष्ठं तथा सर्वं मयोदितम् । रामेणाचरितं यच्च नृणां मांगल्यदायकम् ॥३९॥
एवं गिरीद्रजे प्रोक्तं बाललीलादिकौतुकम् । रामचंद्रस्य संक्षेपात्तत्र प्रीत्यं सुखावहम् ॥४०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतगते श्रीमदानन्दरामायणे बालमीकोये सारकाण्डे
रामदिनचर्याविणनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामका दण्डकवनमें प्रवेश)

श्रीशिव उवाच

एवं त्रेतायुगे रामं नगर्या सीतया सुखम् । क्रीडंतं नारदोऽकेवदे ययावाकाशवर्तमना ॥१॥
अथ रामो मुनि पूज्य सीतया लक्ष्मणेन च । शुश्राव वचनं तस्य सुर्विज्ञापितं च यत् ॥२॥
निहत्य रावणं युद्धे ततो राज्यं कुरुत्व हि । अंगीकृत्य रघुश्रेष्ठस्तं मुनिं च व्यसर्जयत् ॥३॥
अथ रामोऽब्रवीत्सीता मम राज्याभिषेचनम् । कर्तुकामोऽस्ति तत्राहं विद्वन्मुत्पाद्य दण्डकम् ॥४॥

अश्रमको चले जाते थे । जो काम करनेसे राम प्रसन्न होते थे, पतिव्रता सीता उन-उन हृस्य-श्रीडा तथा
आसनादिका विधान करती थीं । विवाहके बाद रामने बारह वर्षं तक सीताके साथ अयोध्यामें आनन्द-
पूर्वक विलास किया । कलियुगके हजार वर्षोंके बराबर सत्ययुगका एक वर्ष जानना चाहिये । कलियुगके सी
वर्षोंके बराबर त्रेतायुगका एक वर्ष और कलियुगके बारह वर्षोंके बराबर द्वापरका एक वर्ष होता है ॥१३५-१३३॥
इस प्रकार श्रीरामचन्द्रने बारह वर्षं तक देवताओंके योग्य भोगोंको भोगा । रामचन्द्रजीके अयोध्यामें
रहते समय जिस ऋतुमें जो पुष्प-फल आदि होना चाहिए, वह सब नियमसे उत्पन्न हुआ करते थे । कभी अनावृष्टि
नहीं हुई और चोरोंका भय नहीं रहा । हे प्रिये पार्वती ! उस राज्यमें कभी किसीको हिसक पणुओंका भय
नहीं हुआ । एक दिन युधाजित् नामक कंकेयीका भाई तथा भरतका मामा वहां आया और राजासे पूछतया
कंकेयीको मनाकर शत्रुघ्नसहित भरतको अपने राज्यमें ले गया ॥ १३४-१३५ ॥ बाल्यादस्थामें ही मञ्जुलस्वरूप
तया सुखदायक रामके चरित्रको जो मनुष्य भक्तिभावसे सुनता है, उसका कभी अमञ्जुल नहीं होता ॥ १३६ ॥
इस प्रकार मनुष्यमात्रके लिए कल्याणकारी श्रीरामचन्द्रका चरित्र मैने तुम्को कह सुनाया ॥ १३६ ॥ १४० ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतगते श्रीमदानन्दरामायणे बालमीकोये बालचरित्रे भाषाटीकायां सारकाण्डे
रामदिनचर्याविणनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीशिवजी बोले—इस तरह अयोध्यानगरीमें सुखपूर्वक सीताके साथ कीडा करते हुए रामके पास
बारहवें वर्षमें एक दिन आकाशमार्गसे नारद मुनि पदारे ॥ १ ॥ सीता तथा लक्ष्मणके साथ रामने मुनिकी
पूजा की और उनके मुखसे देवताओंका यह संदेश सुना कि आप पहले रावणको मारकर पश्चात् राज्य करें ।
रघुश्रेष्ठ रामने भी ‘बहुत अच्छा’ कहकर उन्हें विदा किया ॥ २ ॥ ३ ॥ तदनन्तर राम सीतासे कहने लगे—हे सीते !

गच्छामि रावणादीनां वधार्थं लक्ष्मणन च । अयोध्यायां वसात्र त्वं कौसल्यां पार्थिवं भज ॥५॥
 तदामवचनं श्रुत्वा प्रणिपत्य रघूत्तमम् । उत्तान्न मधुरं वाक्यं वनं मां त्वं नय प्रभो ॥६॥
 कारणान्यत्र वै त्राणि संति तानि वदास्यहम् । भवत्वद्य प्रयाणे मे दंडकं हि त्वया सह ॥७॥
 वनप्रयाणं मामाह भ्राता स सत्यवाचिद्विजः । वालत्वे कररेखा मे दृष्टा कश्चिद्दिविजाग्रणीः ॥८॥
 अन्यत्स्वयंवरे पूर्वं सुगानपि मयोदितम् । यदा चापांतिकं प्राप्तः सज्जितुं त्वं सभांगण ॥९॥
 चतुर्दश वत्सराणि मुनिवृत्त्यनुवर्तिनी । विचरिष्याम्यरण्येऽहं धनुः सज्जं करोत्वयम् ॥१०॥
 तत्सत्यं कुरु मद्वाक्यं प्रयाणादंडकं त्वया । अन्यच्छ्रुतं मया पूर्वं रामायणमनुत्तमम् ॥११॥
 तत्र सीतां विना रामो न गतोऽस्मि द्विदंडकम् । तस्मात्त्वं मां रघुश्रेष्ठ दंडकं नेतुमर्हसि ॥१२॥
 तत्सीतावचनं श्रुत्वा तथास्त्विति वचोऽव्रद्धीत् । विहस्य गधवः श्रामान् समालिङ्ग्य विदेहजाम् ॥१३॥
 अथ राजा दशरथः श्रीरामस्याभिषेचनम् । यौवराज्यपदे कतुंमुद्युक्तः प्राह वै गुरुम् ॥१४॥
 यौवराज्यपदे राममभिषेकं त्वमहंसि । तद्राजवचनं श्रुत्वा गुरुदशरथं नृपम् ॥१५॥
 कौसल्यागृहमानीय बोधयामास वै रहः । राजन् शृणु त्वं कौसल्यासुमित्रे शृणुतं त्विमे ॥१६॥
 रावणस्य वधार्थं हि रामः श्रो दंडकं वनम् । गमिष्यति लक्ष्मणेन सीतया कैकबीवरात् ॥१७॥
 तस्मात्त्वमज्ञवत्त्वाणि संभारानभिषेचितुम् । कारयस्व सुमत्रेण समाहूय नृपादिकान् ॥१८॥
 श्रामविरहाद्राजन् ब्राह्मणस्यापि शापतः । अचिरादेव स्वर्लोकं त्वं गमिष्यसि पार्थिव ॥१९॥
 कौसल्येयं रामराज्योत्सवं पश्यतु वै पुनः । अंतरिक्षाद्विमानस्थस्त्वं पश्यसि महोत्सवम् ॥२०॥
 दुलंघ्या भाविनी रेखा ब्रह्मादीनां नृपोत्तम । इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं तेन राजा सभां ययौ ॥२१॥
 रामराज्याभिषेकाय संभारानकरोन्मुदा । दूतंराकारयामास नृपान् दशरथस्तदा ॥२२॥

पिताजी भेरा राज्याभिषेक करना चाहते हैं, परन्तु मैंने उसमें विघ्न लड़ा करके रावण आदिको मारनेके लिए लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्य जानेकी तैयारी की है । तुम यही रहकर माता कौसल्याकी और महाराजकी सेवा करना ॥४॥५॥ रामका यह वचन सुनकर साता रघुत्तम रामके चरणोंपर गिर पड़ी और यह मधुर वचन बोली—हे प्रभो ! मुझे भी अपने साथ वनको ले चलिए ॥६॥ इसमें तीन कारण हैं । उन्हें मैं बताती हूँ । एक तो यह कि बाल्यावस्थामें मेरे हायको रेखा देखकर एक ब्राह्मणश्रेष्ठसे कहा था कि तुम अपने पतिके साथ वनवास करोगी । सो आपके साथ वनमें जानेसे उस ब्राह्मणकी बात सत्य हो जायगी ॥७॥८॥ दूसरा कारण यह है कि जब आप सभाके दीच स्वयम्बरके समय धनुष चढ़ाने चले थे । तब मैंने देवताओंसे प्रार्थना की थी—हे देवताओं ! यदि राम धनुष चढ़ा लें तो मैं चौदह वर्ष तक मुनिवृत्ति धारण करके वनमें विचरण करेंगी ॥९॥१०॥ अतएव आप मुझे वनमें ले जाकर मेरी प्रतिज्ञाको भी सच्चा बनाएं । तीसरा कारण यह है कि मैंने सर्वोत्तम रामायण-महाग्रंथमें यह सुना है कि सीताके विना राम अकेले कभी वनमें नहीं गये । सो आपको मुझे दण्डकारण्यमें साथ ले चलना चाहिये ॥११॥१२॥ सीताके वचन सुनकर रामने उनका आलिङ्गन करके “तथान्तु” कहा ॥१३॥ इधर राजा दशरथने रामका युवराजपदपर अभिषेक करनेका निश्चय करके गुरु वसिष्ठसे कहा कि आप श्रीरामका युव राजपदपर अभिषेक करें । इस बातको सुनकर वै राजा दशरथको कौसल्याके भवनमें ले आये और एकान्तमें कहने लगे—॥१४-१६॥ हे राजन् ! आप तथा ये कौसल्या और सुमित्रा मेरे कथनको सुनें । राम केकेयीके वरसे सीता तथा लक्ष्मणको साथ लेकर रावणको मारनेके लिए कल ही दण्डकवन चले जायेंगे ॥१७॥ इसलिये अनजानकी तरह आप चुपचाप रामका अभिषेक करनेके लिए सुमन्त्रको कहकर सब सामग्री मैगवा इए और समस्त राजाओंको निमन्त्रित करिए ॥१८॥ हे पार्थिव ! श्रीरामके विरह तथा ब्राह्मणके शापसे आप शीघ्र स्वर्गं सिधारेंगे ॥१९॥ बादमें कौसल्या रामके राज्योत्सवकी देखेगी और स्वर्गीय विमानमें बंठकर आप अन्तरिक्षसे वह उत्सव देखेंगे ॥२०॥ हे नृपोत्तम ! भविष्यकी रेखा ब्रह्मादिकोंके लिए भी दुलंघनीय होती है । गुरु वसिष्ठका यह वचन

ऋषीश्वरः समाजमुर्नानाश्रमनिवासिनः । नगरीं शोभायामासु दृतावित्रध्वजोत्तमैः ॥२३॥
 पताकाभिस्तोरणं श्वेतं हेमकुम्भं मनोरमैः । गुरुराजापयामास सुमंत्रं नृपमंत्रिणम् ॥२४॥
 शः प्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः । तिष्ठन्तु पोडश गजाः स्वर्णस्तनादिभूषिताः ॥२५॥
 चतुर्द्वयः समायातु ऐग्नेतकुलोद्धवः । नानातीथोदिकैः पूर्णाः स्वर्णहुम्भाः सहस्रशः ॥२६॥
 स्थाप्यतां तत्र वैश्याघ्रचर्माणि त्रिणि वा नव । श्वेतच्छत्रं रत्नदंडं मुक्तामणिविराजितम् ॥२७॥
 दिव्यमाल्यानि वस्त्राणिदिव्यान्याभरणानि च । मुनयः संस्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशपाणयः ॥२८॥
 नर्तक्यो वारमुख्याश्च गायका वैदिकास्तथा । नानावादित्रकुशला वादयंतु नृपांगणे ॥२९॥
 हस्तयश्वरथपादाता वहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः । नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च ॥३०॥
 तेषु प्रवर्ततां पूजा नानावलिभिराह्वताः । राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥३१॥
 इत्यादिश्य वसिष्ठस्तु रथेन रघुनन्दनम् । गत्वा सम्मानितस्तेन सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥३२॥
 निमित्तमात्रस्तवं राम श्वो गमिष्यसि दंडकान् । चतुर्दश समास्तत्र स्थित्वा संहृत्य रावणम् ॥३३॥
 वंधुना सीतया साधं ततो राज्यं करिष्यसि । लौकिकीं वृत्तिमालं य स्वीकुरुष्व पितुर्वचः ॥३४॥
 अद्य त्वं सीतया सार्थमुपवासं यथाविधि । कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जिरेद्रियः ॥३५॥
 इत्युक्त्वा रथमारुद्धा दृष्ट्वा रामं सलक्ष्मणम् । जानकीं चापि स गुरुर्ययौ राजगृहं पुनः ॥३६॥
 कौसल्या च सुमित्रा च रामराज्याभिषेचनम् । मृपाऽपि श्रुत्वा श्रीगुरोरास्यात्स्नेहसमन्विते ॥३७॥
 चक्रतुः पूजनं देव्यास्तद्विद्वनोपशमस्पृहे । बलिदानं शांतिपाठं मुनिवृद्दसमन्विते ॥३८॥
 अथापराह्ने सौधस्था दास्याः पृत्री तु मंथरा । शोभितां नगरीं दृष्ट्वा पृष्ठा वृदां पथि स्थिताम् ॥३९॥

मूनकर राजा दशरथ सभामें गये ॥ २१ ॥ वहा मन्त्रीसे रामके राज्याभिषेकके वास्ते सब सामग्री जुटवायी और प्रसन्नतापूर्वक दूतोंको भेजकर राजाओंको बुलवाया ॥ २२ ॥ उस समय आश्रमोंमें रहनेवाले अनेक ऋषीश्वर भी वहाँ आ पहुँचे । दूतोंने चित्र-विचित्र ध्वजा, पताका और तोरणोंसे नगरीको सजाया । स्थान-स्थानपर उत्तम तथा मनोहर सुवर्णके कलश स्थापित किये गये । गुरु वसिष्ठने मन्त्री सुमन्त्रको आजा दी कि कल सबेरे ही सुवर्णके अलड्डारोंसे अलंकृत कन्यायें और चार-चार दौतोंवाले ऐरावत कुलमें उत्पन्न सुवर्ण तथा रलों आदिसे अलंकृत सोलह हाथी मध्यकक्षमें उपस्थित रहने चाहिये । वहाँ अनेक तीर्थोंके जलसे परिपूर्ण स्वर्णकुम्भ ॥ २३-२६ ॥ तीन या तीन बाधम्बर, मोती और मणियोंसे सुशोभित रत्नजटित दण्डवाले श्वेत छत्र, चमर, सुन्दर मालायें, सुन्दर वस्त्र तथा दिव्य आभूषण भी तैयार रहें । स्नान आदि संस्कारोंसे संस्कृत मुनिजन हाथमें कुशा लिये हुए तैयार रहें ॥ २७ ॥ २८ ॥ नर्तकियें, वेण्यायें, गायक, वेदधोष करनेवाले विप्र तथा नाना प्रकार वाजा बजानेमें कुशल शिल्पी मिलकर राजमहलके सामने गाना-बजाना प्रारम्भ कर दें ॥ २९ ॥ हायी, घोड़े, रथ और पंदल सेना शस्त्र धारण करके वाहर खड़ी रहे । नगरमें जहाँ-जहाँ देवालय हैं, वहाँ-वहाँ अनेक सामग्रियोंसे प्रेमपूर्वक पूजा की जाय और सब राजे भेट ले-लेकर उपस्थित हों ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इतना रहकर वसिष्ठ रथपर सवार हुए और रघुनन्दन रामके पास गये । रामने उनको आदरपूर्वक आसन दिया । तब मुनि ने उन्हें सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—॥ ३२ ॥ हे राम ! तुम निमित्तमात्र हो । कल तुम दण्डकवनके चले आओगे । वहाँ चौदह वर्ष रहकर रावणको मारोगे । उसके पश्चिम भाई लक्ष्मण तथा सीताके साथ प्रसन्नतापूर्वक राज्य करोगे । अतएव लोकव्यवहार निभानेके लिए पिताके वचनको मान लो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ आज तुम सीताके साथ पवित्रतापूर्वक विधिवद् ब्रह्मचर्यसे रहो और पृथ्वीपर शयन करो ॥ ३५ ॥ ऐसा कह और राम-लक्ष्मण तथा सीतासे मिलकर गुहदेव रथपर सवार हुए और वहाँसे राजमहलको चल दिये ॥ ३६ ॥ हठनन्तर कौसल्या और सुमित्रा गुहदेवके मुखसे रामके राज्याभिषेकको झूठा सुनकर भी स्नेहवश विघ्नोंकी शातिकी इच्छासे मुनियोंको साथ लेकर पूजाद्वयों तथा शांतिपाठोंसे देवीका पूजन करने लगीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ शोपहरके समय छतपर खड़ी दासीपृत्री मंथराने नगरको सुशोभित देखकर रास्तेकी एक बुढ़ियाखे इसका

श्रुत्वा श्रारामराज्यार्थं ययौ देगेन कैक्यीम् । सर्वं वृत्तं निवेद्याथ तृष्णीमासीत्तदा क्षणम् ॥४०॥
 तच्चूत्वा कैक्यी चापि तस्यै भृषणमर्पयत् । एतस्मिन्ननंतरे वाण्या देववाक्यात्सुमोहिता ॥४१॥
 तुष्टा इष्टा तु कैक्यीं भन्मयंत्याह तां पुनः । मृद्दे कथं त्वं तुष्टाऽसि हतभाष्याऽसि वेद्यशहम् ॥४२॥
 रामे राज्यपदं प्राप्ने कौसल्यायाश्च कैक्यि । दासी भविष्यसि त्वं हि अतो मद्वचनं कुरु ॥४३॥
 वरेण न्यामभूतेन राज्यं श्रीभरताय हि । नृपं प्रार्थय रामस्य द्वितीयेन वरेण च ॥४४॥
 दंडकारण्यगमनं चतुर्दशं समाः पदा । क्रोधागारं प्रविश्याद्य कुरुत्व यन्मयेरितम् ॥४५॥
 तन्मथरोक्तं स्वहितं मत्त्वा सापि तथाऽकरोत् । मोहिता साऽविवेकेन श्रीराघवसुरेच्छया ॥४६॥
 ततो निशायां राजा सा ज्ञाता क्रोधगृहस्थिता । गन्वा तत्र नृपः शीघ्रं ददर्श कैक्यीं तदा ॥४७॥
 विकीर्यमाणकेशां तां त्यक्ताऽलंकारमंडनाम् । भूमौ शयानां तां इष्टा ज्ञात्वा तस्या मनोगतम् ॥४८॥
 रामाय दंडकाण्यं यौवराज्यं सुनाय च । वराभ्यां याचितं ज्ञात्वा हेत्युक्त्वा मूर्च्छितोऽमवत् ॥४९॥
 प्रभाते तन्मुमत्रेण वृत्तं श्रुत्वा नृपं ययौ । कैक्यी मंत्रिणा पृष्ठा सुमंत्रं प्राह सा तदा ॥५०॥
 अत्रानयस्व श्रीरामं द्रष्टुं तं वाञ्छते नृपः । सोऽप्याह रामं नृपतिमपृष्ठा नानयाम्यहम् ॥५१॥
 तदा शृनैर्नृपः प्राह शीघ्रमानय राघवम् । सुमंत्रोऽप्यानयामास राघवं पाथिवाज्ञया ॥५२॥
 ततो रामो नृपं गत्वा श्रुत्वा कैक्येयजागिरा । आत्मानं दंडके वासं वरदानं पितुः पुरा ॥५३॥
 तथेत्यंगीचकाराथ नृपं वचनमवृत्तीत् । मा ते शोकोऽस्तु हे तात इहं गन्डामि दंडकान् ॥५४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वा नृपोऽव्रत्तीत् मां विहाय कथं घोरं विपिनं गन्तुमिच्छसि ॥५५॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सांत्वयामास राघवः । अहं प्रतिज्ञा निस्तीर्थं शीघ्रं यास्यामि ते पुराम् ॥५६॥

नारण पूछा ॥ ३९ ॥ उसके मुख्यसे रामके राज्याभियेकको बात सुनकर वह शीघ्र कैक्यीके पास गयी और सब वृत्तान्त नूनाकर क्षण भर चुरचाप स्वर्णा रहा ॥ ४० ॥ उसकी बात सुनकर कैक्यीने उसको अपना एक आभूषण दे दिया । इतनेमें देवताओंको प्रेरणा तथा सरस्वतीसे मोहित मन्थरा कैक्यीको प्रसन्न देखकर उसे डराती हुई कहने लगी—अरे मूर्छ ! रामके राज्याभियेकका समाचार सुनकर तू प्रसन्न क्यों हुई ? ऐसा ज्ञात होता है कि तेरा भाग्य तुझसे रुठ गया है । यदि रामको राज्य मिल गया तो आं कैक्यी ! तुझे कौसल्याकी दासी बनना पड़ेगा । इस कारण जो मैं कहूँ, वैसा कर ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अपने पति राजा दशरथके पास घरोहर रख्ले दो वरोंमेंसे एकके द्वारा तू भरतके लिये राज्य माँग और दूसरे वरके द्वारा चौदह वर्षके लिए रामका पैदल दण्डकारण्यगमन माँग । तू अभी कोपभवनमें चली जा ॥ ४३-४५ ॥ उसने भी श्रीरामचन्द्र तथा देवताओंकी इच्छासे और अविवेकके कारण मोहित मन्थरा के उस कथनको अपना हितकारक समझकर वैसा ही किया ॥ ४६ ॥ सायकालके समय जब राजाको ज्ञात हुआ कि कैक्यी कोपभवनमें है, तब वे उसके पास गये और देखा कि कैक्यी सिरके बाल खोले, भूषण तथा वस्त्रोंको फेंककर घरतीपर पढ़ी हुई है । पश्चात् जब राजा दशरथने उसके अभिप्रायको जाना तो उसके कथनानुसार दो वरोंमेंसे एकके द्वारा रामको दण्डकारण्यवास और दूसरेके द्वारा भरतको यौवराज्य देनेको बात स्वीकार करके मूर्छित हो गये ॥ ४७-४९ ॥ प्रातःकाल मंत्रो सुमंत्र इस वृत्तान्तको सुनकर राजाके पास गये । सुमन्त्रके पूछनेपर कैक्यीने कहा— ॥ ५० ॥ राजा रामको देखना चाहते हैं । जाओ, उन्हें यहाँ बुला लाओ । सुमन्त्रने कहा कि राजासे विना पूछे मैं रामको यहाँ नहीं ले आ सकता ॥ ५१ ॥ तब राजाने घोरेसे कहा कि 'रामको शीघ्र ले आओ !' सुमन्त्र भी महाराजकी आज्ञासे शीघ्र रामको ले आये ॥ ५२ ॥ रामने राजाके पास आकर कैक्यीकी वाणीसे अपने दण्डकारण्यवास तथा गिताता पूर्वकालमें वरदान देनेका हाल सुना तो "तथास्तु" कहकर स्वीकार किया । उन्होंने राजासे कहा--हे तात ! आप शोक न करें, मैं अभी दण्डकारण्य जाता हूँ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ रामका वचन सुनकर राजा दशरथ कहने लगे--हे राम ! मुझको छोड़कर तुम वनमें कैसे जाओगे ? ॥ ५५ ॥ पिताके इस करुण वचनको सुनकर राम उन्हें

इदानीं गंतुमिच्छामि व्येतु मातुश्च हृच्छयः । मातरं च समाश्वास्य हनुनीय च जानकोम् ॥५७॥
 आगत्य पादौ वंदित्वा तव यास्ये सुखं वनम् इत्युक्त्वा दौ परिक्रम्य मातरं दृष्टमाययौ ॥५८॥
 नत्वा स्वमातरं रामः समाश्वास्य पुनः पुनः । नत्वा प्रदक्षिणाः कृत्वा तामामंत्र्य ययौ गृहम् ॥५९॥
 सर्वं वृत्तं तु सीतां स कथयामास राघवः । सीतया लक्ष्मणेनापि वनं गंतुं पुनः पुनः ॥६०॥
 प्राथितश्च तथेत्युक्त्वा त्वरयामास राघवः । सर्वस्वं ब्राह्मणान्दत्त्वा सीतयाऽग्निसमन्वितः ॥६१॥
 पद्मथामेव शर्नभ्रात्रा ययौ रामो नृपान्तिकम् । गच्छतं पथि श्रीरामं पद्मयां दृष्ट्वा पुर्णकमः ॥६२॥
 परस्परेण ते वृत्तं श्रुत्वा व्याकुलमानसाः । वभूवुस्तान्वामदेवः कथयामास सादरात् ॥६३॥
 नारदागमनं रामप्रतिज्ञां रावणस्य च । वधादिकं सविस्तारं विष्णुं मनुजरूपिणम् ॥६४॥
 पौराः श्रुत्वा गतक्लेशा ह्यभूवन्पथि संस्थिताः ततो नत्वा नृपं रामः कंकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥
 अम्बागतोऽहं विष्णिनं गंतुमाज्ञां ददस्व माम् । ततः सा बलकलादीनि ददौ रामादिकास्तदा ॥६६॥
 रामस्तान् परिधायाथ स्वयं सीतामशिक्षयत् । तदृष्ट्वा कंकेयीं प्राह गुरुः क्रोधेन भर्त्यन् ॥६७॥
 जडे पापिनि दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृतः । वनवासाय दुष्टे त्वं सीतायै किं प्रदास्यमि ॥६८॥
 इत्युक्त्वा दिव्यवस्थाणि सीतायै स गुरुर्ददौ । राजा दशरथोऽप्याह सुमन्त्रं रथमानय ॥६९॥
 रथमारुह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः । रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरौ रथमारुहत् ॥७०॥
 सीतया लक्ष्मणेनाथं चोदयामास मारथिम् । कौसल्यां च सुमित्रां च तातमाश्वास्य वै पुनः ॥७१॥
 समाश्वास्य जनान् रामस्तमसातीरमाययौ । माघमासे सिते पक्षे पञ्चम्यां परमेऽहनि ॥७२॥
 प्राप्ते ह्यष्टादशे वर्षे राघवाय महात्मने । आसीतद्वनप्रयाणं हि स्वपुर्यास्तमसातटम् ॥७३॥

सांत्वना देते हुए बोले कि मैं आपको प्रतिज्ञा पूरी करके शीघ्र पुरीमें लौट जाऊंगा ॥ ५६ ॥ परन्तु इस समय तो मैं जाना ही चाहता हूँ । जिससे कि माता कंकेयीके हृदयका शोक दूर हो सके । माताको आश्वासन दे तथा सीताको समझाकर मैं आ रहा हूँ । तब आपके चरणोंको प्रणाम करके सुखसे वनको प्रस्थान करूँगा । यह कहकर राम उन दोनोंकी परिक्रमा करके दर्शन करनेके लिये माता कौसल्याके पास गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ माताको नमस्कार करनेके बाद वारम्बार समझा तथा प्रदक्षिणा करके उनकी आजासे अपने महलमें गये ॥ ५९ ॥ वहाँ जाकर श्रीरामने सीताको समस्त वृत्तान्त कह सुनाया । जब सीता और लक्ष्मण वारम्बार अपने साथ वनमें ले चलनेकी प्रायना की, तब 'अच्छा' कह तथा शीघ्र ब्राह्मणोंको सवंस्व दान देकर सीता तथा अग्निको साथ लेकर भाई लक्ष्मणके साथ पैदल ही राजाके पास आये । रास्तेमें पुरवासीजन रामको पैदल आते देख तथा एक दूसरेसे सब वृत्तान्त जानकर बड़े चिन्तातुर हुए । तब वामदेव मुनिने ग्रेमसे उन लोगोंको नारदका आगमन, रामको प्रतिज्ञा, रावणका वध तथा विष्णुका मनुष्यरूप धारण करना आदि वृत्तान्त विस्तारसे कह सुनाया ॥ ६०-६४ ॥ रास्तेमें लड़े पुरवासीजन उनकी यह बात सुनकर शान्त हो गये । रामने राजाके पास जा तथा उन्हें नमस्कार करके कंकेयीसे कहा—॥ ६५ ॥ हे अम्ब ! मैं वन जानेके लिए तंयार हो गया हूँ । आप मुझे आजा दें । तब उसने राम, सीता तथा लक्ष्मणको पहिननेके लिये बलकल बसन दिये ॥ ६६ ॥ राम स्वयं उन्हें पहिनकर सीताको बलकल पहिनना तिखलाने लगे । यह देखकर मुनि वसिष्ठ कुद्ध होकर कंकेयीको घमकाते हुए कहने लगे—॥ ६७ ॥ ओ जड़े ! अरी पापिनि ! अवि दुर्वृत्ते ! तूने केवल रामके वनवासका वर माँगा है । तब सीताको पहिननेके लिये बलकल क्यों देती है ? ॥ ६८ ॥ यह कहकर सीताके लिए गुरुने दिव्य वस्त्र दिये । राजा दशरथ बोले—हे सुमन्त्र ! रथ ले आओ । उस रथपर सवार होकर वनचरोंके प्रिय ये तीनों वनको जायेंगे । बादमें रामने माता-पिताकी प्रदक्षिणा की और सीता तथा लक्ष्मणको साथ लेकर रथपर सवार हुए । तब सारथीको रथ चलानेकी आज्ञा दी । कौसल्या, सुमित्रा, पिता तथा अन्य जनोंको प्राश्वासन देकर राम चल पड़े और शीघ्र ही तमसा नदीके तीरपर जा पहुँचे । अठारहवें वर्षके माघ शुक्ल वसन्तपञ्चमीकी शुभ तिथिको महात्मा रामने अपने नगरसे चलकर तमसाके किनारेकी ओर प्रयाण किया था

इंद्राद्या निर्जराश्चकुस्तदा तन्मार्गसत्क्रियाम् । आसन् शुभात्र शकुना रामस्य व्रजतो वनम् ॥७४॥
 उपित्वेकां निशां तत्र मृगवेरपुरं ययौ । गुहेन मानितश्चापि तत्र रात्रिं निनाय सः ॥७५॥
 गुहानीतैर्वैटक्षीर्वैर्वैवंधं राघवो जटाम् । प्रभाते सीतयाऽरुद्धा नौकायां लक्ष्मणेन सः ॥७६॥
 ग्रेष्यामास सरथं सुमंत्रं नगरीं प्रति । गुहस्तां वाहयामास नौकां स्वज्ञातिभिस्तदा ॥७७॥
 गंगामध्यगतां गंगां प्रार्थयामास जानकी । देवि गंगे नमस्तेऽस्तु निवृत्ता वनवासतः ॥७८॥
 रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये । सुरामांसोपहारैश्च नानावलिभिरादता ॥७९॥
 इत्युक्त्वा परकूलं तु गत्वा रामो शुहं तदा । विसर्जयित्वा तत्रैकां निशां नीत्वा शनैः शनैः ॥८०॥
 भारद्वाजाश्रमं गत्वा तस्थौ तेनातिमानितः । ततः प्रयागे यमुनां तीर्त्वा गत्वा महावनम् ॥८१॥
 वाल्मीकेराश्रमं गत्वा तस्थौ तेनातिपूजितः । चित्रकूटे लक्ष्मणेन पर्णशालां मनोरमाम् ॥८२॥
 कृत्वा मांसैर्मृगोऽद्वैर्वैलिं दत्त्वा रघुत्तमः । तस्थौ तस्यां मुखं आत्रा सीतया स्वगृहं यथा ॥८३॥
 शयनामनपाकाग्रिदेवादीनां पृथक् पृथक् । तत्रासन्निविधाः शालास्तरुदलिविराजिताः ॥८४॥
 कंदमूलवेनोऽद्वैर्मृगमांसफलादिभिः । मनोश्चगणामातिध्यं चक्रमने स्वगृहे यथा ॥८५॥
 एकदा निद्रितं रामं सीतांके सन्निरीक्ष्य च । ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नव्वंस्तुडेन चामकृत् ॥८६॥
 सीतांगुष्ठं मृदु रक्तं विददागमिपाशया । निद्राभंगभयाऽर्द्धतुः सीतया न निवारितः ॥८७॥
 सीतांगुष्ठं तु काकेन भिन्नं हष्टा रघुत्तमः । अभिद्रवतं रक्तास्यमीपिकास्तं मुमोच सः ॥८८॥
 केनाप्यरक्षितस्यास्त्रभयाऽद्वााऽगोलके । स्वशरणमागतस्यास्य पुनर्नारदत्राक्षयतः ॥८९॥
 ईपिकाखेण काकस्य विभेदं नयनं क्षणात् । एवं नानाकौतुकानि कुर्वेस्तस्थौ सुखं प्रभुः ॥९०॥

॥ ६९-७३ ॥ उस समय इन्द्रादि देवताओंने मार्गमें उनका सत्कार किया । वनमें जाते हुए रामको अनेक शुभ शकुन दीने ॥ ७४ ॥ वे वहाँ एक रात्रि निवास करके श्रुत्वायेरपुर गये । वहाँ निषादराजके द्वारा सम्मानित होकर उस रातको वहीं विताया ॥ ७५ ॥ सबंते रामने निषादके द्वारा लाये हुए वटबृक्षके दूधसे जटा बांधी । तदनन्तर सीता तथा लक्ष्मणके साथ नौकापर सवार हुए ॥ ७६ ॥ वहाँसे रथसहित सुमन्त्रको अयोध्या लौटा दिया । तब निषादराजने स्वयं अपने जातिवालोंके साथ मिलकर नावको लेना आरम्भ किया ॥ ७७ ॥ जातकीने धीच धारामें जाकर गङ्गाजीकी प्रार्थना की और कहा—हे देवि गंगे ! आपको नमस्कार है । मैं राम तथा लक्ष्मणके माथ वनसे सकुशल लौटकर आदर तथा अद्वापूर्वक मांस-मदिरा आदिके उपहारोंसे आपकी पूजा करूँगी ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ उस पार जा तबा वहाँ एक रात निवास करके रामने निषादको लौटा दिया और धीरे-धीरे चलकर भारद्वाजके आश्रमपर जा पहुँचे । वहाँ उनका अत्यन्त आग्रह देखकर ठहर गये । सबंते प्रयागमें यमुनाको पार करके चले और महावन (चित्रकूट) में स्थित वाल्मीकिके आश्रममें जा पहुँचे । वहाँ उनसे पूजित होकर ठहरे । चित्रकूटमें रामने लक्ष्मणसे एक मनोहर पर्णकुटी वनवायी ॥ ८०-८२ ॥ मृगोंके मांसकी दलि देकर रघुत्तम राम सीता तथा भाईके साथ मुखपूर्वक धरकी तरह उसमें रहने लगे ॥ ८३ ॥ शयनका वैठनेका, खानेका, अग्निका तथा देवता आदिका स्थान विविध वेतों और लताओंसे निर्माण किया गया । वे स्थान अति रमणीक लगते थे ॥ ८४ ॥ वहाँ उत्पन्न होनेवाले कंद-मूल-फल तथा मृगमास आदिसे, जैसे अपने भवनमें मुनीश्वरोंका सत्कार करते थे, वैसे ही सत्कार करने लगे ॥ ८५ ॥ एक समय सीताकी गोदमें सिर रखकर रामको सीते देख इन्द्रका पुत्र जयन्त कौआ बनकर वहाँ आया और अपने नख तथा चोंचसे बारम्बार सीताके पाँदके लाल अंगूठेका मांस खानेकी इच्छासे उसे विदोणं करने लगा । सीताने पतिकी निद्रा भंग हो जानेके भयसे उसको नहीं हटाया ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ जागनेके बाद रामने सीताके अंगूठेको कौएके द्वारा विदारित देखकर रक्तरक्षित मुखवाले भागते हुएकौएपर सींकका अस्त्र छोड़ा ॥ ८८ ॥ त्रह्याण्ड भरमें उस अस्त्रके भयसे जब किसीने जयन्तकी रक्षा नहीं की, तब नारदके कहनेपर वह रामकी शरणमें आया । उस समय क्षणभरमें रामने सींकके अस्त्रसे जयन्तकी केवल एक आख कोड़कर उसे जीवनदान दे दिया । इस प्रकार सबके प्रभु राम विविध

सुमत्रोऽपि पुरीं गत्वा नृपं वृत्तं न्यवेदयत् । सोऽपि राजा राघवेति जपन्स्वं जीवितं जहाँ ॥९१॥
 नृपं मृतं गुरुज्ञात्वा तेलद्रोण्यां निधाय तम् । युधाजिन्नगरादृदृतैः कैकेयास्तनयावुभौ ॥९२॥
 आनयामास भरतशत्रुघ्नौ वेगतस्तदा । तावुभावपि वेगेन स्वां पुरीं संविवेशतुः ॥९३॥
 मात्रा संपादितं कृत्यं ज्ञात्वा विकृत्य मातरम् । भरतः पितरं वह्नि ददौ सरयुसैकते ॥९४॥
 वीराणां मातरस्तात्र जग्मुर्न स्वामिना दिवम् । पितुरुत्तरकार्यादि कर्म कृत्वा सविस्तरम् ॥९५॥
 मंथरां ताडयामास मातुरग्रे पुनः पुनः । प्रार्थितोऽप्यभिषेकार्थं राज्यमंगीचकार न ॥९६॥
 ततो मंत्रिजनैः साकं मातृभिः पुरवासिभिः । परावर्तयितुं रामं ययौ स भरतस्तदा ॥९७॥
 गुहेन मानितश्चापि भारद्वाजाश्रमं ययौ । तपोवलेन भूस्वर्गं निर्माय भरतं मुनिः ॥९८॥
 समैन्यं पूजयामास तं नत्वा भरतोऽपि सः । मुनिसंदर्शितपथा चित्रकूटेऽग्रजं ययौ ॥९९॥
 दृढ़ा रामं तु शालायां सीतया वंधुना स्थितम् । नत्वा तेनालिंगितश्च सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥१००॥
 रामः श्रत्वा मृतं तातं गत्वा मंदाकिनीं नदीम् । स्नात्वा तिलाङ्गलिं दत्त्वा ययौ शालां निजांगिरौ ॥१०१॥
 ततस्तं प्रार्थयामास भरतो गुरुणा सह । राज्यार्थं राघवश्चापि नेत्युवाच पुनः पुनः ॥१०२॥
 प्रायोपवेशनं तत्र दर्भेषु भरतस्तदा । चकार निग्रहं तस्य ज्ञात्वा गुरुमचोदयत् ॥१०३॥
 रामाज्ञया गुरुश्चाह॑ भरतं चोधयस्तदा । भूभारद्वरणार्थाय विष्णुः साक्षाद्रघूत्तमः ॥१०४॥
 अत्र जातोऽस्ति देवानां वचनाद्रावणादिकान् । हन्तुं गच्छति रामोऽय मा त्वं निग्रहमाचर ॥१०५॥
 ततो ज्ञात्वा हरिं रामं भरतो राममव्रवात् । राज्यार्थं पादुके देहि तयोः सेवां करोम्यहम् ॥१०६॥
 जटावल्कलधारी च वसामि नगराद्रहिः । प्रतीक्षां तत्र राजेन्द्र वर्पाणि च चतुर्दश ॥१०७॥

लोलाये करने लगे ॥८६॥९०॥ उधर सुमन्त्रने अवघपुरीमें जाकर राजा दशरथको सब वृत्तान्त सुनाया । राजाने भी 'हा राघव ! हा राघव !' करते-करते प्राण छोड़ दिये ॥ ९१ ॥ तब गुरु वसिष्ठने मृत राजाके शरीरको तेलके टौंकिमें रखवा दिया और युधाजितके नगरमें टिके दोनों पुत्रों भरत-शत्रुघ्नको दूतोंके द्वारा तुरन्त बुलवाया । वे दोनों शोष्य अपने नगरमें आये तथा माताके कुकृत्यको सुनकर उसे विकारने लगे । भरतने पिताके शरारका सरयू नदीकी बालुकामें अग्निसंस्कार किया ॥ ९२-९४ ॥ वीर पुरुषोंकी माताएं स्वामीके साथ स्वगंलोक-को नहीं गयीं । भरतने पिताकी उत्तरकियाये विस्तार सहित की ॥ ९५ ॥ तदनन्तर भरत-शत्रुघ्नने माताके सामने मंथराको वारम्बार पोटा और माताके बहुत कहनेपर भी भरतने राज्य नहीं स्वीकार किया ॥ ९६ ॥ पश्चात् वे मन्त्रियों, माताओं तथा पुरवासियोंके साथ रामको लौटा लानेके हेतु बनको गये ॥ ९७ ॥ रास्तेमें भरत निपादराज द्वारा सम्मानित होकर भारद्वाजके आश्रममें पधारे । मुनिने अपन तपोवलसे पृथ्वीपर स्वर्गकी रचना करके सेना सहित भरतका सत्कार किया । तदनन्तर भरत उनको प्रणाम करके उनके बतलाये हुए रास्तेसे चित्रकूटमें अपने बड़े भाई रामके पास गये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ पण्डिशालामें सीता तथा लक्ष्मण सहित रामको देखकर भरतने उन्हें प्रणाम किया । तदनन्तर रामसे आलिङ्गित होकर उन्होंने सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया ॥१००॥ पिताकी मृत्यु सुनकर राम मन्दाकिनीं नदीपर गये । वहाँ स्नान करके तिलाङ्गलि दी और पर्वतपर स्थित अपनी पण्डिशालामें लौट आये ॥ १०१ ॥ गुरु वसिष्ठको साथ लेकर भरतने रामसे राज्य स्वीकार करनेके लिये वारम्बार प्रार्थना की । तिसपर भी राम उसको वार-वार अस्वीकार ही करते गये ॥१०२॥ तब भरत कुशाके आसनपर बैठकर अनशन (उपवास) करने लगे । उनकी दृढ़ता तथा असन्तोष देखकर रामने गुरु वसिष्ठसे भरतको समझनेके लिये कहा ॥ १०३ ॥ रामकी आज्ञासे गुरुने भरतको समझाते हुए कहा कि ये विष्णुस्वरूप रघूत्तम राम भूभार हरण करनेके लिये इस पृथ्वीपर अवतरे हैं । ये देवताओंके अनुरोधसे रावण आदिको मारने जा रहे हैं । इस कारण तुम हठ मत करा ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ तब भरत रामको साक्षात् इष्वार जानकर उनसे बोले-हे राम ! राजकार्य करनेके लिए आप अपनी खड़ाऊं दे दें । जटावल्कलधारी ने उनकी नित्य सेवा पूजा करता हुआ नगरके बाहर रहूँगा । परन्तु हे राजेन्द्र ! वहि अप

कृत्वा चतुर्दशे वर्षे पूर्णे गुप्ते रवी त्वहम् । प्रचेक्ष्याम्यनलं राम सत्यमेतद्वचो मम ॥१०८॥
 तत्त्वस्य वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा रघूत्तमः । राज्यार्थं स्वीयपदयोः पादुके रत्नभूषिते ॥१०९॥
 ददौ रामस्तदा तस्मै ततस्तं स व्यसर्जयत् । गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते ॥११०॥
 मस्तकोपरि ते बद्ध्वा कृतकृत्यममन्यत । ततो नत्वा रघुश्रेष्ठं परिक्रम्य पुनः पुनः ॥१११॥
 सैन्येन मातृभिः शीघ्रं राममामन्त्र्य सो ययौ । संप्रार्थयत्कैकयी सा रामचन्द्रं पुनः पुनः ॥११२॥
 मयाऽपराधितं राम तत्क्षंतव्यं रघूत्तम । तामाह रामचंद्रोऽपि न त्वया मेऽपराधितम् ॥११३॥
 मच्छंदान्मंथरावाक्यात्त्वं वाण्या मोहितातदा । सुखं गच्छांब स्वपुरीं न क्रोधोऽस्ति मम त्वयि ॥११४॥
 इत्युक्ता रामचंद्रेण भरतेन न्यवर्तत । भरतः पूर्वमार्गेण ययौ स्वनगरीं शुदा ॥११५॥
 सर्वान् स्थाप्य नगयाँ तु नंदिग्राममकल्पयत् । तस्यौ स भरतस्तत्र स्थाप्य सिंहासनोपरि ॥११६॥
 रामस्य पादुके दिव्ये फलमूलाशनः स्वयम् । राजकार्याणि सर्वाणि यावंति पृथिवीपतेः ॥११७॥
 तानि पादुकयोः सम्यङ्गनिवेद्यति राघवः । गणयन्दिवसान्येव रामागमनकांक्षया ॥११८॥
 स्थितो रामार्पितमनाः साक्षात्क्षमुनिर्यथा । रामोऽपि चित्रकूटादौ वसन्मूनिभिरादृतः ॥११९॥
 चकार सीताया क्रीडां विपिने रम्पर्वते । मनःशिलासु तिलकं सीताया भालकेऽक्षरोत् ॥१२०॥
 गङ्डयोश्चित्रवल्लीः स चकार निजहस्ततः । वृक्षारुणदलैश्चित्रैः कोमलैः कुसुमदिभिः ॥१२१॥
 एवं क्रीडन्मुखं रामस्तस्थौ पत्न्याऽनुजेन च । नागरास्तं सदा जग्मृ रामदर्शनलालसाः ॥१२२॥
 हृष्टा सञ्जनसंबाधं रामस्तत्याज तं गिरिम् । अन्वगात्सीतया आत्रा द्यत्रोराश्रममुच्चमम् ॥१२३॥
 नत्वाऽत्रिं भानितस्तेन तस्यौ तत्र दिनत्रयम् । गृहस्थामनुस्थया तां सीताऽत्रेवं चनात्तदा ॥१२४॥

निश्चित समयपर नहीं लौटेंगे तो मैं चौदह वर्षं समाप्तिके दिन सूर्यास्तिके समय अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगा । हे राम ! मेरी इस प्रतिज्ञाको आप सत्य समझें ॥ १०६-१०८ ॥ उनके इस वचनको सुनकर रघूत्तम रामने "तथाऽस्तु" कहा और राज्यके लिए अपने पादेकी रत्नभूषित पादुकाएँ देकर उन्हें विदा किया । भरतने उन रत्नभूषित पादुकाओंको लेकर माथे चढ़ाया और अपने आपको कृतकृत्य समझा । पश्चात् रघुश्रेष्ठ रामको बारम्बार प्रणाम करके परिक्रमा की और उनकी आज्ञा लेकर भरत माता और सेनाके साथ तुरन्त अयोध्याकी ओर चल दिये । उस समय कैकेयी पुनः पुनः रामसे प्रार्थना करने लगी—॥ १०६-११२ ॥ हे राम ! हे पुरुषोत्तम ! मैंते जो अपराध किया है, उसे क्षमा कर दो । रामने कहा—माताजी ! तुम्हारा कोई अपराध नहीं है ॥ ११३ ॥ मेरी इच्छासे ही सरस्वतीने मंथराके वाक्यसे तुमको मोहित कर दिया था । हे अम्ब ! अब तुम सुखपूर्वक अयोध्या जाओ । मुझे तुमपर कुछ भी क्रोध नहीं है ॥ ११४ ॥ ऐसा कहनेके बाद कैकेयी रामके कथनानुसार भरतके साथ नगरको लौटी । भरत भी सहृपं जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे अपनी नगरीको लौट गये ॥ ११५ ॥ वहाँ जा तथा सबको नगरमें पहुँचाकर उन्होंने नन्दीग्राम बसाया । वहाँ भरत सिंहासनपर रामकी दिव्य खड़ाऊं रख तथा फल-मूल खाकर रहने लगे । राज्यके जो-जो काम आते थे, उन सबको भरत-जी खड़ाऊंके सामने लाकर प्रतिदिन निवेदन कर दिया करते थे । इस प्रकार राममें मन लगाकर रात्रिदिवसोंको गिनते हुए भरत साक्षात् ब्रह्ममुनिकी भाँति समय व्यतीत करने लगे । उबर राम भी मुनियोंसे सत्कार प्राप्त करके सानन्द चित्रकूट पर्वतपर रहने लगे ॥ ११६-११८ ॥ उस पवित्र तथा मनोहर बनमें राम सीताके साथ क्रीड़ा करते थे । मैनसिलकी सुन्दर शिलापर चन्दनादि घिसकर राम सीताके मस्तकपर तिलककी रचना करते थे ॥ १२० ॥ अपने कोमल हाथोंसे सीताके कोमल गालोंपर चित्रावलीका निर्माण करते थे । वृक्षोंके कोमल-कोमल लाल पत्तों और अनेक प्रकारके फूलोंसे सीताको सजाते थे ॥ १२१ ॥ इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए राम अपनी प्राणप्यारी पत्नी तथा अनुज लक्ष्मणके साथ सुखपूर्वक रहते थे । वहाँ अनेक नागरिक रामके दर्शनकी अभिलाषासे सदा उनके पास आते रहते थे ॥ १२२ ॥ इस प्रकार लोगोंका आवागमन देखकर रामने उस पर्वतको छोड़ दिया और भाई लक्ष्मण तथा सीताको लेकर अविश्वसिके उत्तम आश्रमकी ओर चल

नत्वा तयाऽलिंगिता सा तदेके समुपाविशत् । अनुष्टुप्या तदा सीतां पूजयामास सादरम् ॥१२५॥
 दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा । दुहूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता ॥१२६॥
 अंगरागं च सीतायै ददावत्रेस्तु सा प्रिया । न त्यक्ष्यतेऽङ्गशोभां त्वं कदापि जनकात्मजे ॥१२७॥
 पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि । कुशली राघवो यातु त्वया भ्रात्रा पुनर्गृहम् ॥१२८॥
 मोजयित्वा यथान्यायं रामं सीतामन्वितम् । अत्रिविमर्जयामास रामो नत्वा ययौ वनम् ॥१२९॥
 एवं वर्षमतिक्रांतं, रामस्य गिरिवासिनः । यथासुख लक्ष्मणेन जानक्या सहितस्य च ॥१३०॥
 एवं गिरींद्रजे योध्यापुर्या रामेण यत्कृतम् । चरित्रं तन्मया किञ्चित्तद्वद्ये विनिवेदितम् ॥१३१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
 अयोध्याचरित्रे दण्डकवनप्रवेशो नाम वष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामके द्वारा विराघ और खर-दूषणका वध)

श्रीशिव उवाच

अथ रामः सीताया तु लक्ष्मणेन समन्वितः । ययौ स दण्डकारण्यं सज्जं कृत्वा मनद्वन्द्वुः ॥ १ ॥
 अग्रे ययौ स्वयं रामस्तत्पृष्ठे जानकी ययौ । तस्याः पृष्ठ स सामित्रिययौ धृतशरासनः ॥ २ ॥
 वने दृष्ट्याऽथ कासारं स्नात्वा पीत्वा जलं सुखम् । भुक्त्वा फलानि पक्कानि तस्युस्तत्र क्षणं त्रयः ॥ ३ ॥
 एतस्मिन्नंतरे तत्र विराघ नाम राक्षसम् । ते तं दद्युरायांतं महासत्त्वं भयानकम् ॥ ४ ॥
 करालदंष्ट्रावदनं भोषयतं स्वगर्जितः । वामासन्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम् ॥ ५ ॥
 भक्षयतं गजं व्याघ्रं महिषं वनगोचरम् । ज्यारोपित धनुधृत्वा रामो लक्ष्मणमन्वीत् ॥ ६ ॥

दिये ॥ १२३ ॥ अत्रि कृष्णिको नमस्कार करनेके बाद उनसे सम्मानित होकर वे वहाँ तीन दिन ठहरे । अत्रिके कहनेसे सीता कुटीमें रित्यत अनसूयाके पास गयी ॥ १२४ ॥ नमस्कार करनेपर उन्होंने सीताका आलिङ्गन किया और सीता उनकी गोदमें बैठ गयी । पश्चात् अनसूयाने उनका आदर-सत्कार करके पूजन किया ॥ १२५ ॥ तदनन्तर विश्वकर्मके बनाये दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ सूक्ष्म वस्त्र प्रेम तथा भक्तिपूर्वक सीताको दिये ॥ १२६ ॥ अत्रिकी प्रिया अनसूयाने सीताका महावर आदि रङ्ग भी अङ्गोंमें लगानेके लिए दिये और कहा— हे जनकात्मजे । यह रङ्ग तुम्हारे अङ्गोंपरसे कभी नहीं उतरेगा ॥ १२७ ॥ हे जानकी ! पातिव्रत घर्मंको निभातो हुई तुम रामकी अनुगामिनी बनो । यथासमय राम तुम्हारे तथा भाई लक्ष्मणके साथ सकुशल घर लौट जायेंगे ॥ १२८ ॥ तब अत्रिने सीता सहित रामकी यथोचित भोजन कराकर विदा किया । राम भी नमस्कार करके चल दिये ॥ १२९ ॥ इस तरह रामको सीता तथा भाईके सहित सुखपूर्वक पर्वतोंपर निवास करते हुए एक वर्ष बीत गया ॥ १३० ॥ हे गिरींद्रजे ! अयोध्यापुरीमें रामने जो काम किया था, वह सब भैंने तुम्हारे सामने कह मूनाया ॥ १३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे अयोध्याचरित्रे २० रामते जपाण्डेयकृतं उपोत्त्वा भाषाटीकायां दण्डकवनप्रवेशो नाम वष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

शिवजी बोले—हे गिरजे ! इसके बाद राम बड़े भारी सज्जोंकृत धनुषको हाथमें लेकर सीता तथा लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें गये ॥ १ ॥ आगे आगे स्वयं राम, पीछे सीता और उनके पीछे हाथमें धनुष धारण करके लक्ष्मण चले ॥ २ ॥ वनमें एक सरोवर देखा तो सुखपूर्वक स्नान करके जल पिया और पके फलोंको खाकर क्षणभर तीनोंने वहाँ विश्राम किया ॥ ३ ॥ इतनेहीमें उन्होंने अपनी ओर आते हुए बड़े भयानक विराघ नामके राक्षसको देखा ॥ ४ ॥ वह अपने विकराल दीतवाले मुखको फैला तथा भयानक गर्जन करता हुआ उन लोगोंको डराने लगा । उसने अपने भालेकी नोकमें बींधकर वहूतसे मनुष्योंको धारण कर रखा था । वह वनचर व्याघ्र, हाथी और महिष आदिको भी मार-मारकर खा रहा था । यह देख राम

रक्ष त्वं जानकीमत्र संहनिष्यामि राक्षसम् । स तु द्वया रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा ॥७॥
 कौ युवामिति तौ प्राह ततो रामस्तमव्रीत् । नामकर्म निजं सर्वं कैकेय्याऽपि च यत्कृतम् ॥८॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा विहस्य राक्षसोऽब्रवीत् । मां जानासि त्वं राम विराघं लोकविश्रुतम् ॥९॥
 मङ्ग्यान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गताः । यदि जीवितुमिच्छास्ति त्यक्त्वा सीतां निरायुधां १०॥
 पलायेतां न चेच्छीवं भक्षयामि युवामहम् । इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामादातुमभिदुदुवे ॥११॥
 रामश्चिन्छेद तद्वाहू शरेण प्रहसन्निव । ततः क्रोधपरोतात्मा व्यादाय विकटं मुखम् ॥१२॥
 राममध्यद्रवद्रामश्चिन्छेद परिधावृतः । पदद्वयं तदा सर्वं इवास्येन ययौ पुनः ॥१३॥
 ततोऽर्धचंद्राकारेण निहतो राघवेण सः । ततः सीता समालिङ्ग्य प्रशशंस रघूतमम् ॥१४॥
 देवदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणेरिताः । ततो विराघकायात् पुरुषथ विनिर्गतः ॥१५॥
 नत्वा रामं निजं वृत्तं कथयामास सादरम् । दुर्वाससाऽहं शस्तु पुरा विद्याधरः शुभः ॥१६॥
 इदानीं मोचितः शापात्त्वया कालांतराद्वने । इत्युक्त्वा राघवं स्तुत्वा विमानेन ययौ दिवम् ॥१७॥
 विराघे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सीतया । जगाम शरभंगस्य वनं सर्वसुखावहम् ॥१८॥
 शरभंगं ततो नत्वा तेन सम्मानितो वहु । तस्थौ तत्र निशामेकां शरभंगो मुनीङ्गवः ॥१९॥
 तस्मै समर्थ्य स्वं पुण्यमारुरोह चिन्ति तदा । स्तुत्वा तं स विमानेन वैकुण्ठं परमं ययौ ॥२०॥
 ततः शनैः सुतीक्ष्णस्य ययावाश्रममुत्तमम् । नत्वा तं पूजितस्तेन सुखं तस्थौ रघूद्रहः ॥२१॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र नानाश्रमनिवासिनः । मुनयो राघवं द्रष्टुं समाजम्भुः सहस्रशः ॥२२॥
 सर्वे ते राघवं नत्वा स्तुत्वा निन्युनिंजं निजम् । आश्रमं सीतया भ्रात्रा चक्रः पूजां सविस्तराम् ॥२३॥

घनुषपर ढोरी चढ़ाकर लक्ष्मणसे बोले-॥५॥ ६॥ हे लक्ष्मण ! तुम यहाँ जानकीको रक्षा करो । मैं इस दुष्ट राक्षसको मारूँगा । वह राक्षस रमापति राम, लक्ष्मण तथा जानकीको देखकर बोला—तुम कौन हो ? तब रामने अपना नाम, काम तथा कैकेयीका कृत्य सब कुछ कह सुनाया ॥७॥ ८॥ रामके बचनको सुनकर राक्षस हैंसा और कहने लगा—हे राम । क्या तू लोकविख्यात विराघको नहीं जानता ? ॥९॥ मेरे ही डरसे सब मुनि इस वनको छोड़कर भाग गये हैं । यदि तुम दोनों जीना चाहते हो तो सीता तथा शस्त्रको छोड़कर भाग जाओ । नहीं तो तुम दोनोंको मैं अभी खा जाऊँगा । इतना कहकर वह राक्षस सीताको पकड़ने दौड़ा ॥१०॥ ११॥ तब हैसते हुए रामने उसके दोनों हाथोंको अपने बाणसे काट दिया । तब विराघ कुछ हो तथा विकट मुख फैलाकर रामकी ओर दौड़ा । तब रामने अति बेगसे दौड़कर उसके दोनों पाँवोंको भा काट डाला । फिर वह सर्वंकी तरह मुखसे खानेके लिये झपटा ॥१२॥ १३॥ तब रामने अपने अद्वचन्द्राकार बाणसे उनके सिरको भी काट डाला और वह मर गया । यह देख सीता रामका आलिङ्गन करके उनकी प्रशंसा करने लगी ॥१४॥ तभी आकाशमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे । पश्चात् विराघके शरीरसे एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ ॥१५॥ वह रामको प्रणाम करके बड़े आदरसे अपनी कहानी सुनाते हुए कहने लगा—पूर्वं समयमें मैं एक सुन्दर विद्याधर था, परन्तु दुर्वासा ऋषिने मुझको शाप देकर इस दशाको प्राप्त करा दिया ॥१६॥ आज वहुत कालके बाद आपने मुझको उस शापसे युक्त किया है । यह कह और रामकी रतुति करके वह विमानमें बंठकर स्वर्ग चला गया ॥१७॥ विराघके चले जानेपर राम लक्ष्मण तथा सीताके साथ सर्वसुखदायक शरभंग मुनिके बनमें पधारे ॥१८॥ उनको नमस्कार करके तथा उनसे सम्मानित होकर वे एक रात्रि वहाँ ठहरे । मुनिश्वेष शरभंगने अपना सब पुण्य उनके चरणोंमें समर्पण करके रामके सामने ही चितामें प्रवेश किया और उनकी स्तुति करके विमानपर बंठकर दिव्य रूपसे वैकुण्ठ धामको चले गये ॥१९॥ २०॥ वहाँसे रामने सुतीक्ष्ण मुनिके सुन्दर बाश्रमकी ओर प्रवाण किया । वहाँ पहुँचनेपर रामने मुनिको नमस्कार किया । मुनिने उनका बहुत सत्कार करके अपने यहाँ ठहराया ॥२१॥ वहाँ श्रीरामके दर्शनार्थ विविध आश्रमोंसे हजारों मुनि आते थे ॥२२॥ वे सब सीता तथा लक्ष्मणके सहित रामको नमस्कारकर और उनकी स्तुति करके उन्हें अपने-अपने आश्रममें ले

एकरात्रं त्रिरात्रं वा पञ्च सप्त दिनानि वा । पक्षमात्रं तु मासं वा सार्थमासमथापि वा ॥२४॥
 त्रिमासान्पञ्चमासं वा पष्टाएँकादशाथवा । सायं संवत्सरं वापि स्वाश्रमेषु रघूत्तमम् ॥२५॥
 संस्थाप्य चक्रुरातिथ्यमधिकं चोत्तरोत्तरम् । पत्न्याऽनुजेन श्रीराममेवं पूज्य विसर्जयन् ॥२६॥
 अभ्रमत्वं हि रामेण नव वर्णणि दंडके । आश्रमेषु मुनीनां च ह्यतिक्रांतानि वै सुखम् ॥२७॥
 वहवो निहतास्तत्र राक्षसा अभ्रता तदा । राघवेण मह भ्रात्रा क्रीडताऽवनिकन्यया ॥२८॥
 नानाश्रमारामपृष्ठवनोपवनभूमिषु । नदीजलतटाकाद्रिशिखरादिस्थलेष्वपि ॥२९॥
 जंब्वाग्रं भाद्राक्षादिनानावृक्षलतेषु हि । चकार सीतया क्रीडां रामो देव्या यथा शिवः ॥३०॥
 अथ रामो ययौ कुम्भसंभवस्यानुजाश्रमम् । सुमतिः पूजयामास राघवं सीतयान्वितम् ॥३१॥
 ततः सीतायुतो गमः शनैर्भ्रात्रा मुदान्वितः । अगस्तेराश्रमं प्राप नानावृक्षविराजितम् ॥३२॥
 प्रत्युद्गम्य मुनिश्चापि मुनिभिर्वृद्धभिर्वृतः । राघवं तं समालिङ्ग्य स्वाश्रमं तेन सो ययौ ॥३३॥
 अथ तं पूजयामास राघवं कुम्भसंभवः । रामोऽपि मानितस्तेन तस्यौ तत्र कियदिनम् ॥३४॥
 ततः स्तुत्वा रमानाथमगस्त्यो मुनिसत्तमः । ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थं स्थापितं पुरा ॥३५॥
 अक्षययौ वाणतूणीरौ खड्गं रत्नविभृपितम् । ततो रामो मुनेर्वाक्पाद्वौतम्या उत्तरे तटे ॥३६॥
 ययौ पञ्चवटीं रम्यां मागेह दृष्टाऽथ पक्षिणम् । जटायुषं नगाकारमरुणात्मजमुत्तमम् ॥३७॥
 सखायं स्वपितुश्चापि संभाष्याथ विवेश तम् । तत्र कृत्वा महाशालां यथा पूर्वं कृता गिरौ ॥३८॥
 मृगमांसैर्वलिं दत्त्वा तस्यौ गमो यथासुखम् । सीतां संरक्षयामास जटायुः पक्षिराट् स्वयम् ॥३९॥
 राघवस्य पञ्चवटयां सीतया क्रीडतः सुखम् । सार्थ व्रीणि वत्सराणि ह्यतिक्रांतानि पार्वति ॥४०॥
 वने शूर्पणखापुत्रं तपंतं सांवनामकम् । ब्रह्मा ददौ दिव्यखड्गं तं सांचो न ददर्श सः ॥४१॥
 तदूधृत्वा लक्षणः खड्गं वृक्षान्वल्लीर्वभंज सः । वृक्षगुल्मे हतः सांवस्ततो राघवमवीत् ॥४२॥

जाते और विघिवत् पूजा करते थे ॥ २३ ॥ वे एक-दो दिन, पांच-सात मास अथवा पूरे वर्ष भर अपने आश्रममें रखकर रघूत्तम रामका प्रतिदिन अधिकाविक प्रेमसे आतिथ्य करते और अन्तमें पली तथा भाईके सहित रामका पूजन वरके विदा करते थे ॥ २४ - २६ ॥ इस तरह मुनियोंके आश्रमोंमें धूम-फिरकर रामने सुखमें नौ वर्ष बिता दिये ॥ २७ ॥ वहाँ भाई लक्षणके साथ भ्रमण करते हुए रामने बहुतसे राक्षसोंको मार डाला ॥ २८ ॥ रामने अनेक आश्रमोंमें, वागोंमें, पुष्प भरे बनोंमें, नदीके जलमें, तालाबोंमें, पर्वतके शिखर आदि स्थलोंमें, जामुन, आम, केला, दाल आदि अनेक वृक्षों तथा लताकुञ्जोंमें सीताके साथ शिव-पार्वतीकी तरह क्रीड़ा की ॥ २९ ॥ ३० ॥ तत्पश्चात् राम कुम्भज कृपिके छोटे भाई मार्कण्ड मुनिके आश्रमपर गये । उन बुद्धिमान मुनिने भी सीतासहित रामकी पूजा की ॥ ३१ ॥ वहाँसे चलकर सीता तथा भाईके साथ राम विविध वृक्षोंसे मंडित अगस्त्य मुनिके आश्रमपर गये ॥ ३२ ॥ वहाँ मुनि अगस्त्य अन्य मुनियों और ब्रह्मचारियोंसे साथ आगे आये और रामका आलिङ्गन करके आश्रममें ले गये ॥ ३३ ॥ उन्होंने रामकी विघिवत् पूजा की । उनसे पूजित होकर रामने वहाँ कुछ दिन निवास किया ॥ ३४ ॥ मुनिश्चेष्ट अगस्त्यने रामकी प्रशंसा की और इन्द्रके द्वारा प्रदत्त तथा उनके लिये पहिलेसे ही रक्खा हुआ धनुष रामको दिया ॥ ३५ ॥ अक्षय वाणवाले दो तूणीर (तरकस) तथा रत्नजटित तलवार दी । पश्चात् रामने मुनिके कथनानुसार गीतमी नदीके उत्तरी किनारेपर स्थित रमणीक पञ्चवटीकी ओर प्रस्थान किया । रास्तेमें उनको पर्वताकार अरुणपुत्र एवं उनके पिताका श्रेष्ठ मित्र जटायु नामका पक्षी मिला । उससे सम्भाषण करके बनमें आगे बढ़े । चित्रकूटको तरह वहाँसर भी उन्होंने पर्णकुटी बनवायी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ मृगोंके मांसकी बलि देकर राम आनन्दसे रहने लगे । पक्षिराज जटायु स्वयं सीताकी रक्खा करने लगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे पार्वती ! पञ्चवटीमें रामको सीताके साथ क्रीड़ा करते हुए साढ़े तीन वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४० ॥ उस बनमें सूर्पणखाका पुत्र साम्ब तप करता था । यह देखकर अद्याने एक दिव्य खड्ग उसे दिया, पर इस बातका साम्बको पता नहीं लगा ॥ ४१ ॥ बब लक्षणने

प्रायश्चित्तं ब्रह्महणं मां वद त्वं रघृत्तम् । रामोऽप्याह हतः सांबो राक्षसो न मुनिर्हतः ॥४३॥
 तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणस्तुष्टः सांबमात्रापि तच्छ्रुतम् । तत्स्मरंती पुत्रदुःखं राक्षसी कामरूपिणी ॥४४॥
 विचचार शूर्पणखा नाम्नी च सर्वधातिनी । एकदा पंचवट्यां सा रामं दृष्टाऽथ राक्षसी ॥४५॥
 पुत्रदुःखसमाकांता धृत्वा रूपं मनोहरम् । कापव्यवुदया श्रीरामं सानुजं हंतुमुद्यता ॥४६॥
 उवाच मधुरं वाक्यं वस्त्रालंकारमेडिता । कौयुवां का त्वियं रम्या किमर्थमागता वनम् ॥४७॥
 कुतः समागतावत्र ववाधुना गच्छतः पुरः । तत्स्या वचनं श्रुत्वा रामः सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥
 ततः सा राघवं प्राह भव भर्ता मम प्रभो । सोऽप्याह दयिता मेऽस्ति वहिस्तिष्ठति लक्ष्मणः ॥४९॥
 प्रार्थयामास सौमित्रिं सा तं सोऽप्युत्तरं ददौ । अहं दासोऽस्मि रामस्य त्वं तु दासी भविष्यसि ॥५०॥
 ततः क्रोधेन सा सीतां धर्तुं वेगेन दुदुवे । तदा तां राघवः प्राह ममायं शर उत्तमः ॥५१॥
 चिह्नार्थं लक्ष्मणाय त्वं नीत्वा दर्शय वेगतः । मद्राणदशेनात्कार्यं सिद्धिं नेष्यति लक्ष्मणः ॥५२॥
 इत्युक्त्वा राघवो वाणं ददौ तम्यै चुरोपमम् । सत्यं मत्वा रामवाक्यं सा ययौ लक्ष्मणं पुनः ॥५३॥
 लक्ष्मणाय रामवाणं दर्शय मास राक्षसी । स बुद्ध्वा हृदत वंधोस्तं संघाय शरासने ॥५४॥
 मुमोच वाणं वेगेन रामनाम्नांकितं शुभम् । स शरो राक्षसीं गत्वा ग्राणकणौषुहङ्कारान् ॥५५॥
 संछित्वा रामतृणीरं विवेश क्षणमात्रतः । ग्राणकणौषुहङ्कारातरहिता साऽपि राक्षसी ॥५६॥
 हा हतास्मीति जल्पती ययौ बंधून्खरादिकान् । दृष्टा स्वसां तादृशीं ते त्रिशिरःखरदूषणाः ॥५७॥
 तन्मुखात्सकलं वृत्तं श्रुत्वा ते क्रोधसंयुताः । चतुर्दश महाघोरान् राक्षसान्व्रेष्यं स्तदा ॥५८॥

उस खड़गको लेकर उस घने बनके सब वृक्षों और लताओंको काट डाला । उस वृक्षपुंजके साथ साम्ब भी मारा गया । यह देखकर लक्ष्मण रामसे कहने लगे—॥४२॥ हे रघुराज ! आप मुझे ब्रह्महत्यानिवारक कोई प्रायश्चित्त बतायें । तब रामने कहा - तुमने तो साम्ब नामके राक्षसको मारा है, न कि मुनिको ॥४३॥ ४४॥ यह सुनकर लक्ष्मण प्रसन्न हुए । उधर यथेच्छ रूप धारण करनेवाली साम्बकी माता सूर्पणखा राक्षसीने जब यह सुना तो पुक्षमरणके दुःखसे दुःखित होकर बारम्बार पुत्रका स्मरण करती हुई क्रोधसे सबको मार डालने-की इच्छासे इघर-उघर विचरने लगी । एक दिन पंचवटीमें रामको देखकर वह राक्षसी पुत्रदुःखसे व्याकुल हो उठी और मनोहर रूप धारण करके सीता-लक्ष्मण सहित रामको मारनेके लिए उद्यत हो गयी ॥४५॥ ४६॥ वह वस्त्र तथा अलंकारसे सजकर उनके पास जा पहुंचो और इस प्रकार मधुर वचन कहने लगी-तुम दोनों तथा यह सुन्दरी स्त्री कीन है और यहाँ बनमें तुम सब किस लिए आये हो ? ॥४७॥ कहाँसे आ रहे हो और अब आगे कहाँ जानेका विचार है ? उसके प्रश्न सुनकर रामने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥४८॥ तब वह बोली-हे प्रभो ! कृपा करके आप मेरे पति बनें । उत्तरमें रामने कहा कि मेरे पास तो यह मेरी प्रिय पत्नी विद्यमान है । इसलिए तुम बाहर खड़े मेरे छोटे भाई लक्ष्मणके पास जाओ ॥४९॥ रामके कथनानुसार सूर्पणखाने बाहर जाकर लक्ष्मणसे अपनी इच्छा प्रकट की । लक्ष्मणने कहा कि मैं तो रामका दास हूँ । तुम मेरी स्त्री बनकर वया करोगी । मेरे साथ तुम्हें भी दासी बनना पड़ेगा ॥५०॥ यह सुनकर सूर्पणखा क्रोधसे लाल हो गयी और सीताको पकड़नेके लिए बड़े वेगसे झटपटी । रामने उसे रोककर कहा कि यह मेरा सुन्दर वाण पहचानके लिए ले जाकर लक्ष्मणको दिखाओ । मेरे वाणको देखते ही लक्ष्मण तुम्हारी इच्छा पूरी कर देगा ॥५१॥ ५२॥ यह कहकर रामने छुरेके समान तीक्ष्ण एक वाण उसको दिया । रामकी बातको सत्य समझ वह राक्षसी वाण लेकर फिर लक्ष्मणके पास गयी ॥५३॥ वहाँ जाकर उसने लक्ष्मणको रामका वाण दे दिया । लक्ष्मण बड़े भाईका अभिप्राय समझ गये और बनुयपर चढ़ाकर रामनामसे अंकित उस शुभ वाणको छोड़ दिया । वह वाण राक्षसोंके पास गया और उसके नाक, कान, ओंठ तथा स्तनोंको काटकर पुनः क्षण भरमें रामकी तरकसमें लौट गया । कान, नाक, ओंठ तथा स्तनोंसे रहित वह राक्षसी ॥५४-५६॥ ‘हाय मैं मारी गयी’ इस प्रकार चिल्लाती हुई खरदूषण आदि अपने भाइयोंके पास जा पहुंची । वहिनकी यह

तान् रामः क्षणमात्रेण चतुर्दशशर्यम् । संप्रदर्श्य निजं लोकं प्रेषयामास लीलया ॥५९॥
 तान् राक्षसान् मृत्वा खराद्यास्ते त्रयः क्रुधा । युद्धाय निर्यवुः सैन्यैः सहस्रैश्च चतुर्दश ॥६०॥
 रामोऽपि वंधुं सीतां च गुहायां स्थाप्य वेगतः । चकार राक्षसैर्युद्दं शस्त्ररख्यावहम् ॥६१॥
 चतुर्दशसहस्राणि स्वीयरूपाणि राघवः । कृत्वा तेषां च पुरतः शरैस्तान्मर्दयत्क्षणात् ॥६२॥
 हत्वा खरं दूषणं च तथा त्रिशिरम् शरैः । चतुर्दशसहस्रांस्तान्प्रेषयामास स्वं पदम् ॥६३॥
 मुहूर्तेन तु रामेण महस्त्राणि चतुर्दश । मिता सेना खराद्यैश्च निहता गौतमीतटे ॥६४॥
 खराद्याः कंटका यत्र स्थितास्तत्र त्रिकंटकम् । क्षेत्रं रूपातं त्र्यंबकाख्यं तदेव प्रोच्यते भुवि ॥६५॥
 जनस्थानं भृसुराणां ददौ वस्तुं रघूद्वहः । अथ सीता समालिङ्ग्य राघवं प्रशशंस सा ॥६६॥
 अथ तां जानकीं प्राह रामो रहसि सादरम् । सीते त्वं त्रिविधा भृत्वा रजोरूपा वसानले ॥६७॥
 वामांगे मे सत्त्वरूपा वस छाया तमोमयी । पञ्चवट्यां दशास्यस्य मोहनार्थं वसात्र वै ॥६८॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा सीता चकार सा । ततः सूर्पणखा लंकां गत्वा रावणप्रवीत् ॥६९॥
 धिक् त्वां राक्षसराजानं वृत्तं चार्नं वेत्सि यः । चतुर्दशसहस्रा सा सेना त्वद्वन्धुभिः सह ॥७०॥
 मानुषेणैव रामेण जनस्थाने निपातिता । तत्स्या वचनं श्रुत्वा तां नृष्टा तादृशीं तदा ॥७१॥
 मिहासनाच्च चालाय पुनः प्रचल्ल तां स्वसाम् । वद किं कारणं युद्धे प्राह सा राक्षसेश्वरम् ॥७२॥
 स्त्रीरत्ना जानकीं दृष्टा मया चित्ते विचित्तितम् । रावणार्थं विनेष्यामि धर्तुं तां तत्पुरोगता ॥७३॥
 तावद्वाणेन नीताऽहं दशामेतां तु रावण । सौमित्रिणा पञ्चवट्यामाज्ञया राघवस्य च ॥७४॥
 सांबोऽपि मे हतः पुत्रस्तप्यमानो निरर्थकम् । मत्तोपार्थं कृतं युद्धं वंधुभिस्ते निपातिताः ॥७५॥

दशा देखकर त्रिशिरा, खर और दूषणने उसके मुखसे सब समाचार सुनकर क्रोधयुक्त हो चौदह भयानक राक्षसोंको उसी समय रामसे लड़नेके लिये भेजा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब रामने चौदह बाणोंसे क्षणमात्रमें लीला-पूर्वक उनको मारकर अपने लोक भेज दिया ॥ ५९ ॥ उनके मारे जानेका समाचार सुनकर खर आदि तीनों राक्षस कुछ होकर चौदह हजार सैनिकोंके साथ युद्धके लिए निकल पड़े ॥ ६० ॥ राम भी सीता तथा लक्ष्मणको एक गुफामें रखकर शीघ्र अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करते हुए राक्षसोंके साथ भयानक युद्ध करने लगे ॥ ६१ ॥ उस समय राम अपने चौदह हजार रूप बनाकर उनके सामने गये और समरभूमिमें उन सबका मद मर्दन कर डाला ॥ ६२ ॥ उम्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा तथा चौदह हजार राक्षसोंको बाणोंसे मारकर अपने धाम भेज दिया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार मुहूर्तमात्रमें रामने चौदह हजार सैनिकों तथा खर आदिको गौतमी नदीके किनारे मार डाला ॥ ६४ ॥ जहाँ ये खर-दूषण-त्रिशिरा तीनों भाई कंटकरूपसे रहते थे । वह स्थान त्रिकंटक नामसे प्रसिद्ध था और उसीको लोग अथम्बक भी कहते थे ॥ ६५ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने वह स्थान त्रिकंटक (अथम्बक) ब्राह्मणोंको निवास करनेके लिए दान दे दिया । यह सब देखकर सीता रामका आलिंगन करके उनकी प्रशंसा करने लगी ॥ ६६ ॥ एक दिन राम एकान्तमें सीतासे सादर कहने लगे—हे सीत ! तुम तीन रूपोंको धारण करके रजोरूपसे अग्निमें, सत्त्वरूपसे छायाकी तरह मेरे वायं अगमें और तमोमयी वनकर रावणको मोहित करनेके लिये वहाँ पञ्चवटीमें निवास करो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ रामके उस वचनकी सुनकर सीताने वैसा ही किया । तभी सूर्पणखा लंकामें जाकर रावणसे बोली—॥ ६९ ॥ हे राक्षसराज ! तुम्हारे जैसे राजाको धिक्कार है, जो दूतोंके द्वारा तुम्हें राज्यकी दशा का पता नहीं लगता । चौदह हजार सेना सहित तुम्हारे भाईयोंको मनुष्यरूपबारी रामने दण्डकारण्यमें मारकर गिरा दिया । उसके इस वचनको सुन तथा उसकी वह दशा देख सिंहासनसे कुछ ऊँचे होकर वह अपनी बहितसे पूछने लगा कि युद्ध होनेका क्या कारण है, सो बतलाओ । तब वह राक्षसेश्वर राघवसे बोली—॥ ७०-७२ ॥ स्त्रियोंमें रत्न जानकीको देखकर मैंने निश्चय किया था कि इसको रावणके लिये ले जाऊँगी । यह विचारकर मैं इसको पकड़नेके लिये ज्ञानने गयी ॥ ७३ ॥ हे रावण ! इसनेहीमें एक बाणने मेरी यह दशा कर दी । रामके

यद्यस्ति पौरुषं किंचित्तद्विं सीतां ममानय । नोचेदधोमुखस्तिष्ठ यथा स्त्री गतभर्तुका ॥७६॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा सांत्वयामास तां स्वसाम् । तौ रामलक्ष्मणी हत्वा तब शोकाश्रुमार्जनम् ॥७७॥
 करोम्यहं लोहितेन तयोः खेदं भजस्व मा । एवं नानाविधैर्वाक्यैः सांत्वयित्वा स्वसां मुहुः ॥७८॥
 स्वहितस्योपदेष्टारं मातुलं तपसि स्थितम् । ययौ रथेन मारीचं तस्मै वृत्तं न्यवेदयत् ॥७९॥
 सोऽथ तं भीषयामास भागिनेयं मुहुर्मुहुः । विश्वामित्राध्वरे त्यक्तमात्मानं तं न्यवेदयत् ॥८०॥
 रामाख्यया रथं रत्नं रजतं रुक्मभूषितम् । श्रुत्वाऽत्र रादि यत्किंचिद्रामं मत्वा विभेष्यहम् ॥८१॥
 केन ते शिक्षिता बुद्धिरियं लंकाविद्यातिनी । आसरुपोऽस्ति कः शत्रुयेनेयं शिक्षिता मतिः ॥८२॥
 कथां न कुरु रामस्य तं दृश्वा त्वं मरिष्यसि । ततः क्रोधेन तं प्राह यदि नायासि राघवम् ॥८३॥
 मया तहि वधिष्यामि त्वामतः कुरु मदूचः । भृत्वा त्वं मृगरूपश्च रामस्त्वामनुयास्यति ॥८४॥
 त्वं शब्दं कुरु रामस्य लक्ष्मणस्तैन यास्यति । तरस्तां जानकीं वेगान्लङ्घां स्वामानयाम्यहम् ॥८५॥
 लंकायास्तव दास्यामि स्वीयराज्याद्वादरात् । इति तस्याग्रहं दृश्वा मारीचो हृदयचिंतयत् ॥८६॥
 रामदस्तान्मृतिः श्रेष्ठा माऽस्तु रावणहस्ततः । इति निश्चित्य मारीचस्तथेत्युक्त्वा ययौ तदा ॥८७॥
 रावणेन रथे स्थित्वा गत्वा पञ्चवटीं प्रति । भृत्वा हेममयश्चित्रो मोहयामास जानकीम् ॥८८॥
 सा छाया तामसी दृश्वा मृगं राघवमन्त्रवीत् । क्रीडार्थं मां मृगं चेमं वृत्वा देहि रघृत्तम् ॥८९॥
 मृगश्चेद्राणभिन्नांगः करोमि कंचुकीं त्वचः । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा सर्वं रघृत्तमः ॥९०॥

कहनेसे लक्ष्मणने पञ्चवटीमें मेरी यह दणा की है ॥ ७४ ॥ उन्होंने बिना किसी कारण तपस्या करते हुए मेरे प्राण-प्रिय पुत्र साम्बको भी मार डाला । तब मुझे संतुष्ट करनेके लिए खर-दूषणादि भाइयोंने रामके साथ युद्ध किया । किन्तु उसने उन्हें भी मार डाला ॥ ७५ ॥ यदि तेरेमें कुछ भी बल हो तो सीताका हृषण कर, नहीं तो पतिके मर जानेपर विधवा स्त्रीकी तरह नीचा मुँह करके बैठा रह ॥ ७६ ॥ उसके वचन सुनकर रावण अपनी बहिनको समझाने लगा और बोला कि मैं राम-लक्ष्मणको मारकर उनके खूनसे तुम्हारे शोकाश्रुका माज़ैन करूँगा—तुम दुखी न होओ । इस प्रकार अनेक बाक्योंसे उसने भगिनीको बार-बार समझाया ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ पञ्चात् रथपर बैठकर वह हितका उपदेश करनेवाले तथा तपसे स्थित अपने मामा मारीचके पास गया और उसे सब हाल कह सुनाया ॥ ७९ ॥ तब मारीच अपने भाजे रावणको बार-बार डराता हुआ बोला कि रामने मुझे विश्वामित्रके घजके समय बाणसे उठाकर समुद्रके किनारे फेंक दिया था ॥ ८० ॥ तभीसे मैं रथ, रत्न, रजत (चांदी), रुक्म (सोना) तथा रमणी आदि नामोंके रकार अक्षर सुनने मात्रसे ही डर जाता हूँ (अर्थात् रामके भयसे मैंने इन सब चीजोंसे प्रेम करना भी छोड़ दिया है) ॥ ८१ ॥ लंकाका नाश करनेवाली यह मंत्रणा तुमको किसने दी है ? वह मित्ररूपमें छिपा हुआ तुम्हारा शत्रु ही है, जिसने तुमको यह मति दी है ॥ ८२ ॥ उसकी बात मत मनो, नहीं तो मारे जाओगे । वह सुना तो कुद्द होकर रावण मारीचसे बोला—यदि तुम रामके पास नहीं जाओगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा । इसलिये मेरा कहा मान लो । तुम मृग बनकर जब रामके पास जाओगे तो राम तुम्हारे पीछे चल देंगे । बनमें दूर ले जाकर तुम रामके जैसा स्वर बनाकर “हा लक्ष्मण” ऐसा चिल्लाना । तब लक्ष्मण भी आश्रम छोड़कर तुम्हारी ओर चल देंगे । उस समय मैं शोध सीताको अपनी लंकामें उठा लाऊँगा ॥ ८३—८५ ॥ यदि मेरा कार्य सिद्ध हो जायगा तो मैं तुमको लंकाका आधा राज्य दे दूँगा । उसके आग्रहको सुनकर मारीचने मनमें विचार किया कि रावणके हाथसे मरनेकी अपेक्षा रामके हाथसे मरना अच्छा है । यह निश्चय करके मारीच ‘बहुत अच्छा’ कह तथा रथपर सवार होकर रावणके साथ पञ्चवटीको उसी समय चल पड़ा । वहाँ जाकर उसने सुवर्णका मृग बनकर सीताको मोहित कर लिया ॥ ८६—८८ ॥ तब तमोगुणमयी छायारूपिणी सीता मृगको देखकर रामसे बोलीं—हे रघृत्तम राम ! इस मृगको पकड़कर मुझे दे दो । मैं उसके साथ क्रीड़ा करूँगी ॥ ८९ ॥ और यदि बाणसे मारकर ला दो तो मैं उसके चमड़ीकी चोली बनाऊँगी । सीताके वचन सुन तथा कुछ सोच-समझकर रघृत्तम राम सीताकी रक्षाके लिये भाई लक्ष्मणको

सीताया रक्षणे वंधुं संस्थाप्याशु मृगं ययौ । ततः पलायनं चक्रे मृगो रामं विकर्षयन् ॥९१॥
 रामवाणेन भिन्नांगः शब्दं दीर्घं चकार सः । हा सौमित्रे समागच्छ हा हतोऽस्म्यद्व कानने ॥९२॥
 इत्युक्त्वा रामवद्वाचा ममार रुधिरं वमन् । तं शब्दं जानकी श्रुत्वा चोदयामाम लक्ष्मणम् ॥९३॥
 सौभित्याह रामवचनं नेदं सीते भयं त्यज । ततः सा तं पुनः प्राह जानामि तव चेष्टितम् ॥९४॥
 भरतस्योपदेशेन मृतिं रामस्य वाञ्छसि । अथवा मेऽभिलापोस्ति तहिं प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥९५॥
 तत्क्रूरवचनं तस्याः श्रुत्वा जात्वा महद्भयम् । जानकीं प्राह सौमित्रिमातिः शृणु वचो मम ॥९६॥
 राघवाजां पुरस्कृत्य रक्षतस्त्वां मम त्वया । ताडितं वाक्शरेणाद्य भोक्ष्यस्यस्याचिरात्कलम् ॥९७॥
 तथापि शृणु मद्वाक्यं यन्मयाऽत्रोच्यते हितम् । मर्यैतां धनुषो रेखां कृतां त्वत्परितोऽधुना ॥९८॥
 त्वद्रक्षणार्थं दुष्टानां दुर्विलंघ्यां महत्तमाम् । मा त्वमुल्लंघयस्वेमां प्राणैः कंठगतैरपि ॥९९॥
 इत्युक्त्वा धनुपः कोश्या कृत्वा रेखां समंततः । व्रात्यदेशे पंचवट्याः सौमित्रिः परिधोपमाम् ॥१००॥
 नत्वा सीतां ततस्तूष्णीं ययौ रामं त्वरान्वितः । एतस्मिन्नंतरे तत्र रावणो भिक्षुरूपधृक् ॥१०१॥
 गन्वा पंचवटीद्वारं रेखायाश्च वहिः स्थितः । नारायणेति वै चोक्त्वा तूष्णीं तस्थौ स रावणः ॥१०२॥
 तावच्छायामयी सीता भिक्षां तस्मै समर्पितुम् । ययौ द्वारं दीर्घहस्ता गृह्णीष्वेत्यब्रवीच तम् ॥१०३॥
 तदा भिक्षुः पुनः प्राह सीतां पंकजलोचनाम् । नार्गीकरोम्यंतरेण भिक्षामेतां त्वयाऽपिताम् ॥१०४॥
 गार्हस्थयं चेद्राघवस्य रक्षितुं त्वं समिच्छसि । तहिं रेखां समुल्लंघ्य मां भिक्षां दातुमर्हसि ॥१०५॥
 तद्विक्षुवचनं श्रुत्वाऽवमोऽभून्मेति शंकिता । रेखावहिः सव्यपादं दत्त्वा दीर्घलस्त्करा ॥१०६॥
 गृह्णीष्वेमां वरां भिक्षामिति तं प्राह जानकी । ततो दशास्यस्तां धृत्वा भिक्षुरूपं विसृज्य च ॥१०७॥
 खरवाहे रथे सीतां संस्थाप्याथ न्यवर्तत । यावद्दृच्छति वेगेन तावद्दृष्टो जटायुषा ॥१०८॥

नियुक्त करके शोध्रं मृगके पीछे चल दिये । हरिण भी रामके आगे दौड़ता हुआ उन्हें बहुत दूर जंगलमें दौड़ा ले गया ॥१०॥११॥ वहाँ वाणसे वायल होकर वह जोरसे रामके स्वरमें चिल्लाने लगा—‘हा लक्ष्मण ! मैं बनम मारा गया, शोध्र आओ’ ॥१२॥ इतना कहकर मारीच रक्त वमन करता हुआ मर गया । उस शब्दको सुनकर जानकीने लक्ष्मणको जानेके लिये कहा ॥१३॥ लक्ष्मण बोले—हे सीति ! यह रामका वाक्य नहीं है, मत डरो । सीता फिर कहने लगीं कि मैं अब तुम्हारे अभिप्रायको जान गयी ॥१४॥ तुम भरतके कहनेके अनुसार रामका मरण अथवा रामके मर जानेपर भुजे भोगना चाहते हो । परन्तु याद रखो, मैं तुम्हारी अभिलापा पूरी नहीं होने दूँगी और अभी मर जाऊँगी ॥१५॥ सीताके इस वचनको सुनकर सुमित्रापुत्र लक्ष्मण जानकासे बोल—हे माता ! मेरी बात सुनो ॥१६॥ रामकी आजासे तुम्हारी रक्षामें तत्पर पुक्षको तुमने जो बाणीस्त्री वाणीसे ताडित किया है, उसका फल तुम शोध्र पाओगो ॥१७॥ तो भी मेरे कहे हुए इस हितकारी वचनको नुन लो । मैं धनुषसे तुम्हारे चारों ओर यह रेखा खीचे देता हूँ ॥१८॥ यह तुम्हारी रक्षाके लिए और दुष्टोंके लिये दुलंघनीय तथा महान् भय उत्पन्न करनेवाली होगी । प्राणोंके कण्ठमें आ जानेपर भी तुम इस रेखाका उल्लंघन नहीं करना ॥१९॥ ऐसा कहकर धनुषकी कोरसे लक्ष्मणने पंचवटीके बाहर खाइकी भाँति सीताकी चारों ओर रेखा खीच दी ॥२०॥ तदनन्तर सीताको प्रणाम करके चुपचाप शोध्र रामकी ओर चल दिये । इसी समय रावण भिक्षुकका रूप धारण करके पंचवटीके द्वारपर जाकर रेखाके बाहर खड़ा हो गया और “नारायणहरि” कहकर चूप हो रहा ॥२१॥२२॥ तब छायामयी सीता उसको भिक्षा देनेके लिये बाहर आयी और हाथ बड़ाकर भिक्षुसे ‘भिक्षा लो’ ऐसा कहा ॥२३॥ तब कमलके समान नेत्रोंवाली सीतासे भिक्षुने कहा कि मैं रेखाके भीतरसे बैंधी हूँ भीख नहीं लेता ॥२४॥ यदि तुम रामके गृहस्थाश्रमकी रक्षा करता चाहती होओ तो रेखाके बाहर आकर भिक्षा दो ॥२५॥ भिक्षुके इस वचनको सुनकर ‘कहीं पाप न लगे’ इस शंकासे वायें पावंको रेखासे बाहर रख और लम्बा हाथ करके ॥२६॥ जानकी ‘यह भिक्षा लो’ ऐसा बोलीं । तभी रावणने उनको पकड़ लिया और भिक्षुका रूप त्याग तथा सीताको गब्बोंके रथपर बिठालकर पीछे

चकार तुमुलं युद्धं रावणेन स पक्षिगट् । निजपञ्चयां मुखेनाश चूणीकृत्य रथोच्चमम् ॥१०९॥
 स्वरानश्टौ विनिपिष्य वभंज तद्वर्तुमहत् । मुकुटान् दश संछिद्य कृत्वा देहं तु जर्जरम् ॥११०॥
 मूर्छितं रावणं कृत्वा तां सीतां संन्यवर्तयत् । स्वस्थाभृतो दशास्योऽपि ताडयामास तं पदा ॥१११॥
 क्रोधेन महताविष्टः पक्षिणा जर्जरीकृतः । ततो जटायुः पतितो वमन् रक्तं मुखेन सः ॥११२॥
 ततो विहायसा सीतां निनाय रावणः पुनः । रामरामेति जलपंती सीताऽभून्न्यस्तलोचना ॥११३॥
 उत्तरीये वचनाथ पथि स्वाभरणानि सा । दृष्टाऽथः पर्वते प्रोच्चैः संस्थितान् पंच वानरान् ॥११४॥
 प्राक्षिपत्कपिमध्येऽथ सूचनार्थं रघूत्तमम् । ततो दशास्यस्तां नीत्वा श्वशोके संन्यवेशयत् ॥११५॥
 प्रार्थयामास तां सीतां नोत्तरं सा ददौ तदा । तस्याः संरक्षणार्थाय रक्षसीश सहस्रशः ॥११६॥
 आज्ञापयदशास्यः स स्वयं गेहं विवेश ह । तदेन्द्रो ब्रह्मवाक्येन पायसं वर्षतुष्टिदम् ॥११७॥
 ददौ रहसि सीतार्थं तेन तुष्टा वभूव सा । समर्प्य पायसं किंचिद्रामाय लक्ष्मणाय च ॥११८॥
 सुरानतिथये दत्त्वा दत्त्वा धेनुं च खेचरान् । दत्त्वाऽथ त्रिजटां किंचिद्भक्षयामास जानकी ॥११९॥
 समन्त्र्य रावणेनापि राक्षसांश्चैव षोडश । प्रेपिता रामधातार्थं ते कवचेन भक्षिताः ॥१२०॥
 यत्र यत्र पंचवटयां रामचाणभयान्मृगः । चचार गौतमीतीरे सम्मानं तत्र तत्र हि ॥१२१॥
 स्थानसंज्ञान्यनेकानि जातानि च पुगणि हि । मृगस्य पतितं यत्र नूपुर परिधावता ॥१२२॥
 नूपुराख्यो महाग्रामः प्रोक्ष्यते गौतमीतटे । रामचाणप्रहारेण चपलाक्षोऽपतद्धुवि ॥१२३॥
 मृगो यत्र महास्तत्र चापल्यग्राम इयते । गोदातटे ग्रावभूम्यां रामचाणहतो मृगः ॥१२४॥
 पतितो यत्र तच्चिह्नं दश्यतेऽद्यापि मानवैः । सौमित्रचापजा रेखा पंचवटयाः समन्ततः ॥१२५॥

लौटा । वह भागा जा रहा था, तभी जटायुने उसे देख लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ तब पक्षिराज जटायुने रावणके साथ तुमुल युद्ध किया । अपने पाँवों और चोचसे मार-मारकर उसके रथको चूर-चूर कर दिया ॥ १०९ ॥ आठों गदहोंको पौस डाला । उसका बड़ा भारी घनुष तोड़ दिया । मुकुटोंको काट डाला और उसके शरीरको जर्जरित कर दिया ॥ ११० ॥ इतना ही नहीं, रावणको मूर्छित करके वह सीताको लौटा लाने लगा । तभी रावण भी स्वस्थ होकर उसको पाँवसे मारने लगा ॥ १११ ॥ बड़ा क्रोध करके रावणने पक्षीको और पक्षीने रावणको जर्जर कर दिया । अन्तमें जटायु धायल होकर घरतीपर गिर पड़ा ॥ ११२ ॥ तब रावण सीताको लेकर आकाशमार्गसे लङ्घाकी ओर चल पड़ा । बेचारी सीता नीची आँखोंसे 'हा राम-हा राम' चिल्लाने लगी ॥ ११३ ॥ उसी समय उन्होंने नीचे एक उम्रत पर्वतके शिखरपर बैठे हुए पाँच वानर सुग्रीव-हनुमान् आदिको देखा और अपनी साढ़ीको फाढ़ तथा उसके दुकड़में अपने गहने बांधकर वहीं गिरा दिये । उधर दश-मुख रावणने सीताको ले जाकर लंकाकी अशोकवाटिकामें रखा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ प्रेम करनेके लिये उसने सातासे बड़ी प्राथंना की, परन्तु सीता किसी प्रकार सहमत नहीं हुई और न उसकी बातोंका कुछ उत्तर ही दिया । उनकी रक्षाके लिये रावणने वहीं हजारों राक्षसियें नियुक्त कर दीं ॥ ११६ ॥ उनकी रक्षा करनेकी आज्ञा देकर रावण अपने महलमें चला गया । इसी अवसरपर लङ्घाके कहनेसे इन्द्रने वहीं जाकर वर्षं भर तक भूखको मिटाकर सन्तुष्ट रखनेवाला पायस (खीर) एकान्तमें सीताको दिया । इससे सीता बड़ी प्रसन्न हुई । उन्होंने राम तथा लक्ष्मणके नाम उसमेंसे कुछ पायस निकाला ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ कुछ देवताओंको दिया । कुछ गौओं तथा पक्षियोंको खिलाया और थोड़ा सा त्रिजटाको देकर बादमें बची हुई थोड़ी सी खीर जानकीने स्वयं खाया ॥ ११९ ॥ तदनन्तर रावणने सलाह करके सोलह राक्षसोंको रामको मारनेके लिये भेजा, परन्तु वे सब रास्तेमें ही कबन्ध-के हारा खा डाले गये ॥ १२० ॥ उस समय पञ्चवटीमें रामके बाणके भयसे जहाँ-जहाँ मृगलूपी मारीच गया था, गौतमीके किनारे वहीं सर्वत्र अनेक नामवाले स्थान स्थापित हुए । जिस जगह दीड़ते हुए मृगका नूपुर गिर पड़ा था, वहीं नूपुरपुर नामका बड़ा भारी गाँव बस गया । रामके बाणसे ताडित होकर चपल नेत्रोंवाला मृग जहाँ पृथ्वीपर गिर गया था, वहीं बड़ा भारी चापल्य नामका गाँव अब भी बसा हुआ दीखता है । गोदावरीके किनारे

अद्यापि दृश्यते स्पष्टा नदीरूपा भयावहा । पापाणभूम्यां तत्रैव रावणस्य पदं महत् ॥१२६॥
 अद्यापि दृश्यते भीमं गर्तृहृषं नरोत्तमैः । खराद्येयुद्दसमये पंचवट्यां विदेहजा ॥१२७॥
 गुहायां गोपिता भन्ना साऽद्यापि तत्र दृश्यते । तथा रामो लक्ष्मणोऽपि पंचवट्यां सदैव हि ॥१२८॥
 दृश्यतेऽद्यापि भो देवि तज्जनेज्ञानदृष्टिभिः । अज्ञानदृष्टिभिस्ते तु दृश्यते ग्रावरूपिणः ॥१२९॥
 रामतीर्थं रामकृतं सीतालक्ष्मणसंस्कृते । तीर्थं तत्र तु गौतम्यां दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ॥१३०॥
 रामेण सीतया यत्र शश्यायां पर्वतोपरि । कृतं पूर्वं तु शयनं रामशश्यागिरिः स्मृतः ॥१३१॥
 शश्यारूपाणि दृश्यतेऽद्यापि तत्र तुणानि हि । रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा श्रुत्वा सीतावचोऽशुभम् ॥१३२॥
 निवेदितं लक्ष्मणेन क्रोधाश्रुस्मयचेतसा । निमित्तान्यतिधोराणि दृष्ट्वा चैव समरतः ॥१३३॥
 ययौ पंचवटीं व्यग्रस्तत्र सीता दर्शनं न । ततो मानुषभावं तु दर्शयन् सकलाज्ञनान् ॥१३४॥
 विचिन्वन्सर्वतः सीतां गृधराजं दर्शनं सः । ततः स पक्षिवचसा रावणेन हृतां प्रियाम् ॥१३५॥
 ज्ञात्वा तं योजयामास वह्निना जीवितक्षये । तत्तुष्टयर्थं वन्यमांसं क्षिप्त्वा स्नात्वा रघूतमः ॥१३६॥
 ययौ दक्षिणमार्गेण विचिन्वन्मूढवत्प्रभुः । पूर्ववदग्निहोत्रं स चकार कुशभार्यया ॥१३७॥
 एतस्मन्नांतरे देवि त्वया प्रोक्तस्त्वहं पुरा । त्वया यस्य जपो नित्यं क्रियते राघवस्य हि ॥१३८॥
 सोऽयं स्त्रीविरहात्पश्य मूढवद्भ्रमते वने । तवेति वचनं श्रुत्वा तदा त्वामत्रुवं त्वहम् ॥१३९॥
 देवि साक्षान्महाविष्णुस्त्वयं रामो महातले । शिक्षार्थं सकलाँल्लोकान् मूढवद्भ्रमते वने ॥१४०॥
 नारीसंगो नरैस्त्याज्यः सर्वदाऽत्रेति शिक्षयन् । नारीविषयजं दुःखमीदृशं अमकारकम् ॥१४१॥
 दर्शयन् सकलाँल्लोकानिति सोऽत्राटते वने । इति मद्भचनं श्रुत्वा तत्परीक्षार्थमुद्यता ॥१४२॥

जहाँ ग्रावभूमि (पथरीली घरतो) पर रामदाणसे निहत होकर मृग गिरा था ॥ १२१-१२५ ॥ उसका चिह्न वहाँ आज भी मनुष्योंको दिखाई देता है । सुमित्रापुत्र लक्ष्मणके घनुष द्वारा खींचा हुई रेखा पंचवटीके चारों ओर आज भी भयानक नदीके रूपको धारण हुए स्पष्ट दिखाई देती है । उस पापाणमधी भूमिमें रावणका बड़ा भारी पद्मचिह्न एक बड़े भारी गढ़के रूपमें अब भी दिखाई दे रहा है । पहले खरके साथ युद्ध करनेके समय पंचवटीमें विदेहजा सीताको जिस गुफामें उनके पति रामने छिपाया था, वह भी विद्यमान है । है देवि ! सज्जन तथा ज्ञाना महात्माओंकी सदैव राम-लक्ष्मणका वहाँ दर्शन होता है और सीताके स्थापित तीर्थ इस समय भी दिखाई देते हैं ॥ १२६-१३० ॥ जिस पर्वतपर रामने शश्या निर्मण करके सीताके साथ शयन किया था, वह रामशश्यागिरिके नामसे प्रसिद्ध है ॥ १३१ ॥ वहाँके तृण आज भी शश्याकार दिखाई देते हैं । इधर रामने लक्ष्मणको आया देखा तथा उनके मुखसे सीताके कहं दुर्वचनको सुना ॥ १३२ ॥ यह सब हाल लक्ष्मण-ने क्रोधपूर्वक आँसू बहाते हुए तथा विस्मयके साथ कहा था । राम चारों ओर अत्यन्त भयानक शकुनोंको देख तथा घबराकर शीघ्र ही पंचवटीमें गये तो वहाँ सीता नहीं दिखाई दीं । पश्चात् मनुष्यभावसे वे समस्त वनके पशु-पक्षी तथा जड़ वृक्षों आदिसे सीताका पता पूछने और सीताको सर्वत्र हूँढ़ने लगे । इतनेमें गृधराज जटायु दिखायी दिया । उस पक्षीके मुँहसे सुना कि रावण प्रिया सीताका हरण कर ले गया है ॥ १३३-१३५ ॥ मरणोपरान्त जटायुके कथनानुसार रामने उसका अग्निसंस्कार किया । उसकी शान्ति तथा तुष्टिके लिए रामने वन्य मृग आदिके मांससे पिण्डदान किया और स्नान आदि किया की ॥ १३६ ॥ पश्चात् सर्वेश्वर राम मूढ़ पुरुषको तरह सीताको खोजते हुए दक्षिणकी ओर चले । रास्तेमें सीताके अभावमें कुशाको सीता बनाकर उसीके साथ रामने अग्निहोत्र किया ॥ १३७ ॥ इसी बीच है देवि पार्वती ! तुमने मुझसे प्रश्न किया था--हे प्रभो ! आप नित्यप्रति जिन रामका नाम जपा करते हैं ॥ १३८ ॥ वही राम स्त्रीके विरहसे मूढ़की तरह वनमें मारे-मारे फिर रहे हैं । तुम्हारा यह वचन सुनकर मैंने तुमसे कहा-- ॥ १३९ ॥ हे देवि ! यह साक्षात् विष्णु भगवान् राम बनकर पृथ्वीमण्डलके लोगोंकी शिक्षा देनेके लिए वनमें मूढ़का तरह भ्रमण कर रहे हैं ॥ १४० ॥ वे मुबको यह उपदेश देते हैं कि मनुष्यको स्त्रीमें आसक्त नहीं होना चाहिए । स्त्रीविषयक आसक्ति ऐसे ही दुःख

त्वं गताऽसि समीयं श्रीराघवस्य तदा बने । सीतारूपेण तं रामं त्वया प्रोक्तं शुभं बचः ॥१४३॥
 राम राजीवपत्राक्ष मामग्रे पश्य जानकीम् । क्रीडस्वात्र मया सार्वमेहि शीघ्रं सुखी भव ॥१४४॥
 त्वदुक्तं राघवः श्रुत्वा विहस्य त्वां बचोऽब्रवीत् । जानाम्यहं त्वं कासीति सीतां त्वं नामि वेग्नाथहम् ॥१४५॥
 त्वं किं सीतास्वरूपेण मोहयस्यत्र मां बने । एवं पुनः पुनः प्रोक्ता यदा त्वं राघवेण हि ॥१४६॥
 तदा त्वया तत्स्वरूपं ज्ञातं सत्यं मयेरितम् । ततो नत्वा रामचंद्रं प्रार्थयित्वा पुनः पुनः ॥१४७॥
 आगताऽसि पुनर्मां त्वं कैलासगिखरेऽमले । त्वं का त्वं किमिति प्रोक्ता राघवेण पुनः पुनः ॥१४८॥
 या त्वं सा दंडके जाता त्वं का नाम्नांविका बने । त्वं लज्जिताऽसि रामेण यत्र तत्र तव स्थले ॥१४९॥
 तत्त्वापुरनाम्नाऽसीन्नगरं दंडके बने । ततस्ती रामसौमित्री जरमतुर्दक्षिणां दिशम् ॥१५०॥
 बहवो निहता मार्गे राक्षसा घोररूपिणः । एतस्मिन्नंतरेऽरण्ये कवचेन धूतौ तदा ॥१५१॥
 श्रीरामलक्ष्मणौ मार्गे योजनायतवाहुना । दृष्ट्वा तं शिरसा हीनं वाहू चिच्छेदतुस्तदा ॥१५२॥
 ततः स दिव्यरूपोऽभूत्वा रामं बचोऽब्रवीत् । पुरा गंधर्वराजोऽहं ब्रह्मणो वरदानतः ॥१५३॥
 केनाप्यवध्यस्त्वद्यसमष्टाचक्रं मुनीश्वरम् । रक्षो भवेति शसोऽहं मुनिना प्राह मां पुनः ॥१५४॥
 त्रेतायुगे यदा रामलक्ष्मणौ योजनायतौ । छेत्स्यतस्ते महावाहू तदा शापात्प्रमोक्ष्यसे ॥१५५॥
 ततो राक्षसदेहोऽमिन्द्रमध्यद्रवं रूपा । सोऽपि वज्रेण मा राम शिरोदेशे द्यताडयत् ॥१५६॥
 तदा कुक्षी शिरःपादयुगलं च गतं क्षणात् । ब्रह्मदत्तवरान्मृत्युर्नाभूत्वे वज्रताढनात् ॥१५७॥
 मुखाभावे कथं जीवेदयमित्यमराधिपः । तदा मां प्राह कुपया जठरे ते मुख भवेत् ॥१५८॥
 बाहू ते योजनायामावद्य शीघ्रं भविष्यतः । तदारभ्यात्र वाहुभ्या लब्धं तद्वक्षयाम्यहम् ॥१५९।

तथा भ्रमका कारण बनतो है ॥ १४१ ॥ इन बातोंको बतलाने तथा लागोंका शिक्षा देनेके लिए राम बनमें इधर-उधर भ्रमण कर रहे हैं । मेरे इस उत्तरको सुनकर तुम उनकी परीक्षा लेनेको उद्यत हुईं ॥ १४२ ॥ उस समय तुम सीताका रूप बनाकर श्रीरामके पास गयीं और उनसे कहा—॥ १४३ ॥ हे कमलसदृश नेत्रोंवाले राम ! अपते सामने खड़ी मुझ जानकीको देखो । आओ, मेरे साथ इस बनमें क्रीड़ा करके सुख प्राप्त करो ॥ १४४ ॥ तुम्हारे कथनको सुनकर राम हँसे और कहा—मैं जानता हूँ कि तुम कौन हो ॥ १४५ ॥ व्यर्थं सीताका रूप धारण करके मुझे वयों मोहित करती हो ? इस प्रकार जब रामने बारम्बार कहा ॥ १४६ ॥ तब तुमने मेरे कहनेके अनुसार रामका वास्तविक स्वरूप पहिचान और उनकी पुनः पुनः प्रार्थना करके क्षमा माँगा ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ तदनन्तर तुम रमणीक कैलास पर्वतके शिखरपर मेरे पास लौट आयीं । जहाँपर रामने तुमसे पूछा था कि तुम कौन हो ? यहाँ वयों आयी हो और तुम्हारे नामकी अभ्यिका तो दण्डकारण्यमें रहती है । यह सुनकर तुम लज्जित हुईं । जिससे वहाँपर लज्जापुर नामका एक नगर बस गया । उदनन्तर वे राम-लक्ष्मण दोक्षणकी ओर चल दिये ॥ १४९ ॥ १५० ॥ उन्होंने मार्गमें बहुतसे घोर राक्षसोंको मारा । इसी जङ्गलमें कवचने उन दोनोंको पकड़ लिया ॥ १५१ ॥ उसके चार-चार कोसके लम्बे हाथ थे । उसे सिरसे रहित देखकर उसके दोनों हाथ राम-लक्ष्मणने काट डाले ॥ १५२ ॥ तब वह दिव्य रूप धारण करके नमस्कारपूर्वक रामसे कहने लगा—पहले मैं गन्धर्वोंका राजा था । ब्रह्माने मुझे वर दिया था कि तुमको कोई नहीं मार सकेगा । इस गर्वसे मैं एक दिन मुनीश्वर अष्टावक्रको कुरुप देखकर हैस पड़ा । इसपर उन्होंने कुरु होकर मुझको शाप दिया कि तू राक्षस हो जायगा । मेरे प्रार्थना करनेपर फिर वे बोले— ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ त्रेता युगमें जब राम-लक्ष्मण तेरी इन योजन भर विस्तारवाली भुजाओंको काटेंगे, तब तू शापसे मुक्त हो जायगा ॥ १५५ ॥ राक्षस होकर एक दिन मैंने इन्द्रके ऊपर धावा किया । उन्होंने कुपित होकर मेरे मस्तकपर वज्र मारा ॥ १५६ ॥ जिससे मेरा सिर और दोनों पाँव पेटमें धुस गये । परन्तु ब्रह्माका वरदान प्राप्त रहनेसे मेरी मृत्यु नहीं हुई ॥ १५७ ॥ तब मैंने देवताओंके अधिष्ठित इन्द्रसे प्रार्थना की कि मैं विना मुखके किस प्रकार जी सकूँगा । तब उन्होंने कुपा करके कहा कि जा, तेरे पेटमें मुख हो जायगा ॥ १५८ ॥

तिष्ठन्त्यग्रे मतं गादिमुनीनां परिचारिकाः । शबरीदर्शनार्थं त्वं तत्र याहि रघूत्तम् ॥१६०॥
 कथयिष्यति सा सीताशुद्धिं ते रघुनन्दनं । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा स्तुत्वा स्वर्गं ययो मुदा ॥१६१॥
 ततो रामो लक्ष्मणेन शबरीसंनिधिं ययो । साऽपि संपूज्य श्रीरामं विशेषैर्वनसंभवैः ॥१६२॥
 चितामारोद्भुवृक्षका राघवं प्राह दृष्टिं ता । ऋष्यमूकगिरावये सुग्रीवो मंत्रिभिः सह ॥१६३॥
 वर्तते तस्य सख्येन सीताशुद्धिं लभिष्यति । गच्छ राम इतस्त्वये पंपानाम सरोवरम् ॥१६४॥
 तत्तटाके तु वृक्षाणां फलानि विविधानि च । भक्षस्व त्वं जलं पीत्वा याहि सुग्रीवसंनिधिम् ॥१६५॥
 इत्युक्त्वा शबरी रामं नत्वा वह्नि विवेश सा । रामसंदर्शनान्मुक्तिं प्राप्ता वैकुण्ठमाययौ ॥१६६॥
 ततो रामः शनैर्भ्रात्रा ययो पंपासरोवरम् । फलानि भक्षयामास पीत्वा तज्जलमुत्तमम् ॥१६७॥
 ततः शनैर्ययौ मार्गं ऋष्यमूकाचलं प्रति । पश्यन्वनानि सर्वत्र चित्यामास जानकीम् ॥१६८॥
 एवं गिरीन्द्रजे प्रोक्तमारण्यं चरितं तत्र । श्रीरामस्य ससीतस्य लक्ष्मणेन युतस्य च ॥१६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
 खरादिवधो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(राम-सुग्रीवमैत्री और वालिवध)

श्रीशिव उवाच

अथ रामो लक्ष्मणेन ऋष्यमूकाचलं प्रति । ययौ घृतधनुर्वाणो नेत्रे सर्वत्र चालयन् ॥ १ ॥
 ऋष्यमूकगिरेः पाश्चं गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवेणाथं तौ दृष्टौ ऋष्यमूकस्थितेन हि ॥ २ ॥
 सुग्रीवस्तौ तदा दृष्ट्वा चतुर्भिर्मत्रिभिर्युतः । संमञ्च्य मारुतिं प्राह वालिना प्रेषितावुभौ ॥ ३ ॥

शीघ्र ही तेरे हाथ भी योजन-योजन भर लम्बे हों जायेंगे । तबसे मैं जो कुछ इन हाथोंके बीच आ जाता है, खा लेता हूँ ॥ १५६ ॥ यहांसे आगे मतझ्न आदि मुनियोंकी परिचारिकायें रहती हैं । हे रघूत्तम ! आप वही जाकर शबरीसे मिलें ॥ १६० ॥ हे रघुनन्दन ! वह आपको सीताका पता बतायेगी । इतना कहकर उसने रामकी स्तुति की और नमस्कार करके वह सानन्द स्वर्गको चला गया ॥ १६१ ॥ तदनन्तर राम लक्ष्मणको लेकर शबरीके पास गये । शबरीने बनके अच्छे-अच्छे पुष्पों तथा फलोंसे उनका पूजन-सत्कार किया ॥ १६२ ॥ बादमें चितारोहण करते समय हृपंपूर्वक वह रामसे बोली कि आगे ऋष्यमूक पर्वतके शिखरपर मन्त्रियोंके साथ सुग्रीव रहता है ॥ १६३ ॥ उसकी मित्रता प्राप्त करनेसे आपको सीताका पता मिल जायगा । हे राम ! आप यहांसे चलकर पंपासरोवर जायें ॥ १६४ ॥ उसके किनारेपर लगे हुए वृक्षोंके विविध फल खा तथा जलपान करके आप सुग्रीवके पास जाइएगा ॥ १६५ ॥ इतना कहकर शबरीने रामको प्रणाम किया और अग्निमें प्रवेश कर गयी । इस प्रकार रामके दर्शनमात्रसे मुक्त होकर वह वैकुण्ठवाम सिधारी ॥ १६६ ॥ तदनन्तर राम आई लक्ष्मणके साथ पम्पासरोवर गये । वहांके सुन्दर फल खाकर सरोवरका निर्मल जल पिया ॥ १६७ ॥ पश्चात् धीरे-धीरे ऋष्यमूक पर्वतकी ओर चले । रास्तेमें चारों ओर हरे-भरे बनोंकी शोभा देखकर राम बारम्बार जानकीका स्मरण करने लगे ॥ १६८ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! यह मैंने तुमको सीता, लक्ष्मण तथा श्रीरामका किया हुआ चरित्र कह सुनाया ॥ १६९ ॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पं० रामतंजपाण्डियकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इस तरह राम हाथमें घनूष-बाण लिये और नेत्रोंसे चारों ओर देखते हुए लक्ष्मणके साथ ऋष्यमूक पर्वतके पास पहुँचे ॥ १ ॥ वहां शिखरपर बैठे सुग्रीवने पर्वतके पास आते हुए राम-लक्ष्मणको देख लिया ॥ २ ॥ उन्हें देखकर सुग्रीवने अपने चारों मन्त्रियोंको बुलवाया और उनसे मन्त्रणा

मां हंतुं धृतकोदंडौ सत्तृणीरौ नग्रकृती । इतोऽस्माभिः प्रगंतव्यं मंत्रं शृणु मयोच्यते ॥४॥
 गच्छ जानीहि भद्रं ते बद्धभूत्वा द्विजाकृतिः । ताभ्यां संभाषणं कृत्वा जानीहि दद्यं तयोः ॥५॥
 यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः । साथुत्वे स्मितवक्त्रोऽभूरेवं जानीहि निश्चयम् ॥६॥
 तथेति बदुरुपेण गत्वा नन्त्वा रघुन्तमम् । कौं युवां पुरुषव्याघ्राविति पग्रच्छ मारुतिः ॥७॥
 ततस्तं लक्ष्मणः प्राह पूर्ववृत्तं सविस्तरम् । शब्दीवचनाद्रामः सख्यं कर्तुं समागतः ॥८॥
 सुग्रीवेणाथ तच्छ्रुत्वा स्वरूपं मारुतिस्तदा । चकार नैं प्रकटं स्वीयं वृत्तं न्यवेदयत् ॥९॥
 मन्त्स्कंभमधिरुद्धाय पर्वतं गंतुमर्हथः । तथेति मारुतेः स्कंधे संस्थितौ तौ वभूवतुः ॥१०॥
 उत्थपात गिरेर्मूर्धिन द्विणादेव महाकपिः । वृश्चच्छायां समाश्रित्य तौ स्थितौ रामलक्ष्मणौ ॥११॥
 सुग्रीवं मारुतिर्गत्वा रामवृत्तं न्यवेदयत् । ततः प्रज्वालय वहिं स सुग्रीवो राघवेण हि ॥१२॥
 चकार सख्यं वेगेन समालिङ्ग्य परस्परम् । वृश्चाखां स्वयं छित्वा विष्टराथं ददी कपिः ॥१३॥
 हर्षेण महताविष्टः सर्वं एवावतस्थिरे । लक्ष्मणस्त्वब्रतीत्सर्वं सुग्रीवं वृत्तमात्मनः ॥१४॥
 तच्छ्रुत्वा सकलं वृत्तं सुग्रीवः स्वं न्यवेदयत् । सखे शृणुष्व मे वृत्तं वालिना यत्कृतं पुरा ॥१५॥
 मयपुत्रो दुर्मदश किञ्चिक्षामेकदा गतः । कृत्वा स दीर्घशब्दं तु वालिनं समृपाहयत् ॥१६॥
 तं श्रुत्वा निर्ययी वाली जघान दृढमुष्टिना । दुद्राव तेन मंवियो जगाम स्वगुहां प्रति ॥१७॥
 अनुदुद्राव तं वाली वालिपृष्ठे त्वहं गतः । वाली ममाह तिष्ठ त्वं वहिर्गच्छास्यहं गुहाम् ॥१८॥
 दन्युक्त्वाऽवित्य स गुहां मासमेके न निर्ययौ । गुहाद्वारान्मया रक्तं निर्गतं सञ्चिरीक्ष्य च ॥१९॥

फरके हनुमान्द्वे कहा कि इन दोनोंको वालीने भेजा है, ऐसा जात होता है ॥ ३ ॥ ये दोनों नररूप घारण कर भाया वीर्य तथा धनुष लेकर मुझे मारने आ रहे हैं । इस कारण हम लोगोंको यहाँसे कहीं अन्यत्र भाग जाना चाहिये । अबका तुम मेरो बात मानो और ब्रह्मणका रूप घारण करके जहाँचारी बनकर उनके पास जाओ और उनके साथ बातचीत करके उनके हृदयका अभिप्राय जान लो ॥ ४ ॥ यदि उनके हृदयका विचार दूषित हो तो पेड़की आड़में जाकर हाथकी अंगुलीसे संकेत करना और यदि अच्छा विचार रखते हों तो हँसकर मेरी ओर निहारना । वस यहीं संकेत निश्चित है, याद रखना ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनुसार हनुमान् 'वहुत बच्छा' कह और ब्रह्मचारीका रूप घारण करके रामके पास गये और नमस्कार करके कहा—'पुरुषोमें सिंहके समान वीर आप दोनों कौन हैं ?' ॥ ७ ॥ तब लक्ष्मणने उनको अपना संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया और कहा कि शब्दोंके कहनेसे ये राम सुग्रीवके साथ मित्रता करनेके लिये यहाँ आये हैं ॥ ८ ॥ यह सुनकर हनुमान्द्वे अपना असली स्वरूप प्रकट किया और अपना भी सब हाल कह सुनाया ॥ ९ ॥ साय ही यह भी कहा कि आप दोनों मेरे कन्धेपर बैठकर पर्वतपर चलें । 'तथास्तु' कहकर वे दोनों मारुतिके कन्धेपर चढ़ गये ॥ १० ॥ महाकपि हनुमान्जी कूदकर क्षणभरमें पर्वतके शिखरपर आ गये । वहाँ राम-लक्ष्मण एक वृक्षकी छायामें बैठे ॥ ११ ॥ हनुमान्द्वे जाकर रामका सब समाचार सुग्रीवको कह सुनाया । पश्चात् सुग्रीवने अग्नि जलायी और उसे साक्षी बनाकर रामके साथ शीघ्र मित्रता कर ली और परस्पर वे दोनों गले मिले । तब स्वयं सुग्रीवने अपने हाथोंसे वृक्षकी शाखा तोड़कर रामको बिछानेके लिए दे दी । तब सब लोग प्रसन्न हुए और बैठ गये । लक्ष्मणने अपना सब वृत्तात् सुग्रीवको सुनाया ॥ १२-१४ ॥ वह सुनकर सुग्रीवने भी अपना सब हाल बताते हुए कहा—हे सखे ! पहले वालिने मेरे साथ जो कुछ किया है, वह सब आप सुन लें ॥ १५ ॥ एक समय मय दानवका पुत्र दुर्मद किञ्चिन्ना नगरीमें गया । वहाँ जाकर वह जोरसे चिल्लाया और वालिको युद्धके लिये ललकारा ॥ १६ ॥ सो सुनकर वालि बाहर आया और दुर्मदको बहुत जोरसे एक मुक्का मारा । इससे धवराकर वह अपनी गुफाकी ओर भागा ॥ १७ ॥ उसके पीछे वालि और वालिके पीछे मैं भी भागा । वहाँ जाकर वालिने मुझसे कहा कि तुम बाहर खड़े रहो, मैं गुफाके भीतर जाता हूँ ॥ १८ ॥ यदि एक महीनेमें मैं बाहर न आऊँ तो मुझे मरा समझ लेना । ऐसा कहकर वह गुफामें चला गया । उसके कायनानुसार एक महीना बीत गया,

निश्चितं मनसा वाली दुर्मदेन हतस्त्वाति । एतस्मिन्नंतरे श्रुत्वा किञ्चिकधां रिपुवेष्टिताम् ॥२०॥
 गुहाद्वारि शिलामेका निधाय दुर्मदस्य च । यत्नतो मार्गगोधार्थं किञ्चिकधामागतः स्वयम् ॥२१॥
 मां दृष्टा रिपत्रः सर्वे वेगाच्चक्रः पलायनम् । अनिच्छ्लंतं मंत्रिणो मां तत्पदे मन्यवेशयन् ॥२२॥
 ततो हत्वा रिपु वाली दृष्टा मा स्वपदस्थितम् । संताङ्गं नगरान्मां स वहिन्यपकायत्तदा ॥२३॥
 ततः स सर्वदेशेषु वादयामास दुन्दुभिम् । भूम्यां सुग्रीवपाता यः स वध्यो भवेदिति ॥२४॥
 ततो लोकान्परिकम्य ऋष्यमूको मयाऽश्रितः । एकदा दुन्दुभिर्नाम दैत्यो नहियस्त्वपृथुक् ॥२५॥
 युद्धाय वालिनं रात्रौ समाहृयत भीषणः । ततो वाली समागत्य धृत्वा शृग करेण नः ॥२६॥
 हस्ताभ्यां तच्छुरङ्गित्वा तोलयित्वाऽक्षिपद्धुति । पपात तच्छुरो राम मतंगाश्रमसान्विधा ॥२७॥
 रक्तवृष्टिः पपातोच्चर्मतङ्गोऽप्यशपन्कुधा । यद्यागतोऽसि मे वालिन् गिरि शीघ्र समापये ॥२८॥
 एवं शमस्तदारभ्य ऋष्यमूकं न यात्यमौ । प्रतिज्ञां ते करोम्यद्य सीता शीघ्र समानते ॥२९॥
 यदा नीता रावणेन तदा दृष्टा मयाऽत्र खे । बद्धोत्तरीये क्षिमानि पदय त्व भृपणानि हि ॥३०॥
 इत्युक्त्वा दर्शयामास सुग्रीवो भृपणानि हि । तानि दृष्टाऽत्रवीद्वन्धु रामस्त्वं निश्चयं वद ॥३१॥
 त्वयादृष्टानि सीतायास्तच्छ्रुत्वा लक्षणोऽत्रवीत । न वेश्यहं समस्तानि वेश्यं गुलिमवानि हि ॥३२॥
 वंदने यानि दृष्टानि मया नित्यं रघूद्रुह । ततो गमोऽतिमंतुष्टो लब्धां सीताममन्यत ॥३३॥
 सुग्रीववचनाद्रामः प्रत्ययार्थं तदा क्षणात् । पादांगुष्ठेनाक्षिपत्तदुद्दुभेः शिर उच्चमम् ॥३४॥

किन्तु वह बाहर नहीं आया । मैंने जब गुफामें से निकलता हुआ रुधिर देखा तो मनमें निश्चार कर दिया कि दुर्मद दानवने वालीको मार डाला । उसी समय यह सुनकर कि शत्रुओंने किञ्चिकधाको घेर लिया है, मैंने गुरुके द्वारको एक बड़ी भारी शिलासे ढाँक दिया और निश्चय कर लिया कि अब दुर्मदका मार्ग रुक गया है । वह यत्न करके भी बाहर नहीं निकल सकेगा । तब मैं अपनी किञ्चिकधा नगरीको चला आया ॥ १६-२१ ॥ मुझे देखनेके साथ ही सब शत्रु भाग गये और मेरो इच्छा न रहनेपर भी मन्त्रियोंने मुझे भाई वालीके पदपर बैठा दिया ॥ २२ ॥ पश्चात् वालि भी शत्रुको मारकर घर आया और मुझे अपने पदपर बैठा देखा तो मुझे भारपीटकर उसी समय नगरसे बाहर निकाल दिया ॥ २३ ॥ साथ ही सब देशोंमें उसने ठिठोरा गिटवाकर कहला दिया कि “जो कोई सुग्रीवको शरण देकर क्षमा करेगा, वह मेरा अपराधी होगा और मार डाला जायगा” ॥ २४ ॥ तदनन्तर सब देशोंमें धूमकर मैंने इस ऋष्यमूक गिरिका आश्रय लिया । यहाँकी कथा यह है कि एक दिन हुन्दुभी नामक दंत्य भेंसेका रूप घरकर रात्रिके समय वालोंके यहाँ गया और उसको युद्धके लिये लड़कारा । वालोंने आकर अपने हाथसे उसकी सींग पकड़ लो और खींचकर उसका सिर घड़से उखाड़ तथा धुमाकर दूर कहा दिया । हे राम ! उसका वह सिर मतङ्ग ऋषिके आश्रममें जा गिरा ॥ २५-२७ ॥ इससे मतङ्गऋषिके ऊपर भी रुधिर गिरा । तब उन्होंने क्रोध करके उसे शाप दिया कि ‘अरे वालि ! यदि मेरे पर्वत तथा आश्रमके पास तू आयेगा तो तुरन्त मर जायगा’ ॥ २८ ॥ इस शापसे डरकर वाली यहाँ कभी नहीं आता । हे राम ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सीताको शीघ्र ही ले आऊँगा ॥ २९ ॥ जब रावण उनको ले जा रहा था, तब यही बैठे हुए मैंने आकाशमें देखा था । उस समय सोताने अपनी साड़ीमें बांधकर कुछ आभूषण नोचे कैकेये । वे यहीं हैं, आप उन्हें हैं ॥ ३० ॥ इतना कहकर सुग्रीवने वे आभूषण दिखलाये । उन्हें देखकर रामने लक्षणसे कहा—हे भाई ! कुन्त इन्हें देखकर ठीक-ठीक बतलाओ कि ये सीताके हैं या नहीं । वर्णोंकि तूमने तो सीताके आभूषण देखे ही हैं । यह सुनकर लक्षणने कहा कि मैं सबको तो नहीं पहचानता, परन्तु पाँवकी औंगुलीके नूपुरके वारेमें आश्रय कह सकता हूँ कि ये सीताके ही हैं । कारण कि मैंने प्रणाम करते समय केवल उनके पाँव देखे हैं —अन्य कुन्त नहीं देखे । यह सुनकर राम प्रसन्न हुए और ‘अब सोता मिल गया’ ऐसा समझा ॥ ३१-३३ ॥ तदनन्तर कुन्तवको विश्वास दिलानेके लिए उसी समय रामने अपने पाँवके औंगुलेसे मारकर हुन्दुभीके बड़े विशाल सिरको

दशयोजनपर्यंतं तथा वाणेन वै पुनः । चक्राकारान् सप्त तालान् दृष्टा देहे द्वाहेः प्रभुः ॥३५॥
 स्त्रीयांगुष्ठेन सौमित्रेः पदं किञ्चिद्विमर्य च । अजुं कुत्वा पञ्चगं तं शेषांशेन स्थितं भुवि ॥३६॥
 मुग्रीवप्रत्ययार्थं हि सप्त तालान् विभेद सः । गुहायामेकदा तालफलानि स्थापितानि हि ॥३७॥
 वालिना सप्त नीतानि तेन सप्तं ददर्श सः । तमश्चपत्त्वयि वृक्षाश्च भविष्यतीति वानरः ॥३८॥
 नपर्दिष्याद्वाधृतं तान् छेत्ता यस्ते हंता न संशयः । तद् दृष्टा रामसामर्थ्यं तस्मिन्प्रत्ययमाप सः ॥३९॥
 मुग्रीवस्तं पुनः प्राह राघवं तुष्टमानमः । वालिने सुरनाथेन पुरा दत्ताऽस्मिन् मालिका ॥४०॥
 यां दृष्टा रिपत्रो युद्धे गतवीर्या भवन्ति हि । या पूरा कश्यपेनैव तपसा दृष्टकरेण च ॥४१॥
 शिवाल्लुच्छा पिता पुत्रमिन्द्रं तेनापि वालिने । प्रीत्यापिता मालिका सा वाली कटे दधात्यसौ ॥४२॥
 तन्म्यास्त्वं दर्शनाद्राम गतसत्त्वो भविष्यन्ति । तत्रोपायं चिन्तयस्व येन तेऽथ जयो भवेत् ॥४३॥
 तन्म्य वचनं श्रुत्वा रामः सप्तं तमब्रीत् । यः वाशान्मोचितः पूर्वं सप्त तालान्विभिर्य च ॥४४॥
 गच्छ त्वं मम वाक्येन किञ्चिद्धायां च वालिनम् । निश्चीर्थे निद्रितं दृष्टा हरतन्मालिकां शुभाम् ॥४५॥
 तथेति रामवाक्येन किञ्चिद्धामेत्य पञ्चगः । मंचकस्यां जहाराथ तां मालां वासवं ददौ ॥४६॥
 ततो रामाज्ञया गत्वा समाहूयाथ वालिनम् । युद्धं चकार सुग्रीवः श्रीरामोऽपि ददर्श तम् ॥४७॥
 समानरूपां तौ दृष्टा मित्रधातविशंकया । न मुमोच तदा वाणं रामः सोऽपि न्यवर्तत ॥४८॥
 सुग्रीवो राघवं प्राह मां घातयसि वालिना । यदि मद्वन्ने वांछा त्वमेव जहि मां विभो ॥४९॥
 तन्म्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य रघूत्तमः । वन्धयामास सुग्रीवकटे मालां तु वन्धुना ॥५०॥

दूर फंक दिया ॥ ३४ ॥ वह दस योजनकी दूरीपर जा गिरा । गोल आकारमें सप्तके शरीरपर जमे हुए सात तालवृक्षोंको देखा तो रामने पृथ्वीपर शेषके अंशसे स्थित लक्ष्मणके पाँवको अपने पाँवके अंगूठेसे दबाकर उस सप्तको सीधा किया और वाणसे उन सातों वृक्षोंको एक ही वारमें काट डाला ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऐसा करके उन्होंने सुग्रीवको विश्वास दिलाया कि राम मैं सहायता करने और वालीको मारनेमें समर्थ हैं । एक समयकी बात है कि वालीने अपनी गुफामें तालके कुछ फल रखकर उनमें सात फल कोई उठा ले गया । वालीने देखा तो उसे वहाँ फलकी जगह सप्तं दिलायी दिया । तब वालीने सप्तको शाप दे दिया कि जा, तेरे ऊपर सात तालवृक्ष उगें ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तब सप्तने भी कहा कि जो पुरुष वृक्षोंको काटेगा, वही तुझे मारेगा—इसमें सन्दह नहीं है । उसी सामर्थ्यको आज राममें देखकर सुग्रीवको विश्वास हो गया ॥ ३९ ॥ तब प्रसन्न होकर सुग्रीवने कहा—पूर्वकालमें इन्द्रने वालीको एक माला दी थी ॥ ४० ॥ जिसे देखकर उसके शत्रु युद्धमें वलहीन हो जाते हैं । पहिले कठोर तप करनेपर वह माला काश्यपको जिवजीसे मिली थी । काश्यपने उसे लेकर अपने पुत्र इन्द्रको दी और इन्द्रने वालीको अर्पण की । प्रीतिपूर्वक अपित की हुई उस मालाको वाली सदा गलेमें पहिने रहता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे राम ! उसको देखनेके साथ ही आप भी वलहीन हो जायेंगे । अतएव इस विषयमें कोई उपाय सोचिए । जिससे आपकी विजय हो ॥ ४३ ॥ सुग्रीवके इस वचनको सुनकर रामने, जिसका वाणके हारा सात तालवृक्षोंको काटकर शापसे मुक्त किया था, उस सांपसे कहा कि तुम मेरे कथनानुसार किञ्चिन्नामें जाकर रात्रिके समय जब कि वाली सीता रहे, तब उसके गलेमेंसे उस सून्दर मालाको चुरा लाओ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ‘तथास्तु’ कहकर वह सांप रामकी आज्ञाके अनुसार किञ्चिन्नामा नगरीमें गया और पलङ्घप से उस मालाको चुराकर इन्द्रको दे आया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर रामको आज्ञासे सुग्रीवने वालीके पास जाकर उसको युद्ध के लिये ललकारा और युद्ध किया । उस मुद्धको राम देख रहे थे, किन्तु उन दोनों भाइयोंको समान रूपवान् देख धोखेमें कहीं मित्र सुग्रीव ही न मारा जाय, इस आशंकाके कारण रामने वालीपर वाण नहीं छोड़ा । तब सुग्रीव रामके पास लौट आया और रामसे बोला कि मुझे आप वालीके हाथों क्यों मरवाना चाहते हैं ? यदि मुझे मारनेकी ही इच्छा हो तो हे विभो ! आप ही मार डालें ॥ ४७-४८ ॥ सुग्रीवके इस वचनको सुनकर

पुनस्त ग्रेष्यामास सोऽपि वालिनमाहृयत् । ततः श्रुत्वा ययौ वाली तं ताराऽप्रार्थयत्तदा ॥५१॥
 शुनमयद्वाक्येन मथा रामः समागतः । चकार मंत्रीं किं तेन मा कुरुष्वाद्य संगरम् ॥५२॥
 गच्छ नत्वा रमानाथं वंधु मानय सादरम् । यांवराज्यपदं देहि तस्मे भे वचनं शृणु ॥५३॥
 तत्तारावचनं श्रुत्वा वाली तां वाक्यमवश्यीत् । जानाम्यहं राघवं तं नररूपघरं हरिम् ॥५४॥
 तस्य हस्तान्मृतिमेऽस्ति गच्छामि परमं पदम् । सुखं त्वं तिष्ठ तारेऽत्र सुग्रीवं भज सबदा ॥५५॥
 यदा त्वया स सुग्रीवः करिष्यति रति प्रिये । तदा तत्पत्निभोगस्यानृण्यं गच्छामि भामिनि ॥५६॥
 अत एव मालिका मे गुप्ताऽभृत्पद्य मन्त्रिये । अद्याहं रामवाणेन पतिष्यामि रणांगणे ॥५७॥
 अद्य धन्योऽस्म्यहं तारे धन्यो तौ पितरी मम । योग्यं श्रीरामहस्तेन मरिष्यामि रणांगणे ॥५८॥
 एवमाश्वास्य तां तारां ययौ वाली त्वरान्वितः । दृष्टा वाली महोत्पातान् सन्तोषं परमं ययौ ॥५९॥
 चकार वन्धुना युद्धं तदा वाणेन राघवः । वृक्षपण्डे तिरोभृत्वा पातयामास तं भुवि ॥६०॥
 ततस्तारा समागत्य शुश्रोत्र वालिनं प्रति । वाली दृष्टा रमानाथं तदा प्राह स गद्ददः ॥६१॥
 वृक्षपण्डे तिरोभृत्वा त्वयाऽहं ताडितो हृदि । त्वाद्य दूर्यशो जातं मम जातो महोदयः ॥६२॥
 किं मयाऽप्यकृतं ते हि त्वया यस्मान्निपातितः । रामः प्राह वालिनं त्वं रुमायां लम्पटः सदा ॥६३॥
 वन्धुभायां गृहे स्थाप्य वन्धुं हन्तुं त्वमिच्छसि । दृवृत्ते त्वां समालाक्य मया तस्मान्निपातितः ॥६४॥
 यथा त्वया रुमा खुक्का तथा तारां तव प्रियास् । भोक्ष्यत्वयं हि सुग्रीवो वचनान्मे कपीश्वर ॥६५॥
 यद्यपि न्वं दुराचारो निहतोऽसि रणं मया । तथापि भिण्ठरुपेण द्रापरान्तऽविणं मम ॥६६॥
 भित्वा प्रभासे वाणेन पूर्ववैरणं वानर । ततो मद्वस्तमरणस्यास्य कारणगोरवात् ॥६७॥
 मुक्तिं गच्छसि त्वं वालिनशुभां जन्मांतरेण हि । ततः प्राह पुनर्वाली मैऽभविष्यदुदीरितम् ॥६८॥

इसके अन्तम रामने भाई लक्ष्मणके द्वारा सुग्रीवके कण्ठमें पहिचानके लिए माला बदलायी ॥ ५० ॥ तदनन्तर पुनः उसको युद्ध करनेके लिये भेजा । उसने जाकर फिर वालीको ललकारा । सो सुनकर वालीने जानेको लैशारी को तो ताराने प्रार्थनापूर्वक कहा- ॥ ५१ ॥ हे नाय ! मैने अहृदके मुखरे मृता है कि आजकल राम इस वनमें आये हुए हैं । इसलिये आप सुग्रीवके साथ मित्रता कर ले और लड़नेका विचार त्पाग दे ॥ ५२ ॥ आप जाकर रामके चरणोंकी बन्दना करें और मेरा कहना मानकर भाई सुग्रीवको सादर युवराजपद प्रशान करें ॥ ५३ ॥ ताराकी बात सुनकर वालीने कहा कि मैं नररूपवारा साधान् नारायण रामको जानता हूँ ॥ ५४ ॥ उनके हाथों यदि मेरी मृत्यु होगी तो परमपद प्राप्त कर्हैगा । हे तारे ! तुम यहाँ सुखपूर्वक रहकर सुराजकी सेवा करना । हे प्रिये ! नग्रीव जब नुम्हारे साथ रति करेगा, तभी मैं उसका पत्नीके भागसे उक्तुण हाँड़ा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ और हे भामिनि ! देखो, आज मेरी माला भी लापता हो गयी है । अतएव मैं रणभूमिने रामके वाणसे अवश्य मारा जाऊँगा ॥ ५७ ॥ हे तारे ! मैं त्वया मेरे माता-पिता धन्य है कि जो आज श्रीरामके हृषीं मेरी मृत्यु होगी ॥ ५८ ॥ इस प्रकार ताराको समझाकर वाली तुरत्त चल पड़ा और महान् उत्तातोंको देखकर भी मन्तुष्ट हुआ ॥ ५९ ॥ वह अपने भाई सुग्रीवके साथ लड़ने लगा । उसी समय राम एक वृक्षकी आडमें खड़े हो गये और वालीको वाणसे मारकर पूर्ववैरण पर गिरा दिया ॥ ६० ॥ तब तारा आकर वालीके लिये अत्यन्त विलाप करने लगी । वाली अपने सामने रामको देखकर गद्गद स्वरसे बोला- ॥ ६१ ॥ हे नाय ! आपने जो आज वृक्षकी आडमें छिपकर मेरे हृदयमें वाण मारा है, इससे मेरे लिये तो वह महान् अभ्युदयको बात है, परन्तु इससे आपका बड़ा भारी अपयण होगा ॥ ६२ ॥ दूसरी बात यह है कि मैंने आपका कीन-सा अपराध किया था, जो आपने मुझे मारा ? रामने कहा- तू सदा सुग्रीवकी स्त्री रुमामें लिप्त रहता था ॥ ६३ ॥ तू छोटे भाईकी न्याको अपने घरमें रखकर भाईको मार डालना चाहता था । यह दुराचार देखकर मैंने तुझे मारा है, तो भी द्वापरके अन्तमें भील होकर तू पूर्ववैरण कारके प्रभासक्षेत्रमें अपने वाणने मेरे पौत्रको लैवेगा । तब मेरे

सीतावृत्तं त्वया पूर्वं क्षणेन रावणेन हि । दत्ताऽभिष्यदानीय सीता तव मया तदा ॥६९॥
 अधुना प्रार्थयामि त्वामंगदं परिपालय । इत्युक्त्वा स तदा वाली जहो प्राणान् रणांगणे ॥७०॥
 अङ्गदेन तदा रामः कारयामास तत्कियाम् । अथ रामं स सुग्रीवो राज्यार्थं प्रार्थयत्तदा ॥७१॥
 रामस्तमेव राजानं चकार लक्ष्मणेन सः । अथ वार्षिकमासान्स वस्तुं रामोऽविचारयत् ॥७२॥
 प्रवर्षणगिरेः ग्रोच्चशिखरे स्फटिकोद्धवाम् । रम्यां दृष्ट्वा गुहां रामः पत्रपुष्पमन्विताम् ॥७३॥
 निनाय वार्षिकान् मासान् चतुरः श्रीरघूद्वहः । एकदा लक्ष्मणः स्नात्वा यावद्रामं समागतः ॥७४॥
 सास्चिक्या सीतया युक्तस्तावद्रामो निरीक्षितः । सौमित्रिणा वन्दिता सा पत्युर्वामि लयं ययौ ॥७५॥
 एवं नासीन्ददा सीतावियोगो राघवस्य हि । सुग्रीवोऽथ पुरीमध्ये चकार राज्यमुत्तमम् ॥७६॥
 एकदा हलुमद्वाक्यादानरान्स समाहृयत् । प्रवर्षणगिरावास्तां तीर्थे द्वे रामलक्ष्मणे ॥७७॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामो दृष्ट्वा प्राप्तं शरदृतुम् । क्रोधेन प्रेषयामास सुग्रीवाय लक्ष्मणं च सः ॥७८॥
 सोऽपि गत्वाऽथ किञ्चिद्धां भीषयामास वातरान् । आगतं लक्ष्मणं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविहूलः ॥७९॥
 मारुतिं प्रेषयामास सांत्वनार्थं हि लक्ष्मणम् । स गत्वा तं सांत्वयित्वा किञ्चिद्धामानयत्तदा ॥८०॥
 एतस्मिन्नन्तरे तारां प्रेषयामास वानरः । साऽपि गत्वा मध्यकक्षां मन्त्रितं तं ददर्श ह ॥८१॥
 लक्ष्मणं पांत्वयामास वचोभिर्धुरेनिजैः । समाहृतानि सैन्यानि रामार्थं प्लवगेन हि ॥८२॥
 सुग्रीवे च त्वया कोपो मा कार्योऽयि हि देवर ततो लक्ष्मणहस्ते सा धृत्वा राजगृहं ययौ ॥८३॥
 दृष्ट्वा सुग्रीवराजस्तमासनात्स चचाल सः । सुग्रीवं लक्ष्मणः प्राह विस्मृतोऽसि रघूत्तमम् ॥८४॥
 वाली यैन हतो वीरः स वाणस्त्वां प्रतीक्षते । त्वमद्य वालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः ॥८५॥

हाथों मरनेके गोरखसे जन्मान्तररहित शुभ गतिको प्राप्त होगा । वालीने फिर कहा—यदि आप मेरे पास आते तो मैं तुरस्त आपको सीताका पता बताता तथा रावणसे सीताको लाकर छीन क्षणभरमें आपको दे देता ॥६४-६५॥ अरनु, अब मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अङ्गदकी रक्षा करिएगा । इतना कहकर वालीने उसी समय रणाङ्गणमें प्राण छोड़ दिया ॥७०॥ तदनन्तर रामने अङ्गदसे उसका क्रियाकर्म कराया । बादमें सुग्रीवने रामसे वह राज्य ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना की ॥७१॥ तब रामने लक्ष्मणको भेजकर सुग्रीवको वहाँ-का राजा बना दिया । अब राम बरसातमें कहीं चातुर्मासि निवास करनेका विचार करने लगे ॥७२॥ तदनुसार उन्होंने वहीं प्रवर्षणगिरिके उच्च शिखरपर सुन्दर पत्तों-पुष्पोंकी लताओंसे बेष्ठित एक रमणीक गुफा देखी ॥७३॥ बस, राम वहीं रहकर चौमासेके चार महीने विताने लगे । एक दिन लक्ष्मण स्नान करके जब आये तो रामको सतोगुणमयी सीतासे युक्त देखा । लक्ष्मणने उन्हें प्रणाम किया, तैसे हो सीता अपने पति रामके वामाङ्गमें विलीन हो गयी ॥७४॥ (७४) इस तरह उस समय भी रामसे सीताका वियोग नहीं हुआ था । उबर सुग्रीव अपनी पुरीमें उत्तम रीतिसे राज्य करने लगा ॥७६॥ एक बार हनुमानके कहनेपर सुग्रीवने वानरोंको बुलवाया । उस समय राम-लक्ष्मण प्रवर्षणगिरिपर रहते थे ॥७७॥ तभी रामने शरदृक्तुको प्राप्त देखा तो क्रोधसे लक्ष्मणको सुग्रीवके पास सहायताका स्मरण दिलाने लिये भेजा । उन्होंने वहाँ जाकर किञ्चिन्द्वाके वानरोंको डराना आरम्भ किया । लक्ष्मणको आया सुनकर सुग्रीव भी भयसे बिहूल हो उठा ॥७८॥ ७९॥ उसने लक्ष्मणको शान्त करनेके लिये हनुमानको भेजा । उन्होंने जाकर लक्ष्मणको समझाया और अपने साथ किञ्चिन्द्वामें ले आये ॥८०॥ उसी समय वानर सुग्रीवने तारांको भेजा । वह जाकर महलके बीचवाली दालानमें बैठ गयी । इतनेमें उसने लक्ष्मणको आते देखा ॥८१॥ ताराने अपने मधुर वचनोंसे लक्ष्मणको समझाकर शान्त करते हुए कहा—हे देवरजी ! वानरोंके राजा सुग्रीवने रामके कामके लिये वानरोंको बुलवा भेजा है । आप कोप न करें । इतना कह तथा लक्ष्मणका हाथ पकड़कर घरमें राजा सुग्रीवके पास ले गयी ॥८२॥ ८३॥ उन्हें देख राजा सुग्रीव सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये । तब लक्ष्मणने सुग्रीवसे कहा कि तुम रघुकुलमें उत्तम

एवमत्यन्तप्रहृष्टं बदन्तं लक्षणं तदा । उत्त्राच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभाष्यते ॥८६॥
 रामकायर्थमनिशं जागति न तु विस्मृतः । इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा सुग्रीवेण स मारुतिः ॥८७॥
 चकार लक्षणं शांतं सुग्रीवोऽप्यथ वानरैः । गत्वा तं राघवं नत्वा दर्शयामाय वानरान् ॥८८॥
 राघवं स तदा प्राह सुग्रीवः प्लवगाधिपः । देव पश्य समायांतीं वानराणां महाचमूर् ॥८९॥
 अत्र युधाधिपतयः पद्मान्यष्टादश स्मृताः । ततो रामाज्ञया सीताशुद्धयर्थं तान् दिदेश सः ॥९०॥
 दिक्षु सर्वासु विविधान् वानरान् प्रेष्य सत्त्वरम् । याद्यां दिशं जाम्बवन्तमङ्गदं वायुनन्दनम् ॥९१॥
 नलं सुषेणं शरभं मेदं सप्तप्रेष्यतदा । मासादर्वाङ्मनिवर्त्तव्यं नोचेद्वध्या भविष्यथ ॥९२॥
 ततो रामो मुद्रिकां स्वां ददौ मारुतिसत्करे । मन्मामाक्षरयुक्तेयं सीतायै दीयतां रहः ॥९३॥
 ततो रामो निजं मन्त्रं ददौ तस्मै हनुमते । तन्मन्त्रस्य लक्ष्मिते कृत्वा तु जपलेखने ॥९४॥
 लक्ष्म्या सामर्थ्यमतुलं लंकां गन्तुं स मारुतिः । नत्वा रामं परिक्रम्य जगाम कपिभिः सह ॥९५॥
 मदुत्तं राघवः प्राहः चित्रकृटे पुरा कृतम् । मनःशिलायास्तिलकं सीताभाले विनिर्मितम् ॥९६॥
 नण्डयोः पत्रवल्लयादि सीतायै कथयतां रहः । ततस्ते प्रस्थिताः सर्वे पश्चिमादिषु दिक्षु च ॥९७॥
 प्रेषितास्ते समायाता न दृष्टा सेति तं ब्रूवन् । तदांगदाद्याः प्लवगाः सीतार्थं ब्रह्मपुर्वने ॥९८॥
 मत्वाऽयं राघणश्चेति राक्षसाङ्गं शोऽदैयन् । साद्रास्यान्खेवरान्दृष्ट्य गुहाद्वाराद्विनिर्गतान् ॥९९॥
 जलार्थं संप्रविष्टस्ते गुहायां वानरोत्तमाः । तस्यां तान् गच्छतस्तृष्णीं दिनान्यष्टादशैव हि ॥१००॥
 अतिक्रांतानि तिमिरे ब्रह्मस्तु इतस्ततः । तत्र रत्नमये दिव्ये गेहे दृष्टा विद्यं शुभाम् ॥१०१॥

रामको भूल गये हो ॥ ८४ ॥ जिस बाणसे बार बाली मारा गया था । वही बाण सुम्हारी भी प्रतिक्षा कर रहा है । आज मैं तुम्हें मारकर जिस मार्गसे बाली गया है, उसी मार्गपर भेज दूँगा ॥ ८५ ॥ लक्षण जब स प्रकार अत्यन्त कठोर बचन कहने लगे । तब हनुमानने कहा कि आप ऐसे कठोर बचन मुझसे क्यों निकाल रहे हैं ? ॥ ८६ ॥ रामके काव्यके लिए सुग्रीव रात-दिन संचेष्ट रहता है । इतना कहकर हनुमानने सुग्रीवसे लक्षणकी पूजा करवायी और उनको शान्त करवाया । पश्चात् सुग्रीव वानरोंको लेकर रामके चास गये । वहाँ जा तथा वानरोंको दिखलाकर प्लवगाधिप सुग्रीवने कहा—हे देव ! देखिये, वानरोंको बड़ी भारी सेना आ रही है ॥ ८७-८८ ॥ इसमें अठारह पद्म सेतापति हैं । तदनन्तर रामकी आजासे भुजीवन सीताकी खोज करनेके लिये सब दिशाओंमें बहुतसे वानरोंको उसी समय भेज दिया । उनमेंसे जाम्बवान्, अगद, हनुमान्, नल, नील, सुषेण तथा मेदको दक्षिण दिशामें भेजा और कह दिया कि एक मासके भौतर सीताकी सुवि लेकर लौट आओ, नहीं तो तुम सबको मार डाला जायगा ॥ ८०-८२ ॥ तब रामने अपनी अंगठी हनुमानके हाथोंमें दो ओर कहा कि यह मेरे नामसे अछुत अंगूठी एकान्तमें सीताकी देना ॥ ८३ ॥ बादमें अपना मंत्र हनुमानको दिया । जिसको कि एक सातवार जप तथा लिखकर लड्डा जानती अतुल सामर्थ्य प्राप्त करनेके पश्चात् हनुमानने रामको प्रणाम किया और परिक्रमा करके वानरोंके साथ चल दिये ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ चलते समय रामने चित्रवूटमें किया हुआ एक चरित्र हनुमानको सूताते हुए कहा कि एक समय मैंने सीताके अस्तकमें मैनसिलका तिलक तथा कपोलोंपर पत्रावलीकी रचना की थी । इस बातको तुम सीतासे एकान्तमें कहना । जिससे कि उनको तुम्हारा विश्वास हो जाय । इसके बाद वे सब विभिन्न दिशाओंको चल दिये ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कुछ कालके बाद बहुतेरे वानरोंने आ-आकर सुग्रीवसे कहा कि मको सीता के नहीं दिखाई दीं । उधर अङ्गदादि वानर भी सीताको खोजते हुए बनमें इघर-उघर भ्रमण कररहे थे । वहाँ उन्होंने गीली चोचवाले बहुतसे पक्षी देखे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ यह दखलकर पाससे पीडित वानरोंमें उत्तम वे वानर जलकी अभिलाषासे उस गुफामें घुसे । उसमें जाते-जाते उन्हें अठारह दिन बीत गये ॥ १०० ॥ वे उस अंधकारमें इघर-उघर भटकने लगे । अचानक वहाँ उन्हें रत्नमय दिव्य दो भवन तथा उनमें एक सुन्दरी लत्री दिखायी

संश्राव्यता निजं वृत्तं त्वद्वृत्तं श्रोतुमुद्यताः । तान्पूज्य कथयामास चैनं वृत्तं तु योगिनी ॥१०२॥
 हेमानाम्ना सुता विश्वकर्मणः सा महेश्वरम् । नृत्येन तोषयामास ददौ तस्ये पुरं महव ॥१०३॥
 अत्र विथत्वा चिरं कालं यदा गतुं समुद्यता । सा मां प्राहात्र रामस्य प्रतीक्षां कुरु सञ्चनि ॥१०४॥
 समागच्छस्व रामस्य कृत्वा पूजनमुत्तमम् । इत्युक्त्वा सा दिवं याता राघवं गम्यते मया ॥१०५॥
 स्वयंप्रभेति नाम्नाऽहं हेमायाः परिचारिका । अधुना ब्रूत् युष्माक साहार्यं किं करोम्यहम् ॥१०६॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा मत्वा स्वीयदिनव्ययम् । तामूचुर्वानिराः सर्वे नस्त्वं कुरु गृहाद्विः ॥१०७॥
 इत्युक्ता सा क्षणेनैव तैः सहैव ययौ वहिः । तद्विराच्छादितस्वीयनयनैवानिरेस्तदा ॥१०८॥
 न जातं च तथा केन मार्गेण च वहिः कृतम् । साऽपि गत्वा पूज्य समं देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ ॥१०९॥
 ततस्ते वानरा ज्ञात्वा गुहायां स्वदिनव्ययम् । विषणाः सामरं दृष्ट्वा तस्थुः प्रायोपवेशने ॥११०॥
 जटायोः कीर्तनं चक्रं रामकार्यं मृतं पुरा । तच्छ्रुत्वाऽथ संपातिः तान्हंतुं यः समुद्यतः ॥१११॥
 तेभ्यः श्रुत्वा मृतिं वंशोर्देव्यातस्मै जलांबलिम् । तेषां श्रुत्वा पूर्ववृत्तं सीतावृत्तं न्यवेद्यत् ॥११२॥
 शनयोजनमध्येऽव्येलंकायां वर्ततेऽधुना । अशोकवनिकायां तु तीत्वाऽदिष्ठितां प्रथश्यथ ॥११३॥
 अहं पक्षविहीनोऽस्मि मया गन्तुं न शक्यते । गृध्रत्वाददूरदृक्चाऽहं सीता मां दृश्यते गिरी ॥११४॥
 आत्रा जटायुपा पूर्वमुड्डीयाहं चलाद्रविम् । स्प्रष्टुकामस्तदा तसम्भातो वंधुर्मया सखे ॥११५॥
 पक्षाभ्यां भस्मसाज्ञातीं मे पक्षौ पतिताचुभौ । जटायुः स सपक्षश्च गतो देशांतरं पुनः ॥११६॥
 अहं तदा पक्षहीनश्चन्द्रशमणिमुत्तमम् । मुनिं नत्वा तदा तस्मै निजवृत्तं निवेदितम् ॥११७॥

दी ॥ १०१ ॥ उसके वृत्तान्तका सुननेको अभिलाषास वानरोंने कहा—अपना वृत्तान्त सुनाओ, तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है? वह योगिनी उन सबका सम्मान करके कहने लगी—॥ १०२ ॥ विश्वकर्माका हेमानामसे प्रसिद्ध एक कन्या थी। उसने जब महादेवजीको नृत्य-गान करके प्रसन्न किया। तब उन्होंने उसको यह बड़ा भारी नगर दिया ॥ १०३ ॥ यहाँ बहुत कालतक निवास करके जब वह जाने लगी। तब उसने मुखको कहा कि यहाँ बहुत कालतक निवास करती हुई तुम रामके आगमनकी प्रतीक्षा करो ॥ १०४ ॥ उन रामका उत्तम प्रकारसे पूजन करनेके बाद तुम भा चली आना। इतना कहकर वह चली गयी। इसी कारण अब मैं भी रामके पास जाना चाहती हूँ ॥ १०५ ॥ उसी हेमाको मैं स्वयंप्रभा नामकी दासी हूँ। अब आप लोग यह कहे कि मैं आप लोगोंकी कौन-सी सहायता करूँ ॥ १०६ ॥ उसकी इस बातको सुन तथा बहुत दिन व्यर्थ व्यतीत हुआ देखकर वे सब उससे बोल कि हमको इस मकानसे बाहर कर दो ॥ १०७ ॥ यह सुनकर उसने उन सबको अपनी-अपनी आँखें मूँदनेके लिए कहा। ऐसा करनेपर वानरोंको यह नहीं मालूम हा पाया कि उन्हें किसने और किस मार्गसे वाहर कर दिया। वह भी रामके पास चली गया। तथा उनकी पूजा करके स्वर्गं सिधारी ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ पश्चात् वे सब वानर अपनी अवधिके दिनोंको बीते देख उदास हो सनुद्रके किनारे गये और उपवास करने लगे ॥ ११० ॥ वार्तालापके प्रसंगमें रामके लिए प्राणतक दे देनेवाले जटायुकी चर्चा चल पड़ी। वहाँ रहनेवाला संपातीं जो उनको खा जानेके लिये उद्यत था। वह उनके मुखसे रामक कार्यके लिये जटायुका मरण तथा प्रशंसा सुनकर भाई जटायुको जलाञ्जलि देनेके लिए समुद्रतटपर गया। पश्चात् उन वानरोंका वृत्तान्त सुनकर उनको सीताका समाचार कह सुनाया और कहा—॥ १११ ॥ ११२ ॥ यहाँसे समुद्रको पार करके सौ योजनकी दूरीपर तुम उन्हें देख सकते हो ॥ ११३ ॥ मैं पाँखोंसे रहित हूँ। इस कारण वहाँतक नहीं जा सकता। गृध्रकी दृष्टि तेज होती है। अतएव मैं सीताको पर्वतपर बैठा हुई लङ्घामें यहाँसे देख रहा हूँ ॥ ११४ ॥ मेरं पंख न होनेका कारण यह है कि मैं एक बार अपने बलके दर्पसे भाई जटायुके साथ उड़कर सूर्यका स्पर्श करनेके लिए आकाशमें उड़ा। राहमें सूर्यकी गर्भासे जटायु जलने लगा। तब मैंने अपनी पाँखोंसे ढाककर उसकी रक्षा की। जिससे कि मेरो दोनों पाँखें भस्म हो गयीं और मैं तथा जटायु दोनों ऊपरसे गिर पड़े। जटायु तब भी सपक था। लुढ़कते-लुढ़कते मैंने चन्द्रशमर्मा नामक मुनिके

तदा मां स मुनिः प्राह यदा त्वं वानरोत्तमान् । सीताशुद्धि कथयसि तदा पक्षौ भविष्यतः ॥११८॥
 पश्यतां निर्गतौ पक्षौ कोमलौ मां क्षणादिह । यदा नीता रावणेन पुरा सीता विहायसा ॥११९॥
 मन्तुत्रेण तदा दृष्टा कथितं चापि मां तदा । धिक्कृतः स मया क्रोधात्सा त्वया न विमोचिता ॥२०॥
 तदारम्य गतः क्रोधादद्यापि न समाशतः । इत्युक्त्वा तान् कपीन् पृष्ठा संपातिगतस्तदा ॥२१॥
 अथ ते वानराः सर्वे प्रोचुः स्वं स्वं ब्रलं तदा । न कोऽपि गमने शक्तः शतयोजनसागरे ॥२२॥
 तदा स जांबवान् वृद्धः स्तुत्वा तं मारुतिं मुहुः । जन्मकर्मादि संथाव्यलंकां गंतुं दिदेश तम् ॥२३॥
 सोऽपि श्रुत्वा समुद्योगं चकारारुद्ध्य पर्वतम् । निजभागद्भूमिगतं कृत्वा सस्मार रावतम् ॥२४॥
 एवं गिरींद्रजे प्रोक्तं किञ्चिधाविपये कृतम् । चरितं गघवेणेदं पुरा पापप्रणाशनम् ॥२५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामादणे सारकाण्डे किञ्चिन्द्याचरित्रेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(हनुमानका लंकामें जाशर सीताका पता लगाना और लंका जलाना)

श्रीशिव उवाच

अथ उहीय हनुमान् ययावाकाशवर्त्मना । तदृष्ट्वा तद्रलं ज्ञातुं सुरमां नागमातरम् ॥ १ ॥
 प्रेषयामासुरमराः सा शीघ्रं तत्पुरो ययौ । तदा सा मारुतिं प्राह विश त्वं वदनं मम ॥ २ ॥
 स प्राह रघुवीरस्य कार्यं कृत्वा विशाम्पदहम् । दृष्ट्वा तस्याम्भु निर्वन्धं व्यवर्धत तदा कपिः ॥ ३ ॥
 विवर्धितं तयाऽप्यास्यं तदा सूक्ष्मो वभूत ह । अगुष्टमात्रस्तम्याः स वक्त्रे गत्वा विनिर्गतः ॥ ४ ॥

पास जाकर प्रणाम किया और अपना वृत्तांत उन्हें सुनाया ॥ ११५—११७ ॥ तब मुनिने कहा कि जब तुम वानरोंको सीताकी खबर सुनाओगे । उसी समय तुम्हारा पाँखें पुनः जम जायेंगी ॥ ११८ ॥ देखो, मेरे शरीर-में ये कोमल पाँखें क्षणभरमें निकल आयीं । उस समय जब रावण सीताको आकाशमार्गसे ले जा रहा था ॥ ११९ ॥ उसी समय मेरे पुत्रने उनको देखा तो आशर मुझसे कहा । तब मैंने उसको बहुत विक्कारा और कहा—अरे दुष्ट ! तूने सीताको छुड़ाया बयों नहीं ? ॥ १२० ॥ तब वह कुपित होकर मेरे पाससे चला गया और आजतक नहीं लौटा । इतना कह तया वानरोंसे पूछकर संगाती भी वहाँसे चला गया ॥ १२१ ॥ तब वानरोंने परस्पर एक दूसरेसे अपना-अपना बल पूछा तो पता लगा कि सी धंजन विस्तारबाले समुद्रको लाँधनेके लिये कोई समर्थ नहीं है ॥ १२२ ॥ तब वृद्ध जाम्बवान्दे हनुमानको वारंवार प्रशंसा को । उनका जन्म तथा कम कह सुनाया और उन्हें लड्डा जानेका आदेश दिया ॥ १२३ ॥ हनुमानजी भी जाम्बवान्के दबन सुन तथा अपना पुल्यार्थ स्मरण करके पर्वतपर चढ़कर कूदनेवो उद्यत हुए । अपने भारसे उन्होंने पवतको जमीनमें धूंसा दिया और रामका स्मरण करने लगे ॥ १२४ ॥ हे गिरींद्रजे ! इस प्रकार पहिले किया हुआ रामका किञ्चिन्द्याचरित्र मैंनेतुमको सुना दिया । जो कि श्रवणमात्रसे पापोका नाश कर देता है ॥ १२५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामादणे सारकाण्डे किञ्चिन्द्याचरित्रे भापाटीकायाऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

शिवजी बोले—तदनन्तर हनुमान् उड़कर आकाशमार्गसे लंकाको चले । यह देखकर उनके बलकी परीक्षा लेनेके लिये देवताओंने नागोंकी माता सुरसाको भेजा । वह शीघ्र मार्गमें हनुमानजीके सामने जाकर बड़ी हो गयी और मुख फाढ़कर हनुमानसे कहने लगा कि तू आकर मेरे मुखमें प्रवेश कर । मैं तुझे खाऊँगी ॥ १ ॥ २ ॥ हनुमानने उत्तर दिया कि मैं श्रीरामका कार्यं संपादन करनेके बाद आकर तुम्हारे मुखमें प्रवेश करूँगा । परन्तु उसका अधिक आग्रह देखकर कपिने अपना शरीर बढ़ाया ॥ ३ ॥ यह देखकर सुरस ने भी दपनी काया और अधिक बढ़ायी । तब हनुमान् अंगुष्ठमात्रका सूक्ष्म रूप घरके उसके मुखमें प्रविष्ट होकर

ज्ञात्वा साऽपि बलं तस्य स्तुत्वा तं प्रययौ दिवम् । अथाविधवचनान्मार्गे मैनाकः पर्वतो महान् ॥५॥
जलमध्यात्प्रादुरभूद्विश्रात्यर्थं हनुमतः । नानामणिमयैः शृङ्गस्तस्योपरि नराकृतिः ॥६॥
भृत्वा यान्तं हनुमन्तं प्राह मैनाकपर्वतः । आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्षफलानि च ॥७॥
विश्रम्यात्र क्षणं पश्चाद्भिष्यसि यथासुखम् । पुरा गिरीणामिद्रेण युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥८॥
तदा दशरथेनाहं मौचितोऽस्म्यत्र संस्थितः । अतस्तदुपकारं हि निस्तर्तुं निर्गतोऽस्म्यहम् ॥९॥
गच्छतो रामकार्यार्थं तव विश्रांतिहेतवे । तदा तं हनुमानाह रामकार्यं न मे श्रमः ॥१०॥
विश्रामः स्वामिकार्येऽत्र न करोम्यद्य भक्षणम् । मैनाकस्तं पुनः प्राह स्वस्पश्चात्पावयस्व माम् ॥११॥
तथेति स्पृष्टशिखरः कराग्रेण ययौ कपिः । किंचिद्दूरं गतस्यास्य छायां छायाग्रहोऽग्रहीत् ॥१२॥
सिंहिकानाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा । आकाशगामिना छायामाक्रम्याकृष्य भक्षती ॥१३॥
तथा गृहीतो हनुमांश्चित्यामास वीर्यवान् । केनेदं मे कृतं वेगरोधनं विघ्नकारिणा ॥१४॥
एवं विचित्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयन् । तत्र दृष्ट्वा सिंहिकां तां तदास्ये न्यपतत्कपिः ॥१५॥
तस्यांत्रजालं निष्कास्य तां हत्वा ऽग्रे ययौ पुनः । ततोऽव्येदेष्मिष्ठे कूले लंकां कृत्वा तु पार्श्वतः ॥१६॥
पषात परलंकार्यां तत्र तां रावणस्वसाम् । क्रौंचां हत्वा सिंहिकावल्लंकां रात्रौ विवेश सः ॥१७॥
तदा लङ्घापुरी नाम्नी राक्षसी तं व्यतर्जयत् । हनुमानपि तां वाममुष्टिनाऽवश्याऽहनत् ॥१८॥
तदा स्मृत्वा ब्रह्मवाक्यं सा प्राहाश्रुमुखी पूरी । ब्रह्मणोक्ता पुरा चाहं यदा त्वां धर्षयेत्कपिः ॥१९॥
तदा रामो रावणस्य वधार्थमन्त्र यास्यति । ज्ञातं मया रावणस्य वधं रामः करिष्यति ॥२०॥
जितं त्वया गच्छ लंकामशोके पश्य जानकीम् । ततो विवेश हनुमाल्लंकां पश्यन्ययौ तदा ॥२१॥

शीघ्र बाहर निकल आये ॥४॥ तब सुरसा उनका बल जान और स्तुति करके स्वर्गको चली गयी । पञ्चात् समुद्रके कहनेसे महान् मैनाक पर्वत जलके दीचमेंसे हनुमानके विश्रामके लिये आश्रय देनेको उठ स्थान हुआ । नाना मणिमय शिखरोके ऊपर मनुष्यका रूप धारण करके मैनाक पर्वत आते हुर हनुमानसे बोला कि आइए और मेरे अमृततुल्य फलोंको खाइए ॥५-६॥ तत्पञ्चात् धणभर विश्राम करके सुखपूर्वक आगे जाइयेगा । पूर्वसमय पर्वतोंका इन्द्रके साथ दारुण युद्ध हुआ था ॥८॥ उस समय राजा दशरथने मुझे बचाया था । तबसे मैं यहाँ आकर रहता हूँ । मैं उनके उपकारसे उत्तरण होनेके लिये ही आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ ॥६॥ सो इसलिये कि रामकार्यके लिये जाते हुए आप मेरे ऊपर विश्राम करके जायें । तब उससे हनुमानने कहा कि क्या रामके कार्यसे मुझे अम होगा ? अरे, स्वामीके कार्यमें तो सदा विश्राम ही रहता है । इसलिये मैं यहाँ ठहरकर भोजन आदि नहीं कर सकता । तब फिर मैनाकने कहा—अच्छा, कमसे कम अपने हाथसे स्पृशं करके तो मुझे पवित्र कर दें ॥१०॥ ११॥ 'तथास्तु' कह हनुमान् हाथसे उसके शिखरको तूकर चल पड़े । जब कुछ दूर आगे बढ़े तो उनकी छायाको किसी छायाग्रहने पकड़ लिया ॥१२॥ वह सिंहिका नामकी घोर राक्षसी थी । जो सदा जलमें रहा करतो थी और आकाशमार्गमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छाया पकड़कर खोंच लेती और सा जाती थी ॥१३॥ उसके पकड़नेपर बलवान् हनुमान् सोचने लगे कि किसने रामके कार्यमें विघ्न डालनेके लिए मेरा वेग रोक दिया ॥१४॥ यह विचारकर हनुमानने नीचे देखा तो सिंहिका राक्षसीको देखकर उसके मुखमें ही कूद पड़े ॥१५॥ उन्होंने उसकी आंते निकाल लीं और उसे मार डाला । वहाँसे आगे बढ़े तो समुद्रके दक्षिण किनारे स्थित लङ्घाकी वगलमें स्थित परलङ्घामें जा पहुँचे । वहाँ रावणकी लड़की क्रौंचाको सिंहिकाके ही समान मारकर रात्रिके समय लङ्घामें प्रवेश किया ॥१६॥ १७॥ उब उन्हें लङ्घा नामकी राक्षसी डराने लगी । हनुमानने उसकी भी अवज्ञासे बाएं हाथका एक मुखका मारा ॥१८॥ उस समय ब्रह्माके वाक्यका स्मरण करके लंका आँखोंमें आँसू भरकर बोली कि पूर्वकालमें ब्रह्माने मुझसे कहा था कि जब कोई बानर तेरा अपमान करेगा ॥१९॥ तब राम यवपका वध करनेके लिए यहाँ

ददर्श लङ्कां तां रम्यां गोपुराद्वालमंडिताम् । हृषीथीचतुष्काढ्यां त्रिकूटशिखरस्थिताम् ॥२२॥
 पश्यन्समन्ततः सीतां प्रतिगेहं स मारुतिः । गुहायां निद्रितं कुम्भकर्णं हृषा भयानकम् ॥२३॥
 हृषा विभीषणं रामकीर्तने हृषमानसम् । हृषा सुलोचनायुक्तं निद्रितं मेघनिःस्वनम् ॥२४॥
 यथौ राजगृहं रात्रौ रावणं सदसि स्थितम् । हृषा स्वयं वायुरूपो दीपराजीवर्यलोकयत् ॥२५॥
 अकरोद्भव्यहीनास्तान् रावणदीन्स मारुतिः । उल्मुकेनाकरोद्भस्म कूचं च रावणस्य च ॥२६॥
 राक्षसीः कोटिशो नग्राः कृत्वा तोयघटान्कपिः वर्भंज लीलया तूष्णीं द्रतान्पुच्छेन तर्जयन् ॥२७॥
 तदाऽतिविहृलाः सर्वे प्रोचुस्तेऽथ परस्परम् । क्रुद्धाऽव जानकी सत्यं नः प्राणांतमुपागतम् ॥२८॥
 तच्छ्रुत्वा तुष्टुचित्तः स यथौ रावणसदृगृहम् । अदृष्टा जानकीं तत्र ययौ पुष्पकमुत्तमम् ॥२९॥
 रावणं निद्रितं हृषा वेष्टितं स्त्रीकदम्बकैः । हृषा मन्दोदरीं तत्र सीतेयमिति शंकितः ॥३०॥
 लक्ष्मणोक्तानि चिह्नानि पश्यन्स्तस्यां ददर्श न । तथापि सीतासदृशां हृषा व्यग्रमनास्त्वभूत् ॥३१॥

पार्वत्युवाच

कथं मन्दोदरी सीतासदृशी राक्षसीरिता । सीतांशांशांशजाः सर्वाः स्त्रियत्रेति श्रुतं मया ॥३२॥

श्रीशिव उवाच

शृणुष्व कारणं देवि सीतेयं विष्णुना चिता । तेनैव विष्णुना पूर्वमियं मन्दोदरी चिता ॥३३॥
 एकदा कैकसी माता रावणं प्राह दुःखिता । शेषोच्छासेन तल्लिङ्गं गतं चाद्य रसातलम् ॥३४॥
 शिवादानोय मां देहि आत्मलिंगमनुत्तमम् । तन्मातृवचनं श्रुत्वा गायनाद्रदोन्मुखम् ॥३५॥
 मामाह रावणो वाक्यं द्वौ वरां देहि मां प्रभो । आत्मलिंगं च मन्मात्रे पत्न्यर्थं पार्वतीं मम ॥३६॥

आयेंगे । सो अब मैंने जान लिया कि राम रावणको मारेंगे ॥ २० ॥ तुमने लङ्काको जीत लिया । जाओ, लङ्कामें धुसकर अशोकवाटिकामें जानकीको देखो । तब हनुमान सीताको खोजते हुए लङ्कामें धुसे ॥ २१ ॥ उन्होंने पुरद्वार तथा अटारियोंसे मण्डित रम्य लङ्कापुरीको देखा । वह त्रिकूट पर्वतके शिखरपर स्थित वाजारों, सड़कों तथा चौराहोंसे रमणीक लग रही थी ॥ २२ ॥ हनुमानसे सब और प्रत्येक घरमें सीताको हृषकर गुफामें सोये हुए कुम्भकर्णको देखा ॥ २३ ॥ उन्होंने रामनामके कीर्तनसे प्रसन्नमन विभीषणको और सुलोचनाके साथ सोये हुए मेघनादको देखा ॥ २४ ॥ तदनन्तर राजभवनमें जाकर रात्रिके समय सभामें स्थित रावणको देखा । यह देखकर वायुपुत्र हनुमानने दीपकोंको बुझा दिया ॥ २५ ॥ हनुमानजीने उन रावणादिको नन करके रावणकी दाढ़ी-मृछ आदिको लुआठीसे जलाकर भस्म कर दिया ॥ २६ ॥ करोड़ों राक्षसियोंको नन कर दिया । खेल-खेलमें जलके घड़ोंको फोड़ डाला और चुपकेसे बहुतेरे सिपाहियोंको पूछसे खूब पीटा ॥ २७ ॥ अतिशय त्रिहळ होकर वे सब परस्पर कहने लगे कि सचमुच सीताजी हम लोगोंपर कुछ हुई हैं । अब हम लोगोंका प्राणान्तकाल निकट आ गया है ॥ २८ ॥ यह सुना तो संतुष्टुचित होकर हनुमान् रावणके महलमें गये । वहाँ भी जानकीको न देखकर पुष्पकविमानमें गये ॥ २९ ॥ वहाँ रावणको स्त्रियोंके हांडिसे वेष्टित होकर सीता हुआ देखा । साथ ही मन्दोदरीको देखकर 'यही सीता है क्या ?' ऐसो आशंका करने लगे ॥ ३० ॥ परन्तु जब लक्ष्मणके कथनानुसार सीताकी मुख्याकृति मिलाने लगे तो नहीं मिली । फिर भी उसको सीताके समान देखकर आश्रयचकित हुए ॥ ३१ ॥ पार्वतीजीने पूछा—है सदाशिव ! राक्षसी मन्दोदरी सीताके सदृश कैसे थी ? मैंने तो सुना है कि संसारकी सब स्त्रियें सीताके अंशांशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ श्रीशिवजी कहने लगे—एक बार रावणकी माता कैकसीने दुःखित होकर रावणसे कहा कि जैषनागके उच्छ्वाससे मेरा नित्य पूजा करनेका शिवलिंग पातालमें चला गया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सो तुम एक उत्तम लिङ्ग शिवजीसे मौगिकर मुझे ला दो । माताके बचनको सुना तो अपने गायनसे बरदान देनेके लिए राजी करके मुझसे रावणने कहा—है प्रभो ! मुझको दो वर दीजिए । एकसे मेरी माताके लिए आत्मलिङ्ग और दूसरेसे

तत्त्वस्य वचनं श्रुत्वा त्वं दत्ताऽसि गिरीद्रजे । दत्ताऽऽत्मलिंगं संप्रोक्तो मया त्वं यदि रावण ॥३७॥
 मार्गे लिंगं भूमिसंस्थं करोषि तर्हाहं पुनः । नाग्रे गच्छामि तत्स्यानाचत्रैव च वसाम्यहम् ॥३८॥
 तथेति रावणशोक्त्वा देव्या लिंगेन सो ययौ । तदा त्वया स्मृतो विष्णुस्तेनाङ्गचन्दनादिना ॥३९॥
 कृत्वा मन्दोदरी नारी मयहस्तेऽपिता शुभा । तां निनाय मयः शीघ्रं पाताले स्वीयसदृगृहम् ॥४०॥
 ततो द्विजस्वरूपेण विष्णुः प्राह दशाननम् । प्रतारितः शिवेन त्वं दत्ता दुर्गा तु कृत्रिमाम् ॥४१॥
 पाताले मयगेहे सा गोपिताऽस्ति शिवेन हि । विविच्यसि त्वं स्वर्लोकं भूलोकं चेति शंकया ॥४२॥
 स्वीयं मत्त्वा तु पातालं तत्र त्वं न गवेष्यसि । त्यजेमां कृत्रिमां दुर्गा पश्य तां मयसञ्चनि ॥४३॥
 गिरीद्रजां महारम्यां पत्नीं कृत्वा सुखं भज । तद्विप्रवचनं सत्यं मत्त्वा मामेत्य वै पुनः ॥४४॥
 विहस्य रावणः प्राह ज्ञाते तेऽन्तर्गतं मया । अपिता कृत्रिमा देवी मां तां गोप्य रसातले ॥४५॥
 तर्वैवास्त्वधुना चेयं त्वहं नेष्यामि गोपिताम् । इत्युक्त्वा त्वां विसृज्याथ पातालं गन्तुमुद्यतः ॥४६॥
 तावन्मार्गं ह्यन्पशंकाग्रस्तः प्राह द्विजं तदा । आत्मलिंगं क्षणं हस्ते गृह्णीष्व वचनान्मम ॥४७॥
 यावाभिवर्त्य शंकां स्वामहेष्यामि चेगतः । द्विजवेषधरो विष्णुस्तदा प्राह दशाननम् ॥४८॥
 अतिक्रान्ते मुहूर्तेऽथ लिङ्गं स्थाप्य ब्रजाम्यहम् । तथेति रावणशोक्त्वा तत्करे लिंगमर्पयत् ॥४९॥
 ततो मूत्रस्य सा धाराखंडिताऽभूच्छिरं प्रिये । अतिक्रान्ते मुहूर्तेऽथ लिंगं सागररोधसि ॥५०॥
 पश्येस्थाप्य भूम्यां स ययौ स्वीयस्थलं हरिः । ततः स रावणशापि मूत्रं कृत्वा यथाविधि ॥५१॥
 लिंगं दृष्ट्वा भूमिसंस्थं तच्छ्रश्वालयत्तदा । तदा भूम्यां गतं लिङ्गं शिरः किंचिच्चचालन ॥५२॥
 अभूद्वर्ता कर्णरंध्रसदृशी तच्छ्रश्वले । गतर्यां तच्छ्रश्वापि कर्णशंकूपमं कृशम् ॥५३॥

पली बनानेके लिए मुझे पार्वतीको दे दीजिए ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! उसकी वरयाचना सुनकर मैने तुमको उसे दे दिया और आत्मलिङ्ग भी देकर उससे कहा—हे रावण ! देख, यदि तूने इस लिङ्गको मार्गमें कहीं भी रख दिया तो मैं आगे न जाकर वहीं रह जाऊंगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ‘बहुत अच्छा’ कहकर रावण देवी पार्वती तथा लिङ्गको लेकर चला गया । उस समय तुमने विष्णुभगवानका स्मरण किया । तब उन्होंने अपने अङ्गके चतुर्दश आदिसे मन्दोदरीको सुन्दरी स्त्री बनाकर मय दानवको दिया । उसे लेकर मयदानव पातालके अपने मनोहर भवनको चला गया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तब विष्णुभगवानने ब्राह्मणका रूप धारण करके रास्तेमें रावणसे कहा—हे दशानन ! शिवजीने तुमको ठग लिया । उन्होंने यह नकली पार्वती तुमको दी है ॥ ४१ ॥ असलीको तो शिवजीने पातालमें मयदानवके घरमें छिपा रखा है । उन्होंने यह सोचा कि तुम स्वर्गं तथा भूलोकमें ही खोजोगे ॥ ४२ ॥ अपना समझकर पातालमें न खोजोगे । इस कारण तुम इस कृत्रिम दुर्गाको तो छोड़ दो और मयदानवके घर जाकर यथार्थ पार्वतीको ढूँढ़ निकालो ॥ ४३ ॥ उस अत्यन्त सुन्दरी पार्वतीको पली बनाकर सुख भोगो । विप्रके उस वचनको सच मानकर पुनः रावण मेरे पास आया ॥ ४४ ॥ वह हँसकर बोला कि मैने आपके हृदयगत अभिप्रायको जान लिया है । आपने असली पार्वतीको रसातलमें छिपाकर मुझे नकली पार्वती दे दी है ॥ ४५ ॥ इसको अब अपने पास ही रखिए । मैं तो उस छिपो हुई पार्वतीको ही ले जाऊंगा । इतना कह तथा तुमको वही छोड़कर वह पातालमें जानेके लिए उद्यत हुआ ॥ ४६ ॥ रास्तेमें लघुशङ्का करनेकी इच्छावश उसने ब्राह्मणसे कहा—हे द्विज ! भेरी प्रार्थना स्वीकार करके क्षणभरके लिए इस शिवलिङ्गको अपने हाथमें लिये रहो ॥ ४७ ॥ मैं आभी लघुशङ्का करके तुम्हारे पास वा रहा हूँ । द्विजवेष धारण करनेवाले विष्णुने कहा—हे दशानन ! यदि अधिक देर लगेगी तो मैं लिङ्गको यहींपर रखकर चला जाऊंगा । अच्छी बात है, कहकर रावणने शिवलिङ्ग उनके हाथमें दे दिया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ रावण जब लघुशङ्का करने लगा तो बहुत देर तक मूत्रकी अखण्ड धारा चलती रही । अधिक समय बीत जानेपर सागरके पश्चिम किनारे लिङ्गको रखकर विष्णुभगवान अपने स्थानको चले गये । उसके पश्चात् रावण भी विधिवत् मूत्रत्याग करके वहीं आया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लिङ्गको जमीनपर रखकर उसके सिरको हिलाया, परन्तु भूमिगत लिङ्गका सिर नहीं हिला

भुवः कणोदिमं लिंगं गोकर्णं तद्वदंति हि । ततः खिन्नमनास्तूष्टीं पातालं रावणो ययौ ॥५४॥
 मयगेहे निरीक्षयाथ देवीं मन्दोदरीं वराम् । मयं संप्रार्थयामास ददौ तां रावणाय सः ॥५५॥
 ततो विवाहं निर्वर्त्य पारिवहै ददौ मयः । रावणाय ददौं शक्तिममोधा शत्रुघातिनीम् ॥५६॥
 दद्वा मन्दोदरं तस्याः प्राह मन्दोदरीमिति । तां नाम्ना रावणस्तुष्टस्तया स्वीयस्थलं ययौ ॥५७॥
 ततौ मात्रा धिकृतः स पुनस्तुतु त्वरान्वितः । गोकर्णं रावणो गत्वा तप्त्वा लब्धवा विधेवरान् ॥५८॥
 त्रैलोक्यं स्ववशे कृत्वा लंकायां राज्यमाप सः । तस्मात्सीतासमानेयं दृष्टा मन्दोदरा प्रिये ॥५९॥
 लंकायां वायुपुत्रेण रावणाये विनिद्रिता । मयोऽप्यासीत्स लंकायां गृहं कृत्वा यथासुखम् ॥६०॥
 मयवंधुर्गयो नाम महान् वीरः प्रतापवान् । रात्रौ विनिद्रितो गेहे ब्रह्मदत्तवरात्सुधीः ॥६१॥
 दशास्यहस्तात्तन्मृत्युर्विधिनोक्तं विचित्य च । तस्य वस्त्रं मारुतिना हृतं सदसि वै पुरा ॥६२॥
 ततिथपद्मपर्यङ्के रावणस्य कपिस्तदा । विभीषणस्य पर्यके वसनं रावणस्य च ॥६३॥
 क्षिप्त्वापश्यज्ञानर्कां स लंकायां च मुहुः कपिः । ययावशोकवनिकां वृक्षप्रासादमंडिताम् ॥६४॥
 ददर्श तत्र प्रांशुं च शिशपानाम पादपम् । तन्मूले राक्षसीमध्ये ददर्शविनिकन्यकाम् ॥६५॥
 एकवेणीं कृशां दीनां मलिनांवरधारिणीम् । भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम् ॥६६॥
 कृतार्थोऽहमिति प्राह दृष्टा सीतां स मारुतिः । शिशपानगशाखाग्रपल्लवाम्पतरे स्थितः ॥६७॥
 पुरा दृष्टानलंकारान् तस्य देहे ददर्श न । ततः किलकिलाशब्दर्ययौ तत्र दशाननः ॥६८॥
 ददर्श रावणः स्वप्ने कपिः कश्चित्समागतः । अशोकवनिकायां सा दृष्टा तेन विदेहजा ॥६९॥

॥५२॥ उसके शिरोभागकी जगह कानके छेदकी तरह गड़हा हो गया । गड़हेसे सिर भी कर्णशंकुकी तरह कृश हो गया ॥ ५३॥ अतएव पृथ्वीके कणके सदृश वह लिङ्गं गोकर्णं नामसे विख्यात हुआ । तब खिन्नमन होकर रावण चुपचाप पाताल चला गया ॥ ५४॥ मयके घरमें सुन्दरी मन्दोदरीको देखकर मयसे रावणने प्रायंना की । तब मयने रावणको वह कन्या द दी ॥ ५५॥ इस प्रकार मयने कन्याका विवाह करके रावणको दहेजमें बहुत-सा वस्त्र-आभूषण आदि दिया और शत्रुघातिनी, अमोघ दृढ़ शक्ति भी दी ॥ ५६॥ उस देवीका उदर मन्द अर्थात् सूधम देखकर रावणने उसका नाम मन्दोदरी रखा और उसके लाभसे सन्तुष्ट होकर रावण अपने स्थानको चला गया ॥ ५७॥ वहाँ माताके धिक्कारनेपर रावण फिर गोकर्णके पास जाकर तप करने लगा । अन्तमें अपनी तपस्याके बलसे रावणने ब्रह्मासे वर प्राप्त करके तीनों लोक वशमें कर लिया और लङ्घामें राज्य करने लगा । हे प्रिये पार्वती ! इसी कारण हनुमानने सीताके समान मन्दोदरीको रावणके पास लङ्घामें सोते हुए देखा था । बादमें तो मय दानव भी लङ्घामें घर बनाकर सुखपूर्वक रहने लगा ॥ ५८-६०॥ प्रतापी मयका भाई गव रात्रिके समय अपने भवनमें सो रहा था । विचारशील हनुमानने इहाके वरसे गयका रावणके हाथों मृत्यु करानेके विचारसे उसके वस्त्रोंको ले जाकर सभागृहमें रावणके दलगपर और बादमें रावणके वस्त्र ले जाकर विभीषणके पलंगपर रख दिया ॥ ६१-६३॥ पुनः हनुमान् लङ्घामें जानकीजीको खोजने लगे । खोजते-खोजते वृक्षों तथा प्रासादोंसे सुशोभित अशोकवाटिकामें गये ॥ ६४॥ वहा उस्में एक अच्छा शिशपा (शोशम) का वृक्ष दिखायी दिया । उसके नीचे राक्षसियोंके बीचमें अवनि-वन्या जानकीजीको विराजमान देखा ॥ ६५॥ उस समय शुष्क तथा दीन मुख होकर मलीन वस्त्र धारण किये हुए भूमिपर सोयी हुई सीता दुःखित मनसे रामका नाम जप रही थीं । उनके सिरके बालोंमें मिट्ठी आदि भर जानेसे लेदुरी बैंध नयी थी ॥ ६६॥ सीताके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ समझते हुए हनुमानजी उसी शिशपावृक्षकी एक शाखाके अग्रभागके पत्तोंमें छिपकर बैठ गये ॥ ६७॥ उस समय सीताके शरीरपर वे अलङ्घार नहीं दिखायी दिये, जिनको कि हनुमानने पहिले सुग्रीवके पास देखा था । इतनेमें कुछ कोलाहलके साथ रावण वहाँ जा पहुंचा ॥ ६८॥ क्षयोंकि रावणको स्वप्नमें दिखायी दिया कि कोई बालर आया है और उसने

रामहस्तान्मृतिः शीघ्रं लब्धुं तां धर्षयाम्यहम् । कपिद्वेष्टा राघवाय निवेदयतु मत्कृतम् ॥७०॥
 आगमिष्यति तच्छ्रुत्वा रामो मां निहनिष्यति । इति निश्चित्य स ययौ स्त्रीभिः सवेष्टितो मुदा ॥७१॥
 न् पुराणां ध्वनिं श्रुत्वा विद्वाऽसीद्विदेहजा । रावणो जानकीमाह मां दृष्टा किं विलज्जसे ॥७२॥
 रामं बनचरं राज्यभ्रष्टं त्यक्तसुहज्जनम् । पित्रा हीनं भोगहीनं सदा त्वय्यतिनिष्टुरम् ॥७३॥
 एकांतवासिनं पिंगजटावन्कलधारिणम् । तं त्यक्त्वा मां भजस्वाद्य त्रैलोक्येशं महाबलम् ॥७४॥
 अप्सरोभिः सेवितं मां भाग्ययुक्तं पदस्थितम् । स्त्रियो मन्दोदरीमुख्यास्त्वां भजिष्यन्त्यहनिंशम् ॥७५॥
 मया राज्यं त्वदधीनं कृतमस्ति भजस्व माम् । मया स्वर्जीवितं चापि त्वदधीनं कृतं मदत् ॥७६॥
 इति नानाविद्युर्वाक्यैः प्रार्थयामास रावणः । उवाचाधोमुखी सीता निधाय तृणमन्तरे ॥७७॥
 राघवाद्विभ्यता नूनं भिक्षुरूपं धृतं त्वया । रहिते राघवाभ्यां त्वं शुनीव हविरध्वरे ॥७८॥
 हृतवानसि मां नीच तत्कलं प्राप्त्यसेऽचिरात् । यदा रामशरायातविदारितवपुर्भवान् ॥

भविष्यसि रणे रामं जानीये मानुषं तदा ॥७९॥

श्रुत्वा रक्षोऽधिष्ठिः क्रुद्धो जानक्याः परुषाक्षरम् । वाक्यं क्रोधसमाविष्टः पुनर्वचनमन्तरीत् ॥८०॥
 भवित्री लंकार्या त्रिदशवदनग्लानिरचिरात्स रामोऽपि स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखः ।
 तथा यास्यत्युच्चैर्विष्टमनुजेनात्र जटिलो जयः श्रीरामे स्यान्न भम वहुतोपोऽत्र तु भवेत् ॥८१॥
 तद्रावणवचः श्रुत्वा जानकी प्राह तं पुनः । पष्टाक्षरपराण्येव चतुर्षु चरणेष्वपि ॥८२॥
 त्वमक्षराणि चत्वारि लोप्य श्लोकममुं पठ । एवं तया जितो वाक्यमार्गणीः स दशाननः ॥८३॥

अशोकवनमें जाकर राजा विदेहकी पुत्री सीताको देख लिया है ॥ ६९ ॥ “रामके हाथोंसे शीघ्र मरनेके लिए मैं चलकर सीताका तिरस्कार करूँगा तो मेरी करतूत देखकर वह बानर रामसे कहेगा ॥ ७० ॥ सो सुनकर राम यहाँ आयेंगे और मुझे मारेंगे” । ऐसा निश्चय करके रावण स्त्रियोंको साथ लेकर सानन्द उधर चल पड़ा ॥ ७१ ॥ नूपुरोंकी ध्वनि सुनते ही सीताजी धबड़ा गयीं और उन्होंने मुख नीचे कर लिया । तब रावणने सीतासे कहा- तू मुझसे लजाती वयों हैं ? ॥ ७२ ॥ बनमें अमण करनेवाले, राज्यसे अष्ट सुहज्जनोंसे रहित, पितृहीन, भोग-हीन, सदा तेरे लिए निर्दय, ॥ ७३ ॥ एकान्तसेवी, पीली जटा और बल्कल (भोजपत्र आदि वृक्षके छिलकोंको) धारण करनेवाले रामको छोड़कर तू त्रिलोकपति और महाबलवान् मुझ रावणका आश्रय ले और मेरी सेवा कर ॥ ७४ ॥ मैं अप्सराओंसे सेवित और भाग्यवान् होकर महान् पदपर स्थित हूँ । मेरी सेवा करनेसे मेरी मन्दोदरी आदि स्त्रियें भी रात-दिन तेरी दासियाँ बनकर रहेंगी ॥ ७५ ॥ मैंने अपना राज्य तथा अपना जीवन तुझको दे दिया है । तू मेरी बनकर रह ॥ ७६ ॥ इस तरह अनेक प्रकारके वाक्योंसे रावण प्रायंना करने लगा । तब बीचमें तिनकेका आड़ करके तथा नीचे मुख किये हुए सीताने कहा-॥ ७७ ॥ अरे पापी ! वयों हींग हाँकता है । रामके डरसे तू भिक्षुका रूप धारण करके और राम-लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें यज्ञसे जैसे कुत्ता हवि अर्थात् हवनकी सामग्री धृत-खीर आदि लेकर भागे, उसी प्रकार तू मुझे लेकर भाग आया है । अरे नीच ! उसका फल तुझको शीघ्र मिल जायगा । जब रामके वाणोंसे विदारितशरीर होकर तू गिरेगा, तब तुझे यह पता लग जायेगा कि राम मनुष्य हैं या और कोई । यह सुना तो राक्षसाविष्ट रावण कुपित होकर जानकीजीको कठोर बचन कहता हुआ बोला-॥ ७८-८० ॥ “इस लङ्घामें आकर देवताओंके भी मुख मलीन हो जायेंगे । लक्ष्मणसहित वह राम भी मेरे समक्ष युद्धमें नहीं खड़ रह सकेगा । यहाँ आया तो अनुजके सहित वह बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जागा । यहाँ उस जटाधारी रामकी जीत नहीं होगी और मुझे भी आनन्द न प्राप्त होगा” ॥ ८१ ॥ रावण-की इस बातको सुनकर जानकीने कहा-चारों चरणोंमें छठे अक्षर तथा आगेवाले चारों सप्तम अक्षरोंका लोप करके तुम इसी श्लोकको फिरसे पढ़ो । वही हाल तुम लोगोंका होगा । कहनेका आशय यह है कि ८१वें श्लोकमेंसे चारों चरणोंके त्री न वि और न ये चार अक्षर निकल जानेसे यह अर्थ होगा कि लङ्घामें दशवदन रावणके ऊपर शीघ्र ही विपत्ति आयेगी अर्थात् वह हार जायगा । लक्ष्मणके साथ राम युद्धमें आ डटेंगे ।

हुद्राव भीपयन्सीतां खङ्गमुद्यम्य सत्वरः । धृत्वा करेण तत्पाणि मन्दोदर्या निषेधितः ॥८४॥
 मादृश्यः सति बहुचश्च त्यजैनां कृषणां कृशम् । ततोऽन्नवीदशग्रीवो राक्षसाविंकृताननाः ॥८५॥
 यथा मे वशं ग्रामा सीता भविष्यति सकामना । तथा यत्थं त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥८६॥
 यदि मासद्वयादृच्छं मञ्चलव्यां नाभिनन्दति । तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषाम् ॥८७॥
 तदा सीता पुनः ग्राह वचनं तं दशाननम् । बाल्यत्वेऽहं समानीता पेटिकास्था त्वया पुरा ॥८८॥
 तदा मथा वचः प्रोक्तं तत्त्वं किं विस्मृतोऽसि हि । अधुनाऽहं गमिष्यामि यास्यामि त्वरितं पुनः ॥८९॥
 त्वा चन्द्रुपुत्रसैन्याद्यनिर्विन्दन्तुं च मयेरितम् । तत्स्वीयं वचनं सत्यं कर्तुमत्रागताऽस्म्यहम् ॥९०॥
 त्वा चन्द्रुपुत्रसैन्याद्यनिर्विन्दत्य रामहस्ततः । ततोऽयोद्यापुरीं गत्वा पुनर्यस्यामि त्वत्पुराम् ॥९१॥
 निकुम्भजं पौङ्ड्रकं तं मातामहगृहे स्थितम् । शतर्षीषं रावणं च द्वापातरनिवासिनम् ॥९२॥
 साहाय्याहार्थं पौङ्ड्रकेन लंकायामागतं पुनः । अहं त्रुतीयवेलायां संवधिष्यामि तावुभां ॥९३॥
 ततः स्त्रीयस्थलं गत्वा पुनर्यस्याम्यहं जवात् । कुम्भकर्णोऽद्वं वीरं मूलकासुरनामकम् ॥९४॥
 अत्रैव त्रुतीयवेलायामागत्य पुष्पकेण हि । अहमव हनिष्यामि शितवाणं रणागण ॥९५॥
 अन्यच्चापि स्मराद्य त्वं पुरा याद्विनोदितम् । यद्वाक्याच्च त्वया गत्वा कौसल्यानृपता हृता ॥९६॥
 पेटिकास्थौ पुनस्त्यक्तौ साकेते देवयोगतः । अतस्त्वं मर्तुकामोऽसि यतोऽहमाहृता त्वया ॥९७॥
 गच्छ गेहे सुखं भूम्द्व रामः शीघ्रं हनिष्यति । इति सीतावाक्यवाणभिन्नममस्थलोऽपि सः ॥९८॥
 वर्यो तृणीं निजं गेहं लज्जितश्च दशाननः । एवं दशानने याते राक्षस्यो रावणाज्ञया ॥९९॥
 जानकीं तां स्वशब्देश्च तथा क्रूरोक्तिभिर्मुद्दुः । आस्यविंदीणखङ्गाद्यभीपयन्त्यः करादर्भिः ॥१००॥

अनुज सहित राम उच्च पदको प्राप्त करेगे । जटाधारी रामको विजय होगी, तब मुझे बड़ा हृपं होगा । इस प्रकार वाक्यका संशोधन करके सीताने दशाननको जीत लिया ॥८२॥ ८३॥ तब रावण तलवार उठाकर सीताको डराते हुए उनपर क्षपटा । उस समय मन्दोदरीने उसका हाथ पकड़कर रोका और कहा कि तुम्हारे पास ऐसी बहुत-सी स्त्रियें हैं । तुम इस बेचारी कमजोर तथा गरोब मानुषी नारीका छोड़ दो, तब रावणने नयानक मुखवाली दाक्षियोंको आज्ञा दी कि सीता जिस तरह कामभावस मेरे वशम हो, वैसा तुमलोग डराकर अथवा समझाकर शीघ्र यत्न करो ॥८४-८६॥ यदि इस महानेक भातर यह मेरा शत्र्यापर न आये तो इस मानुषीको मारकर मेरे जलपानके लिए तैयार करना, तब मैं इस खा जाऊंगा ॥८७॥ सीता फिर दशमुख रावणसे कहने लगी—जब तू बाल्यावस्थामें मुझे पिटारी सहित यहाँ ल आया था ॥८८॥ उस समय जो बात मैंने कही थी, क्या उसे भूल गया ? मैंने कहा था कि अभी मैं जाती हूँ, परन्तु फिर यहाँ शीघ्र ही आऊंगी ॥८९॥ और वह इसलिए कि मैं भाई, पुत्र तथा सेना सहित तुझे मार डालूँगी । अब मैं अपने वचन सत्य करने आयी हूँ ॥१०॥ रामके हाथों तुझको और तरे बन्धुआ तथा सनाका मरवाकर अयोध्यापुरी जाऊंगी । पुनः मैं तीसरी बार भी तेरी नगरीमें आऊंगा ॥११॥ उस समय मातामह अद्यति नानाके घरमें स्थित निकुम्भके पुत्र पौष्ट्रकों तथा द्वीपांतरमें रहनवाल सौ सिरवाले रावणको जो कि पौष्ट्रककी सहायतां लज्जामें आयगा, तीसरी बार आकर उन दोनोंको मारेंगी ॥१२॥ १३॥ पश्चत् अपने स्वानको जाकर फिर चौथी बार मैं शीघ्र आऊंगा और कुम्भकर्णके पुत्र वीर मूलकासुरका वध करेंगी ॥१४॥ पुष्पक विमानसे यहाँ आकर मैं उसे रणांगणमें मारेंगी ॥१५॥ पूर्वकालम जा ब्रह्माजीने कहा था, वह भी स्मरण कर ले । जिनके कहनेसे तूने कौसल्या और राजा दशरथका हरण किया था ॥१६॥ देवयोगसे फिर तूने उन्हें अयोध्यामें छुड़वा दिया था । इससे पता लगता है कि तू मरना चाहता है । इसोलिए तूने मुझसे प्रेम करना चाहा है ॥१७॥ अब घर जा और सुखसे भोजन कर । राम तुझे शाश्वत मारेंगे । इस प्रकार सीताके वाक्यरूपी बाणोंसे विदीणहृदय हाकर दशानन लज्जासे चुपचाप अपने घर चला गया । दशाननके घर जानेपर उसकी जात्तासे राक्षसियों अपने भयानक शब्दोंसे, कूर वाक्योंसे, मुँह फाड़कर, तलवार तथा

निवार्य त्रिजटानाम् ती विभीषणप्रिया अनुगा । ताः सर्वा राक्षसीर्वेगाद्वाक्यमाहाथ सादरम् ॥१०१॥
 न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम् । सुचिहैं राववः स्वप्ने मया दृष्टोऽद्य जानकीम् ॥१०२॥
 मोचयामास दग्धवेमा लंकां हत्वा तु रावणम् । रावणो गोमयहदे तैलाभ्यक्तो दिगंबरः ॥१०३॥
 मया ऽद्य दृष्टः स्वप्ने हि तस्मादेनां न साहसम् । कायं सेव्या सदा चेयं रामादभयदायिनी ॥१०४॥
 युष्माभिदुःखिता चेद्वो भवेयं वातयिष्यति । इति तत्त्रिजटावाक्यं श्रुत्वा तस्युर्भयाकुलाः ॥१०५॥
 तृष्णीमेव तदा सीता दुःखात्किञ्चिदुत्त्राच सा । इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत् ॥१०६॥
 दीर्घा वेणी ममात्यर्थमुद्भव्याय भविष्यति । यन्मया स्वीयवाग्वार्णलङ्घणस्ताडितः पुरा । १०७॥
 तस्मादिमाः पीडयन्ति भोक्ष्यते स्वकृतं मया । मया विशगः सौमित्रिखासितो गौतमीतटे ॥१०८॥
 प्रायश्चित्तं करोम्यद्य तस्य त्यक्त्वा स्वजीवितम् । एवं निश्चितवृद्धिं तां मरणायाथ जानकीम् ॥१०९॥
 दृष्टा शनैर्वायुपुत्रो रामवृत्तं न्यवेदयत् । आसाकेतनिर्गमाच्च स्वसीतादर्शनावधि ॥११०॥
 सविस्तारं क्रमेण त्र सीतातोपार्थमादरात् । सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा साश्र्वमानसा ॥१११॥
 किं मयेदं श्रुतं व्योम्निं स्वप्नो दृष्टोऽथवा निशि । येन मे कर्णपीयूषवचनं समुदीरितम् ॥११२॥
 स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः । तच्छ्रुत्वा तत्पुरो गत्वा नत्वा तामब्रवीत्पुनः ॥११३॥
 रामदूतो ददौ तस्यै राघवस्यांगुलीयकम् । तां राममुद्रिकां दृष्टा नत्वा तामब्रवीत्कपिम् ॥११४॥
 सर्वं कथय तद्वृत्तं यथा दृष्टं त्वयाऽत्र हि । तदा तां सांत्वयामास रामो मत्स्कंधसंस्थितः ॥११५॥
 बानरेन्द्रैः समागत्य हत्वा रावणमाहवे । त्वां नेष्यति मयं सीतेत्यजत्वं मम वाक्यतः ॥११६॥

अंगुलियोंके संकेतोंसे सीताको डराने लगीं ॥ ९८-१०० ॥ उसी समय विभीषणकी प्रिया अनुगामिनी त्रिजटा राक्षसीने उन सबको ऐसा करनेसे रोका और उन सबको समझाकर कहा कि इस रोती हुई जानकीजीको तुम लोग डराओ नहीं, प्रत्युत नमस्कार करो । मैंने आज स्वप्नमें रामको सुन्दर चिह्नोंसे युक्त देखा है और यह भी देखा है कि उन्होंने जानकीको छुड़ाकर लड्ढाको जलाया तथा रावणको मार डाला है । तेल लगाये हुए रावण गोवरके गढ़हेमें गिर गया है ॥ १०१-१०३ ॥ मैंने आज वह स्वप्न देखा है । इस कारण इन्हें सतानेका साहस नहीं करना चाहिए । रामसे बभय दिलानेवाली इस जानकीकी तुम्हें सेवा करनी चाहिए ॥ १०४ ॥ यदि तुम लोग इसे दुःख दोगी तो यह अपने पति रामके द्वारा तुम्हें मरवा डालेगी । त्रिजटाके इस वाक्यको सुनकर सब राक्षसियें व्याकुल होकर चुप हो गयीं ॥ १०५ ॥ उन सबके सो जानेपर दुःखित होकर सीता धोरे-धीरे कहने लगीं कि इसी समय मेरा मरण किस उपायसे हो सकता है ॥ १०६ ॥ हाँ, यह मेरे सिरके बालकी लम्बी लट फाँसा लगानेके लिए बहुत अच्छी तरह काम आयेगी । उस समय जो मैंने बचनरूपी बाणों-से लक्षणको बोचा था ॥ १०७ ॥ उसीके फलस्वरूप ये राक्षसियें मुझे सता रही हैं । यह मैं अपने किये हुए कर्मोंका फल भोग रहा है । मैंने गोमती नदीके किनारे सुमित्राके निर्दोष पुत्र लक्षणको जो घमकाया था ॥ १०८ ॥ उसका मैं आज प्राण देकर प्रायश्चित्त करूँगी । इस प्रकार मरनेका निश्चय कियेहुए जानकीको देखकर वायुपुत्र हनुमान् धोरे-धीरे रामका वृत्तान्त सुनाना प्रारम्भ किया । उन्होंने रामके अयोध्यासे चलनेके समयसे लेकर साताको देखने तकका सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक क्रमसे सीताके संतोषके लिए सुना दिया । वह सब वृत्तान्त सुनकर सीता आश्वर्यंचकित होकर सोचने लगीं कि वह यह मैं कोई आकर्षणाणा सुन रहो हैं अववा रात्रिके समयका स्वप्न देख रही हैं । जिसने मेरे कानोंके लिए अमृतके समान यह वचन सुनाया है ॥ १०९-११२ ॥ वह प्रियवादी मेरे सामने आकर दर्शन दे । यह सुना तो हनुमान् उनके सामने प्रकट हो गये और नमस्कार करके उन्हें रामका वृत्तान्त पुनः सुनाया ॥ ११३ ॥ फिर विश्वास दिलानेके लिए रामकी अंगूठी निकाल कर सीताको दी । रामकी मुद्रिकाको देख तथा नमस्कार करके सीता बोलीं—॥ ११४ ॥ हे कपि ! जैसा कि तुमने देखा है, मेरा सब हाल जाकर रामसे कह देना । तब हनुमान् सीताको आश्वासन देकर कहने लगे कि राम मेरे कन्धेपर सवार हो बानरसेनापतियोंके साथ यहाँ आकर युद्धमें रावणको मारेंगे और आपको

ततः सीताप्रत्ययार्थं रूपं स्वं दर्जयन् कपिः । ततः पुनः प्रत्ययार्थं सीतायै राघवोदितम् ॥११७॥
 मनःशिलायास्तिलकं चित्रकूटगिरौ कृतम् । कपिस्तत्कथयामास पूर्ववृत्तं सविस्तरम् ॥११८॥
 ततस्तुष्टां जानकीं तां मारुतिर्वाक्यमन्वीत् । अनुजां देहि मे मातस्त्वभिज्ञानं ददस्व माम् ॥११९॥
 सा तं चूडामणिं पित्रा दत्तं कैशांतरस्थितम् । निष्कास्य तत्करेदत्त्वा पूर्वं काकेन यत्कृतम् ॥१२०॥
 चित्रकूटगिरौ धृतं कथयामास तत्कपिष् । ततो नत्वा रामपत्नीं चिंतयामास चेतसि ॥१२१॥
 स्वामिकार्यं कृतं चैतदन्यत्किञ्चित्करोम्यहम् । इति निश्चित्य मनसा जानकीं पुनरव्रीत् ॥१२२॥
 मातर्मेऽतीव धूम्रोधस्त्वद्य विकल्पदो महान् । अस्मिन्वनेऽतिमधुरः फलसंघोऽतिदुर्लभः ॥१२३॥
 तत्वाज्याऽद्य सीतेऽहं करिष्ये भक्षणं ध्रुवम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा जानकी स्वीयकंकणम् ॥१२४॥
 निष्कास्य हस्तात्तं प्राह गृह्णीष्वेदं प्लवंगम । अनेन फलसंभारान् लंकाहड्डात्प्रगृह्ण च ॥१२५॥
 धुक्त्वापीत्वासुखं चलुवनेऽस्मिन्ब्रोदयस्व मा । तदा कपिः पुनः प्राह परहस्तफलानि हि ॥१२६॥
 नाहं भुजामि सीते मे व्रतमस्ति व्रजाम्यहम् । व्रजंतं मारुतिं दृष्ट्वा सीता वचनमन्वीत् ॥१२७॥
 भो वालक कपिश्चेष्ट रावणोऽस्ति वनाधिपः । न शक्तिर्वचनं ते कथं त्वं भक्षयिष्यमि ॥१२८॥
 तत्स्या वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह जानकीम् । श्रीरामेति परं मंत्रशस्त्रं मे हृदयांतरे ॥१२९॥
 तेन सर्वाणि रक्षांसि तृणरूपाणि सांप्रतम् । तदा तं जानकी प्राह पतितान्यत्र वै भुवि ॥१३०॥
 धुक्षांदोलनमात्रेण निषेतुथं फलानि हि । भक्षयामास तान्येव सुफलानि क्षणेन सः ॥१३२॥
 ततो धुक्षान्समत्पाद्य लांगूलेन स मारुतिः । क्षिप्त्वा तानन्यवृक्षेषु समस्तानि फलानि वै ॥१३३॥
 पातयामास भूम्यां तु भक्षयामास तानि सः । भक्षितानि समस्तानि फलानि वनजानि हि ॥१३४॥

दृढ़ा ले जावेंगे । हे सीते ! मेरे कहनेसे आप निर्भय रहें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ तब हनुमानुने सीताको विश्वास दिलानेके लिए अपना असली स्वरूप दिखाया । तदनन्तर और भी विश्वासके लिए सीताको रामका कहा और चित्रकूटपर किया मैनसिलके तिलक आदिका किस्सा भी सुना दिया । साथ ही और भी पहलेका वृत्तान्त सीताको सुनाया ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ तब भली भाँति संतुष्ट जानकीसे हनुमानने कहा—हे माता ! अब आप मुझे जानेकी आज्ञा दें तथा अपना कोई चिह्न भी दें ॥ ११९ ॥ तब सीताने पिताकी दी हुई चूडामणि सिरके बालोंमें निकालकर उनके हाथोंमें दी और पूर्वमें चित्रकूटगिरिपर काक (जयन्त) का किया हुआ वृत्तान्त हनुमानको सुनाया । तदनन्तर रामपत्नी सीताको नमस्कार करके हनुमान् मनमें सोचने लगे—॥ १२० ॥ १२१ ॥ मैंने स्वामीका कहा हुआ काम तो कर दिया, पर और भी कुछ करते चलना चाहिए । ऐसा निश्चय करके वे जानकीसे बोले—॥ १२२ ॥ हे माता ! आज यकावटके साथ बड़ी भूख लगी हुई है । इस बनमें अतिशय हुन्में एवं अति मधुर फलोंका समूह लगा हुआ है ॥ १२३ ॥ सो आपकी आज्ञासे मैं इनको अवश्य खाऊँगा । वह सुना तो जानकीने हाथसे उत्तारकर अपना कंकण उनको दिया और कहा—हे प्लवङ्गम ! यह लो और लहड़ाकी दूकानोपरसे फलोंके ढेर खरीद लो और उन्हें खाकर जाओ । परन्तु इस बनके फल न तोड़ना । तब हनुमानुने कहा कि दूसरोंके हाथसे तोड़े फल मैं नहीं खाता । हे सीते ! ऐसा मेरा व्रत है । अच्छी बात है, रहने दो । मैं ऐसे ही जाता हूँ । जाते हुए मारुतिको देखकर सीताने कहा—॥ १२४-१२७ ॥ हे बालक ! हे कपियोंमें धोष्टु कपि ! इस उपवनका अधिपति रावण है । तुम्हारेमें इतनीं शक्ति नहीं है कि तुम उसको जीत सको तो फल कैसे खाओगे ? ॥ १२८ ॥ यह सुनकर मारुतिने जानकीसे कहा कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम' वह मन्त्रहीनी अमोघ शक्ति विद्यमान है ॥ १२९ ॥ उसके बलपर मैं इन सब राक्षसोंको तृणवत् समझता हूँ । तब जानकीने कहा कि जो फल पृथ्वीपर गिर पड़े हों ॥ १३० ॥ उनको तुम चुपचाप खा लो, पेड़परसे न तोड़ना । 'बहुत अच्छा' कहकर हनुमानुने अपनी पूँछसे बाँधकर वृक्षोंको हिलाया ॥ १३१ ॥ वृक्षोंको हिलानेसे सब जल नीचे गिर पड़े । उन्होंने उन सब सुन्दर फलोंको क्षणभरमें खा लिया ॥ १३२ ॥ फिर हनुमानुने उन वृक्षोंको

दृष्टा तं दुदुरुर्धतुं मारुतिं वनरक्षकाः । राक्षसानागतान् दृष्टा वृक्षैस्तोस्ताड्यत्कपिः ॥१३५॥
 उत्पाद्याशोकवनिकां निर्वृक्षामकरोत्क्षणात् । सीताश्रयनगं हयकृत्वा वनं शून्यं चकार सः ॥१३६॥
 वभंज चैत्यप्रासादं हत्वा तद्रक्षकान् क्षणात् । ततस्ता राक्षसीः सर्वा वनभंगं निरीक्ष्य च ॥१३७॥
 पप्रच्छुर्जानकीं सर्वाः कोऽयं कस्य कुतस्तिवह । ताः सर्वा जानकी प्राह राक्षसाः कामरूपिणः ॥१३८॥
 विचरंति मुदा भूम्यां वेद्यथं भिज्ञुरुपिणा । तदा हृता पञ्चवत्यां रावणेन हि तद्वनात् ॥१३९॥
 तस्माज्ज्ञेयस्तु युष्माभिः कोयं मा पृच्छतेथ किम् । इति तस्या वचः श्रुत्वा राक्षस्यो भयविहूलाः ॥१४०॥
 दशाननं हि तद्वृत्तं ययुः शीघ्रं निवेदितुम् । एतस्मिन्बांतरे प्रातर्मैचके कटिबंधनम् ॥१४१॥
 निरीक्ष्य रावणश्चाथ गयस्य चकितस्तदा । भुक्तां मन्दोदरीं ज्ञात्वा तां हंतुं खड्गमाददे ॥१४२॥
 तदा निवारितः स्त्रीभिः स्त्रीहत्यां माकरोत्विति । तदा कुद्धो दशग्रीवस्तुष्णीं गत्वा गयगृहम् ॥१४३॥
 अवधीशिद्रितं वीरं खड्गेन स्वगृहं ययौ । तदा विभीषणः प्रातर्बन्धोर्वर्त्तं स्वमंचके ॥१४४॥
 दृष्टा तां स रमां हंतुं दुदुवे वर्जितस्तदा । स्त्रीभिर्धृत्वा तस्य स्त्रीहत्या गहिता त्विति ॥१४५॥
 विभीषणस्तदारभ्य चंधोत्त्रासममन्यत । एवमासीच लंकायां कौतुकं कपिना कुतम् ॥१४६॥
 अथ वेगेन राक्षस्यः समासंस्थं दशाननम् । वृत्तं निवेदयामासुः सखलद्वाण्या वनोद्धवम् ॥१४७॥
 तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधात्कपिनोत्पाटितं वनम् । वनपार्लं समाहृतं जम्बुमालिनमन्त्रवीत् ॥१४८॥
 राक्षसैर्नियुतैर्च्छिं कीशं धृत्वा समानय । तथेति स ययौ वेगादशोकवनिकां प्रति ॥१४९॥
 दृष्टा सैन्यं दीर्घनादं चकार कपिकुंजरः । ततस्ते राक्षसाः शर्वनिजहृवर्वानीरोत्तमम् ॥१५०॥

पूँछसे बाँध-बाँधकर गिरा दिया । उनको गिराकर दूसरे वृक्षोंके फल खाये ॥१३३॥ उन्हें भी गिराकर तीसरे वृक्षके समस्त फल खा लिये । ऐसा करके उन्होंने उस उपवनके सब फलोंको खा डाला ॥१३४॥ यह देखकर वनके रक्षकगण उन्हें पकड़ने दीड़े । हनुमानने राक्षसोंको आते देखकर उन्हें वृक्षोंसे ही पीटना आरम्भ कर दिया ॥१३५॥ इस प्रकार ज्ञानभरमें उन्होंने सारे अशोकवनको वृक्षोंसे रहित कर दिया । केवल सीताके आश्रयभूत एक वृक्षको छोड़ और सब उपवनको उजाड़ डाला ॥१३६॥ बादमें उन्होंने वहाँके बड़े-बड़े महलोंको गिरा दिया और उनके रक्षकोंको मार भगाया । उधर वे राक्षसिये वनभज्जनोंको देखकर सीतासे पूछते लगाए कि यह कौन है, किसका दूत है और कहाँसे आया है? सीताने उन दबसे कहा कि बहुतसे यथेच्छ रूप धारण करतेवाले राक्षस पृथ्वीपर आनन्दसे धूमा करते हैं । उन्हींमेंसे कोई होगा । इस बातका पता मुझे तबसे लगा है, जब भिक्षुकका रूप धारण करके रावण मुझे पंखवटीको बनसे हर लाया ॥१३७-१३९॥ सो तुम्हीं लोग इसका पता लगाओ कि यह कौन है । मुझसे यह पूछती हो ? उनके इस बचन को सुनकर राक्षसिये भयसे विहूल हो गयीं ॥१४०॥ वह हाल कहनेके लिए वे पीछे दशाननके पास दौड़ीं । इधर प्रातःकालके समय रावण अपनी शाव्यापर गयका कमरवन्द देखकर चकित हो गया । रावणने सोचा कि गयने यहाँ आकर मन्दोदरीको भोगा है । यह शंका करके उसने मन्दोदरीको मारनेके लिये तलवार उठायी ॥१४१॥१४२॥ तब दूसरी स्त्रीयोंने 'स्त्रीकी हत्या नहीं करनी चाहिए' यह कहकर उसे रोका । तब कुद्ध रावणने चूपकेसे गयके घर जाकर सोये हुए ही वीर गयको तलवारसे काट डाला और अपने घर लौटा । उधर विभीषणने प्रातःकाल अपने भाई रावणका वस्त्र अपने पलङ्गपर देखा ॥१४३॥१४४॥ यह देखकर वह अपनी स्त्री रमाको मारने दौड़ा । तब अन्य स्त्रीयोंने उसका हाय पकड़कर रोक लिया और कहा कि स्त्री-हत्या करना बड़ा भारी निन्दित कर्म है ॥१४५॥ तथापि विभीषण उस दिनसे अपने भाईसे डरने लगा । इस प्रकार लङ्घामें हनुमानने बड़े बड़े कौतुक किये ॥१४६॥ उन राक्षसियोंने भी दौड़ी-दौड़ी जाकर सभामें स्थित रावणको घबराहटके कारण टूटे-टूटे शब्दोंमें अशोकवनके विनाशका सब वृत्तान्त सुनाया ॥१४७॥ कपिके हातों वनभज्जनका समाचार सुनकर कुद्ध रावणने उस वनके रक्षक जम्बुमालीको बुलाकर कहा—॥१४८॥ तुम वीस हजार राक्षसोंको लेकर जाओ और उस बानरको पूकड़ लाओ । 'तथास्तु' कहाँ तर वह शीघ्र अशोकवनको

तत उत्प्लुत्य हनुमान् तोरणेन समंततः । निष्पिपेष क्षणादेव मशकानिव युथपः ॥१५१॥
हत्वा तान् राक्षसान् सर्वास्ततो वेगेन मारुतिः । तालवृक्षं समुत्पाद्य जघान जंबुमालिनम् ॥१५२॥
तान् सर्वान्निहताञ्छ्रुत्वा पञ्चसेनापतीन्पुनः । रावणः प्रेषयामास हतास्ते तोरणेन च ॥१५३॥
वायुपुत्रेण वेगेन लक्षराक्षससंयुताः । स तानपि मृताञ्छ्रुत्वाऽक्षं पुत्रं प्रैषयत्तदा ॥१५४ ।
कपिना मारितः सोऽपि सर्वन्यो मुद्दरेण च । ततः स प्रेषयामास पुत्रमिद्रजितं पुनः ॥१५५॥
ततः स रथमारुदः कोटिराक्षसवेष्टितः । युद्धं चकार कपिना शख्वैरस्त्वः सुदुर्घरैः ॥१५६॥
तदा पुच्छेन सैन्याय कृत्वा प्राकारमुत्तमम् । निष्पिपेष तोरणेन राक्षसान्मारुतिः क्षणात् ॥१५७॥
ततो वृक्षं समुत्पाद्य मेघनादमताङ्गयत् । वृक्षेण भिन्नसर्वांगो मेघनादोऽविशद्गुहाम् ॥१५८॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रार्थयामास मारुतिम् । ब्रह्मास्त्रं मानयन्मेऽद्य त्वं लङ्घां याहि रावणम् ॥१५९॥
तथेत्यंगीचकरामौ मेघनादं ययौ विधिः । विधिः प्राह मेघनादं क गतोऽद्य पराक्रमः ॥१६०॥
गच्छ मेऽस्त्रेण तं बद्ध्वा पितुग्रे समानय । स ब्रह्मवचनं श्रुत्वा मेघनादः पुनर्ययौ ॥१६१॥
ब्रह्मास्त्रेणाथ बद्ध्वा तमानयामास रावणम् । ततो रावणवाक्येन प्रहस्तः प्राह मारुतिम् ॥१६२॥
कस्त्वं कृतः समाप्तातः प्रेषितः केन वा वद । ततः स रामवृत्तं हि कथयामास विस्तरात् ॥

ततस्तं वोधयामास रावणं वायुनन्दनः ॥१६३॥

विसुज्य मौर्ख्यादिघृदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ।

सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रवान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥१६४॥
यावन्नगाभाः कपयो महावला हर्षद्रतुल्या नखदंष्ट्रोधिनः ।

गया ॥ १४९ ॥ उसकी सेनाको देखकर कपियोंमें कुञ्जर (हायी)के समान और हनुमान्ने बहुत जोरसे गर्जन किया । तब राक्षसोंने बानरोत्तम हनुमान्को शस्त्रोंसे मारना आरम्भ कर दिया ॥ १५० ॥ हनुमान् भी रणमें कूर पड़े और मच्छरोंकी तरह उन सेनापतियों तथा राक्षसोंको चारों ओरसे तोरणके द्वारा क्षणभरमें पीस डाला ॥ १५१ ॥ उन सबको मारनेके बाद मारुतिने वेगसे एक ताङ्का वृक्ष उखाइकर उससे जम्बुमालीको समाप्त कर दिया ॥ १५२ ॥ उन सबको मारे गये सुनकर रावणने पाँच और सेनापतियोंको भेजा । हनुमान्ने तोरण (मुद्रर) से उन्हें भी मार डाला ॥ १५३ ॥ वायुपुत्र हनुमान्ने लाखों राक्षसोंके साथ उन पाँच सेनापतियोंको भी मार डाला, यह सुनकर रावणने अपने अक्षयनामक पुत्रको भेजा ॥ १५४ ॥ तब हनुमान्ने उसको भी मुद्ररसे मार डाला । अब रावणने अपने इन्द्रजित् सूत मेघनादको भेजा ॥ १५५ ॥ वह एक करोड़ राक्षसोंसे वेष्टित हो तथा रथपर सबार होकर बहाँ आया । वह अपने दुर्धर्षं शस्त्रास्त्रोंसे हनुमान्के साथ युद्ध करने लगा ॥ १५६ ॥ हनुमान्ने सेनाको रोकनेके लिए अपनी पूँछका ही गढ़ बनाया और तोरणसे उन सबको क्षणभरमें पीस डाला ॥ १५७ ॥ बादमें एक वृक्ष उखाइकर उससे मेघनादको मारा । जिससे धायल होकर वह एक गुफामें जा घुसा ॥ १५८ ॥ उस समय ब्रह्माने हनुमान्से प्रार्थना की कि तुम मेरे ब्रह्मास्त्र (ब्रह्मपाश) का मान रक्खो और उसमें बाँधकर लंकामें रावणके पास जाओ ॥ १५९ ॥ उन्होंने 'तथास्तु' कहकर अङ्गीकार कर लिया । तब ब्रह्मा मेघनादके पास गये और कहा—हे मेघनाद ! तुम्हारा पराक्रम आज कहाँ चला गया ? ॥ १६० ॥ अब मेरे पाशसे उन बानरको बाँधकर अपने पिताके पास ले जाओ । ब्रह्माके बचनको सुनकर मेघनाद निर बहाँ गया और हनुमान्को ब्रह्मपाशसे बाँधकर रावणके पास ले आया । तब रावणके कथनानुसार प्रहस्त उनसे पूछने लगा—॥ १६१ ॥ १६२ ॥ बतला तू कौन है, कहाँसे आया है और तुम्हे किसने भेजा है ? तब विस्तारसे रामका वृत्तान्त सुनाकर हनुमान् रावणको समझाने लगे—॥ १६३ ॥ ओ रावण ! मूर्खतासे प्राप्त कुञ्जभावको तू हृदयसे निकाल दे और शरणागतोंके प्रिय रामका भजन कर । यदि सीताको आगे करके पुत्र तथा बान्धवोंके साथ जाकर रामको नमस्कार करेगा तो तू निर्भय हो जायगा ॥ १६४ ॥ सिंहके समान महाबलवान्

लंकां समाक्रम्य विनाशयन्ति ते तावदद्रुतं देहि रघूतमाय ताम् ॥१६५॥
जीवन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुरेन्द्रेनपि शंकरेण ।
न देवराजांकगतो न मृत्योः पाताललोकानपि संप्रविष्टः ॥१६६॥

शुभं हितं पवित्रं च वायुपुत्रवचः खलः । प्रतिज्ञग्राह नैवासौ त्रियमाण इवौषधिम् ॥१६७॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा मारुतिं प्राह रावणः । विनिजिता येन देवास्तस्य मे पौरुषं त्वया ॥१६८॥
न दृष्टं बलगसे व्यर्थं शृणु किंचिद्वदामि ते । पंचाङ्गपाठकथायं पश्य ब्रह्मा कृतो मया ॥१६९॥
प्रतीहारस्त्वयं सूर्यः शशी छत्रधरः कृतः । वरुणोऽयं जलग्राही मार्जकः पवनस्त्वह ॥१७०॥
अरिनः कृतोऽयं रजको मालाकारः शचीपतिः । दण्डपाणिर्वर्मशात्र दास्यश्वात्र सुरस्त्रियः ॥१७१॥
मार्तंडो नापितश्वायं गणपः खररक्षकः । मंगलाद्या ग्रहाः सप्त मे सोपानायितासने ॥१७२॥
शिशुसेवातत्परेण पष्टी देवी मया कृता । आंदोलितश्च कैलासः कुवेरोऽपि विनिजितः ॥१७३॥
कथं ममाग्रे विलपस्य भीतवत्प्लवं गमानामधमोऽसि दुष्टधीः ।

क एष रामः कतमो वनेष्वरो निहन्मि सुग्रीवयुतं नराधमम् ॥१७४॥
हत्युक्त्वा हनुमुद्भुक्तस्तं दशास्यः सभास्त्यितः । तदा निवारयामाम रावणं स विभीषणः ॥१७५॥
परदूतो न हन्तव्यं हत्यादिवचनैस्तदा । ततः क्रोधसमाविष्टो रावणो लोकरावणः ॥१७६॥
दूतानाज्ञापयामास छेदनीयं तु लांगुलम् । तद्रावणवचः श्रुत्वा राक्षतास्ते सहस्रशः ॥१७७॥
स्त्रायुधैऽच्छेदयामासुः कुठारककचादिनिः । आयुधान्येव शतशस्तपुच्छाघातमात्रतः ॥१७८॥
बभूतुः श्रुतचूर्णानि तस्य रोमणोऽपि न व्यथा । तन्निक्षय दशास्यः स मारुतिं वाक्यमवर्तीत् ॥१७९॥
न वीरा गोपयन्त्यत्र स्वीयं मृत्युमपि क्वचित् । अतस्त्वं बद पुच्छस्य येन घातोऽद्य ते भवेत् ॥१८०॥

और नखों तथा दीतोंसे लट्ठनेवाले वानर आकर लंकामें प्रवेश नहीं करते, उसके पहले ही तू सोताको ले जाकर रामको दे दे ॥ १६५ ॥ अब तुझे राम जीवित नहीं छोड़ेंगे । चाहे तेरी रक्षा सुरेन्द्र करें, चाहे शंकर करें, चाहे तू अपना प्राण बचानेके लिये देवराजकी शरणमें जा । चाहे यमलोक या पाताललोकमें जाकर छिप, चाहे कुछ कर ले ॥ १६६ ॥ किन्तु उस दुष्ट रावणने हनुमान्तकी शुभ, हितकारी तथा पवित्र वातकों नहीं माना । जैसे मुमूर्षुं पुरुष औषधि नहीं खाता ॥ १६७ ॥ रावणने हनुमान्तकी वात मुनकर कहा कि मैंने सब देवताओंको जीत लिया है । मेरे पुरुषार्थको तू नहीं जानता । इसोलिये व्यर्थं बकवास कर रहा है । सुन मैं तुझे कुछ सुनाता हूँ । देख, ब्रह्माको मैंने पञ्चाङ्गपाठक बना दिया है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ सूर्यको प्रतिहारी, चन्द्रमाको छवधारी, वरुणको जल भरनेवाला, पवनको झाड़ लगानेवाला, अग्निको धोबी, शचीपति इहको माली, दण्डधारी यमराजको द्वारपाल, देवताओंकी स्त्रियोंको दौसियें, मार्तंडको नाई, गणपतिको गधोंका रक्षक सर्ईस और मंगल-बुब्र आदि सातों ग्रहोंको मैंने अपने बासनकी सीढ़ियें बना लिया है । वष्टी देवी कार्यायनीको मैंने बच्चोंको खेलानेवाली घाई बनाया है । कैलासको मैंने ही हिलाया था । कुवेरको भी मैंने जीत लिया है ॥१७०-१७३॥ हे प्लवङ्गमोंमें अधम वानर ! तु मेरे आगे क्यों तृया प्रलाप करता है ? तू बड़ा ही मूर्ख दोखता है । अरे ! वनवासी राम मेरे सामने क्या चीज है । मनुष्योंमें नीच रामको तो सुग्रीव सहित मैं मार ही डालूँगा ॥ १७४ ॥ इतना कहकर दशानन रावण बीच सभामें उनको मारने दौड़ा । तब विभीषणने उसको रोककर कहा कि दूसरेके दूतको मारना अन्याय है । पश्चात् लोगोंको रुलानेवाले रावणने क्रोध करके तिपाहियोंको आज्ञा दी कि इस वानरकी पूँछ काट दालो । रावणकी आज्ञा पाकर हजारों राक्षस अपने-अपने कुल्हाड़ों और क्रकच (आरा) आदि हथियारोंसे उनको पूँछ काटने लगे । इसी समय हनुमान्तजीने तनिक अपनी पूँछ हिला दी । उसके हिलनेमात्रसे उन हथियारोंके संकड़ों दुकड़े होकर गिर पड़े ॥१७५-१७६॥ वे चूर-चूर हो गये, परन्तु हनुमान्तजीका बाल भी बाँका नहीं हुआ । यह देखकर दशानन मारहतिसे कहने लगा - ॥ १७६ ॥ वीर पुरुष अपनी मृत्युके उपायको भी छिपाकर नहीं रखते । इसलिए साफ-साफ बता दे कि तेरी पूँछ किस उपायसे नष्ट होगो ॥१८०॥

तदाऽपरत्वं स्वं प्राह कपिस्तच्च मृपेति सः । मत्वा दशास्यस्तं प्राह पुनः सत्यं बदेति च ॥१८१॥
 तदा स मारुतिस्तूष्णीं क्षणं चित्ते व्यचितयत् । मत्पितुश्च सखा वह्निस्तस्मान्नास्ति भयं मम ॥१८२॥
 तस्मान्पुच्छं दीपयित्वा लंकां दग्धां करोम्यहम् । ततस्तं रावणं प्राह मारुतिः सदसि स्थितः ॥१८३॥
 पुच्छं मे वह्निना दग्धं भविष्यति न संशयः । तत्तस्य वचनं श्रत्वा रावणो निजकिंकरान् ॥१८४॥
 आज्ञापयामास पुच्छं दीपयित्वा प्रयत्नतः । लङ्कायां दर्शनीयोऽयं दृष्ट्येनं मङ्ग्यं भवेत् ॥१८५॥
 सर्वेषां मद्रिपूणा च तथा चक्रस्त्वरान्विताः । तैलाक्षैः शणपद्मैश्च राक्षसा वसनैरपि ॥१८६॥
 पुच्छं संवेष्यामासुस्तदा पुच्छं व्यवर्द्धत । ततो वसनहड्डात्तु वस्त्रकोशान्विलुण्य च ॥१८७॥
 तत्पुच्छं वेष्यामासुर्गृहवस्त्रैरनेकशः । ततः पुरुपनारीणां लंकास्थानां नृपाज्ञया ॥१८८॥
 वलादाच्छिद्य वस्त्राणि चक्रुः सर्वान्दिग्मवरान् । ततः शश्यामंडपांश्च कंचुकीः कंचुकानपि ॥१८९॥
 पौराणां राजगेहाच्च ते वस्त्राणि समानयन् । दृष्ट्याऽपूर्तितु पुच्छस्य सभास्थानां नृपस्य च ॥१९०॥
 वस्त्रमात्रैः समस्तैश्च लांगूलं वेष्यंस्तदा । ध्वजोष्णीषपताकाभिर्विग्राणां वसनैरपि ॥१९१॥
 मंदोदर्यादिवस्त्रैश्च भिक्षणां वसनादिभिः । वेष्यन्कपिलांगूलं ततः सीतां ययुश्चराः ॥१९२॥
 तज्जात्वा मारुतिशापि पुच्छपूर्ति प्रदर्शयत् । तदा कोलहलथासीद्वस्त्रार्थं प्रतिसञ्चनि ॥१९३॥
 तैलार्थं च घृतार्थं च स्नेहपाशं समानयन् । नासीनिशायां दीपार्थं शिशूनामपि नो घृतम् ॥१९४॥
 आमन्द्योपरुपा नग्रा लज्जा नासीत्परस्परम् । ततस्तदीपयामासुवह्निना भस्त्रकंपनैः ॥१९५॥
 प्रदीप नाभवत्पुच्छं ततो मारुतिरब्रवीत् । यदा स्वीयमुखेनायं लज्जमानोऽय रावणः ॥१९६॥
 वह्नि प्रज्ञालयेदत्र तदा ज्ञाला भविष्यति । तन्मारुतिवचः श्रुत्वा ययावग्रे दशाननः ॥१९७॥
 यावत्पूत्कारयामास तत्पुच्छानलमाननैः । तावत्तच्छिरजाः इमश्रुकूर्चां दग्धा तदाऽभवन् ॥१९८॥

तिसपर जब हनुमानने अपनेको अमर बतलाया तो भी बातको सच न मानकर रावणने फिरसे कहा कि सच-सच बतला ॥ १८१ ॥ तब मारुति मनमें विचारने लगे कि अग्नि मेरे पिताके मित्र हैं । इसलिये मुझे डरनेकी कोई बात नहीं है ॥ १८२ ॥ इसलिए अपनी पूँछ जलवाकर मैं लड्डाको ही जला डालूँगा । यह विचारकर सभामें स्थित रावणसे हनुमानने कहा— ॥ १८३ ॥ मेरी पूँछ अग्निसे जल सकती है, यह पक्की बात है । यह सुनकर रावणने अपने नौकरोंको बुलाकर आज्ञा दी कि प्रयत्नपूर्वक इसकी पूँछ जलाकर इसे नगरभरमें घुमाकर दिखला दो । जिससे कि समस्त शत्रुओंको मेरा डर लगते लगे । नौकरोंने भी वैसा ही किया और शोध ही राक्षसोंने सन तथा वस्त्रोंको तेलमें भिगोकर पूँछपर लपेट दिया । वस्त्र जब कुछ कम पड़ गये, तब बाजारके गोदामोंसे कपड़े चुराकर धरके वस्त्र लाकर और रावणको आज्ञासे उन्होंसे लंकाके नर-नारियोंके वस्त्र छीनकर हनुमानको पूँछमें लपेटा । ऐसा करके उन्होंने सारे नगरके लोगोंको नंगा कर दिया । तथापि जब पूँछ नहीं ढूँकी तो शश्याके मण्डप (मशहरी), कंचुकियोंके चोंगे, पुरवासियों तथा राजाके महलोंके वस्त्र लाकर लपेट दिये । तिसपर भी जब पूरा नहीं पड़ा तो सभासदों तथा राजाके वस्त्र लाकर लपेट दिये गये । ध्वजाएँ तथा पताकाएँ लालाकर लपेटी गयीं । रानी मन्दोदरी, साधु-महात्माओं तथा भिक्षुकोंके वस्त्र उतार-उतारकर लपेट दिये और सीताकी भी साड़ी उतारनेके लिए कुछ दूत दौड़े ॥ १८४-१८२ ॥ वह देखकर हनुमानने पूँछ बढ़ाना बन्द कर दिया । तब प्रत्येक घरमें तेल आदिके लिए कोलाहल होने लगा । वे दैत्य सबके यहाँका धी तथा तेल उठा लाये । यहाँ तक कि किसी घरमें दीपकके लिए तेल और बालकोंके लिए भी धी नहीं बच पाया ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ समस्त स्त्री-युवराणीको लज्जा छोड़कर नज़ारा होना पड़ा । तब वे हनुमानकी पूँछ बौंकनोंसे बौंककर अग्निके द्वारा जलाने लगे ॥ १८५ ॥ परन्तु अग्नि प्रदीप्त नहीं है । उस समय हनुमानने कहा कि यदि लज्जित रावण स्वयं अपने मुखसे फूँककर जलाये तो अग्नि बल सकती है । हनुमानकी बात सुनकर रावण तुरन्त आगे बढ़ा ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ ज्यों ही उसने अपने मुखसे अग्निको फूँकना प्रारम्भ किया, ज्यों ही उसके सिरोंके बाल तथा दाढ़ी-मूँछ जल गयी ॥ १८८ ॥ रावण जब अपने

तदा चिंशुहृजैः स्वीयमुखोपरि दशाननः । ताडयद्विशांत्यर्थं जहस् राक्षसस्तदा ॥१९९॥
हास्य चकार हनुमान्स्तदा क्रुद्धः स रावणः । नीयतां मर्फटश्चायमिति दूतान्वचोऽवृत्तीत् ॥२००॥
ततो दूताः कपि निन्युर्लङ्घायां ते समंततः । पृथग्लाभिर्दृढं बदूध्वा आमयामासुरादरात् ॥२०१॥
वायघोषदीर्घशब्दैर्वेष्टितं शख्खधारिभिः । एवं दिवा सर्वलङ्घां दृष्टोऽप्नीय स मारुतिः ॥२०२॥
धृत्वाऽतिसृष्टप्रस्तुपं तु दृढवंधविनिर्गतः । यथास्थानं ब्रह्मणोऽस्त्रं तद्ययौ पूर्वमेव हि ॥२०३॥
ततः पश्चिमदिकसंस्थं लंकाद्वारं समानयत् । निष्कास्थ तोरणं द्वाराजघान द्वाररक्षकान् ॥२०४॥
हत्वा स्वरक्षकांश्चापि प्रासादेषु समंततः । ददावर्णिन स्वपुच्छेन लङ्घां दग्धां चकार सः ॥२०५॥

तदा कोलाहलश्चासीलंकायाः प्रतिष्ठनि ।

निद्रितानपि वालाँश्च त्यक्त्वा नायो गृहाद्धिः ॥२०६॥

दुदुवुः प्राणरक्षार्थं दग्धनस्त्रालकास्तदा । क्रमेण रावणादीनां प्रासादान् ज्वालयन् कपिः ॥२०७॥
तां रावणसभां दग्ध्वा जनान् पुच्छेन ताडयत् । अभवन् राक्षसा दग्धा मुखवाद्यानि चक्रिरे ॥२०८॥
तदा स रावणः क्रुद्धो राक्षसैर्देशकोटिभिः । ययौ योदृधु मारुतिना तान् सर्वान् तोरणेन सः ॥२०९॥
घातयामास पुच्छेन बदूध्वा चैकत्र कोटिशः । तथैव लीलया पुच्छं रावणस्य च मस्तके ॥२१०॥
मंताद्वय तस्वचं दग्धामकरोन्मारुतिः क्षणात् । तत्पुच्छविहिना दग्धो मूर्छितोऽभृदशाननः ॥२११॥
कपिः श्रीरामकीर्त्यर्थं रावणं न जघान सः । पतितं पितरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा दग्धानस्वराक्षसान् ॥२१२॥
आत्मनः प्राणरक्षार्थमिद्जिद्विवरं ययौ । कपिर्लक्ष्मणप्रीत्यर्थं मेघनादं जघान न ॥२१३॥
एवं सर्वान्विनिजित्य गोपुराद्वालमंडिताम् । दग्ध्वा लङ्घां सविस्तारां ययौ सागरमुत्तमम् ॥२१४॥

बीसों हाथोंसे आग बुझानेके लिए अपने मुखोंपर पटापट थप्पड़ मारने लगा । तब राक्षस जोरोंसे खिलखिलाकर हैंस पड़े ॥ १६६ ॥ हनुमान् भी हैंसने लगे । यह देखकार रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और आज्ञा दी कि इस दुष्ट वानरको पकड़ ले आओ ॥ २०० ॥ तब दूत लोग हनुमान्को बड़ी मजबूत सौकलोंसे बाँधकर से गये और नगरमें चारों ओर धुमाया ॥ २०१ ॥ धुमाते समय उनके साथ बड़े बड़े बाजे बज रहे थे । बहुतसे बालक तथा शस्त्रधारी लोग उनको धेरे हुए थे । इस प्रकार दिनमें सारी लंका देखकर सायंकालके समय हनुमान् सूक्ष्म रूप धारण करके झटपट बन्धनमेंसे निकल गये और कूदकर दरवाजेपर जा चढ़े । उसके पूर्व ही बहुपाश भी अपने स्थानपर लौट गया ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ वहाँसे चलकर वे पश्चिमी द्वारपर आये । वहाँ फाटकका खम्भा उखाड़कर उससे समस्त द्वारपालोंको मार डाला ॥ २०४ ॥ अनेक रक्षक राक्षसोंको भी मार गिराया और अपनों पूँछकी अग्निसे सब महलोंमें आग लगाकर सारी लंकाको जला दिया ॥ २०५ ॥ उस समय लंकाके प्रत्येक धरमें बड़ा भारी कोलाहल होने लगा । स्त्रियों अपने बालकोंको सोते हुए छोड़कर ही धरोंसे बाहर निकल पड़ीं ॥ २०६ ॥ उनके बस्त्रों तथा वालोंमें आग लगी हुई थी और वे अपने प्राण बचानेके लिए इघर-उघर भागने लगीं । हनुमानने क्रमशः आगे जाकर रावणके महलोंमें भी आग लगा दी ॥ २०७ ॥ रावणकी सभाको जलाकर वहाँके राक्षसोंको अपनी पूँछसे खूब पीटा और सब राक्षस जलने तथा अनेक प्रकारके शब्द करके चिल्लाने लगे ॥ २०८ ॥ तब रावण क्रुद्ध हो दस करोड़ रासक्षोंको साथ लेकर हनुमान्से लड़नेके लिए गया । हनुमानने उन सबको उसी लोहेके खंभेसे मार डाला और करोड़ोंको एक साथ पूँछमें बाँधकर लीलापूर्वक रावणके सिरपर दे मारा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ इस प्रकार मारनेसे उसकी चमड़ी कणभरमें जल उठी । उनकी पूँछकी अग्निसे जलकर दशानन मूर्छित हो गया ॥ २११ ॥ परन्तु हनुमानने यह सोचकर उसको जानसे नहीं मारा कि यदि रामके हायसे मारा जायगा तो उनका यश बढ़ेगा । पिताको गिरा हुआ तथा अपने राक्षसोंको जलते देख इन्द्रजीत मेघनाद अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए एक गुफामें घुस गया । हनुमानने लक्ष्मणकी प्रसन्नताके लिए उसको भी जोवित छोड़ दिया-मारा नहीं ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ इस तरह सबको जौत तथा पुरद्वार और औटारियोंसे मंडित विशाल¹ लंकाको जलाकर हनुमान् उत्तम

तटे पुच्छं स्थापयित्वा जलजान् रक्षयन् कपि: । तत्तर्गेः शीतलं स्वं कृत्वा लांगूलमुत्तमम् ॥२१५॥
 निजकण्ठाच्च धूम्रेण श्वेष्माणं सागरेऽक्षिपत् । ततः कपि: क्षणं तृणां स्थित्वा साता विचिन्त्य च २१६
 ताढयामास हृदये मत्वा दग्धां विदेहजाम् । आत्मानं गर्हयामास स्थित्वा सागररोधसि ॥२१७॥
 धिग्धिडमां वानरं मृढं स्वामिपत्न्याश्च दाहकम् । निश्चयेन मया दग्धा जानकी रामतोषदा ॥२१८॥
 न विचारः कृतः पूर्वं लङ्घादाहेऽविवेकिना । आत्मघातं करोम्यद्य पुच्छवधेन चात्र वै ॥२१९॥
 किं रामायेदशं स्वान्यं दर्शयेऽद्य विगहितम् । रामस्तु श्रृंत्वा सीताया वृत्तं शीघ्रं मरिष्यति ॥२२०॥
 तददुःखेन स सौमित्रिमरिष्यति न संशयः । तथोदुःखेन सुग्रीवस्तदर्थं सा च वै रुमा ॥२२१॥
 तं श्रत्वा सोऽङ्गदशापि मरिष्यत्यतिलालितः । ताराऽपि पुत्रशोकेन नृपे नष्टेऽय वानराः ॥२२२॥
 प्राप्ते पंचदशे वर्षे भरतोऽपि मरिष्यति । रामदुःखेन कौमल्या सुमित्रा पुत्रदुःखतः ॥२२३॥
 तथा सा कंकेयी दुष्टा सर्वानिर्थकरी तु या । शत्रुघ्नो वधुदुःखेन रामार्थं मुनयश्च ते ॥२२४॥
 राघवा रामभक्ताश्च मंत्रिणः सुहदस्तथा । सीतापितुः कुल सर्वं कौमल्याः पितुः कुलम् ॥२२५॥
 सुमित्रायाश्च कंकेयास्तेषां संवधिनस्तथा । नष्टे राजकुले जाते प्रजा स्वेच्छानुवर्तिनी ॥२२६॥
 मरिष्यति न संदेहस्ततः स्थावरजंगमम् । भृमिस्थाः प्राणिनः सर्वे यदा नष्टास्तदा दिवि ॥२२७॥
 हृष्यकव्यविहीनास्ते देवा नाशं गता इव । अकाले प्रलयं दृष्टा नष्टां सृष्टिं स्वनिर्मिताम् ॥२२८॥
 पश्चात्तापेन धाताऽपि मरिष्यति न संशयः । एवं क्रमेण ब्रह्मांडं नश्यत्येव न संशयः ॥२२९॥
 एतद्वातनिमित्तोऽहं विधिना निर्मितः पुरा । इन्युक्तवत् खेदेन देहत्यागार्थमुद्यतम् ॥२३०॥
 दृष्टा साऽऽकाशजा वाणी वभूव वहुहर्षदा । मा कुरुष्व कपे खेदं न दग्धा जानकी शुभा ॥२३१॥

सागरके किनारे गये ॥ २१४ ॥ वहाँ लम्बी पूछके बड़े भागको किनारेपर रखकर जलजन्तुओंको बचाते हुए हनुमान् ने समुद्रकी तरङ्गोंसे अपनी दीर्घं तथा उत्तम पूछको शीतल किया ॥ २१५ ॥ वहाँ उन्होंने छुएँसे गलेमें जमे कफका भी त्याग किया । तदनन्तर वे क्षणभर शान्त रहे । बादमें वे सीताका सोच तथा उनको जल गयी समझकर जोर-जोरसे छाती पीटने लगे । समुद्रतटपर खड़े होकर उन्होंने अपनां निन्दा की ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ स्वामीकी स्त्री साताका जलानेवाले मुझ सरीखे मूर्ख लानरको बारम्बार धिकार है । रामको संतोष देनेवाली जानकीको मैंने धोखेमें जला दिया ॥ २१८ ॥ अविवेकी मैंने लङ्घा जलानेसे पहिले यह विचार नहीं किया । जब मैं गलेमें पूछ बाँधकर आत्मघात कर लूँगा ॥ २१९ ॥ मैं अब अपने इस निन्दित मुखको कैसे दिखाऊँगा । राम साताका यह हाल सुनते ही प्राण त्याग देंगे ॥ २२० ॥ उनके दुःखसे दुःखित सुमित्रापुत्र लक्षण भी अवश्य मर जायेंगे । उन दानोंके दुःखसे सुग्रीव और सुग्रीवके दुःखसे उनका स्त्री रुमा भी प्राण त्याग देगी ॥ २२१ ॥ जहाँ समाचार मुननेके साथ ही अत्यन्त प्यारसे पला हुआ अंगद भी प्राण छोड़ देगा । तब पुत्रशोकसे क्षारा और राजाके वियोगसे सब वानर भी प्राण दे देंगे ॥ २२२ ॥ पन्द्रह वर्ष बीत जानेपर भरत भी मर जायेंगे । रामके वियोगसे कौसल्या, पुत्रवियोगसे सुमित्रा तथा भरतके वियोगसे वह अनर्थकारिणी तथा दुष्टा कंकेयी भी मर जायगी । भाईके दुःखसे शत्रुघ्न, रामके दुःखसे मुनिलोग एवं रघुवंशी रामके भक्त मन्त्रिजन दृष्टा मित्रवर्ग भी प्राण दे देंगे । सीताके पिता जनकका कुल, कौसल्याके पिताका कुल, सुमित्राके पिताका कुल, कंकेयीके पिताका कुल तथा उनके भी सगे-सम्बन्धी लोग प्राण त्याग देंगे । राजकुल नष्ट हो जानेपर प्रजा स्वेच्छाचारिणी हो जायगी ॥ २२३-२२६ ॥ तब वह निःसन्देह स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंका नाश करने लगेंगी । जब पृथ्वीपर सब प्राणी मार डाले जायेंगे । तब स्वर्गलोकवासी देवता और पितर भी हृष्य-कव्यसे निष्क्रिय होकर मृतक सरीखे हो जायेंगे । असमयका प्रलय तथा अपनी रची सृष्टिका विनाश देखकर पश्चात्तापसे निष्क्रिय होकर विद्याता भी मर जायगा । इस प्रकार क्रमशः समस्त ब्रह्माण्ड ही नष्ट हो जायगा । इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२७-२२९ ॥ ब्रह्माजीने इनके विनाशका कारण मुझे ही बनाया । हनुमान् ऐसा खेदपूर्वक कहने जो भी मरनेके लिए उद्यत हो गये ॥ २३० ॥ उसी समय यह आनन्ददायिनी आकाशबाणी हुई कि है

आत्मानं दर्शयित्वा तां शीघ्रं गच्छ रघूद्वहम् । तां वाणीं हनुमाञ्छ्रुत्वा बभूव हर्षपूरितः ॥२३२॥
 द्रुतं तां जानकीं द्रष्टुमशोकवनिकां ययौ । तावदर्दशं लंकायां सुवर्णवेष्टितां भुवम् ॥२३३॥
 तत्कारणं वदास्यद्य तच्छृणुष्व गिरीद्रजे । आसीद्विरिवरो देवि त्रिकूट इति विश्रुतः ॥२३४॥
 क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्चितः । तावता विस्तुतः पर्यक त्रिभिः शृंगैः पयोनिधिम् २३५
 दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसद्विरप्मयैः । तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥२३६॥
 उद्यानमृतमन्नाम आक्रीडं सुरयोपिताम् । तस्मिन्सरः सुविपुलं लस्तकांचनपंकजम् ॥२३७॥
 कुमुदोत्पलकहारशतपत्रश्रियोर्जितम् । नैतत्कृतध्नाः पश्यन्ति न नृशंसान नास्तिकाः ॥२३८॥
 तस्मिन्सरसि दुष्टात्मा विरुपोऽन्तर्जलाशयः । आसीद्विराहो गजेन्द्राणां दुराधर्षो महावलः ॥२३९॥
 अथ दंतोज्ज्वलमुखः कदाचिद्वज्युथपः । आजगाम तृष्णक्रांतः करेणुपरिवारितः ॥२४०॥
 दृष्टिः पानकामोऽयमवतीर्णश्च तत् सरः । पितृतस्तस्य तत्त्वोयं ग्राहस्तमुपपद्यत ॥२४१॥
 सुलीनः पंकजवृते यूथमध्यगतः करी । गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहणातिवलीयसा ॥

गजो ह्याकर्षते तीरं ग्राह आकर्षते जलम् ॥२४२॥

पश्यन्तीनां करेणूनां क्रीशंतीनां सुदारुणम् । नीयते पंकजवने ग्राहेणाव्यक्तमूर्तिना ॥२४३॥
 तथाऽऽतुरं युथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ।
 विचुक्रुशुदीनाधयोऽपरे गजाः पार्षिण्यग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥२४४॥

तयोर्युद्धमभूद्वोरं दिव्यवर्षसहस्रकम् । वारुणैः संयतः पाशैर्निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥२४५॥
 षेषथमानः सुधोरेस्तु पाशैर्नार्गैदृढैस्तथा । विस्फूर्जितमहाशक्तिविंकोशश्च महारवान् ॥२४६॥

कपिश्रेष्ठ ! खेद न करो । कल्याणकारिणीं जानकाजो नहीं जली हैं ॥ २३१ ॥ उनसे मिलकर तुम शीघ्र रघूद्वह रामके पास जाओ । उस गगनवाणीको सुनकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३२ ॥ वे जानकीको देखनेके लिए शोध अशोकवनमें गये । वहाँ जाकर हनुमानने कुछ सुवर्णवेष्टित घरती देखी ॥ २३३ ॥ हे गिरीद्रजे ! उसका कारण मैं बताता हूँ, सुनो—हे देवि । त्रिकूट नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ पवंत था ॥ २३४ ॥ वह चारों ओर जीरसागरसे धिरा हुआ सुन्दर शोभायुक्त तथा दस हजार योजन ऊँचा था । वह उतना ही गोलाईमें भी था । वह चाँदी, लोहे और सोनेके तीन शिखरोंसे दसों दिशाओं तथा आकाशको व्याप्त किये हुए था । उसके एक भागमें महात्मा भगवान् वरुणका कृतुमान् नामक देवस्त्रियोंका क्रीडास्थान एवं उद्यान था । उसमें विशाल सुवर्णकमलोंसे सुशोभित एक तालाब था ॥ २३५—२३७ ॥ जो कि कुंइयाँ, लाल कमल, श्वेत कमल तथा आतपत्र जैसे कमलोंसे अतीव सुन्दर प्रतीत होता था । उनको कृतध्न, क्रूर और नास्तिक लोग नहीं देख सकते थे ॥ २३८ ॥ उसी जलाशयमें छिपा हुआ महावलवान्, बड़ी कठिनाईसे पकड़ा जानेवाला तथा गजेन्द्रोंको भी ग्रस लेनेवाला एक दुष्ट मगरमच्छ रहता था ॥ २३९ ॥ किसी समय श्वेत दाति तथा श्वेत मुखवाला गजोंमें मुख्य एक गजराज प्याससे व्याकुल होकर हविनियोंसे धिरा हुआ वहाँ आया ॥ २४० ॥ वह पानी पीनेकी इच्छासे ज्यों ही पानीमें उतरा और पानी पीने लगा, त्यों ही ग्राह उसके पास जा पहुँचा ॥ २४१ ॥ कमलवनसे ढंके तथा हाथियोंके झुण्डके बांचमें स्थित उस हाथीको उस भयानक तथा अति बलवान् ग्राहने पकड़ लिया ॥ २४२ ॥ जब वह हाथी ग्राहको तीरकी ओर खोंचने लगा । उसके साथकी हविनियाँ देखती और दुःखसे चिल्लाती ही रह गई और जलमें छिपा हुआ ग्राह हाथीको कमलके बनमें दूर खोंच ले गया ॥ २४३ ॥ जब घबराये हुए उस यूथपति गजको ग्राह बलपूर्वक बेगसे जलमें खींच रहा था, तब हविनिये मलीन मुखसे क्रमदान करने लगीं और दूसरे तथा पीछे रहनेवाले हाथी दीन होकर चिल्लाने लगे, पर कोई उसे बचा नहीं सका ॥ २४४ ॥ उस गज तथा ग्राह दोनोंमें देवताओंके हजार वर्षं तक घोर युद्ध होता रहा । अन्तमें गजराज जैसे वरुणपाश तथा अति भयानक एवं दृढ़ नागपाशमें बैधकर सर्वथा असमर्थ हो गया । तब उच्छवल वर्षं तथा महाशक्तिसम्पन्न होता हुआ भी वह गजराज चिल्लाने तथा महान् चीत्कर

व्यथितः स निरुत्साहो गृहीतो घोरकर्मणा । परामापद्मापन्तो मनसाऽचितयद्वरिम् ॥२४७॥
एकाग्रो निगृहीतात्मा विशुद्धेनांतरात्मना । प्रगृह्य पुष्कराय्रेण कांचनं कमलोत्तमम् ॥२४८॥
नैवेद्यं मनसा ध्यात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् । आपद्विमोक्षमन्विच्छुन्नगजः स्तोत्रमुदीरयत् ॥२४९॥
तत्कृतेन स्तवेनैव सुप्रीतः परमेश्वरः । आरुह्य गरुडं विष्णुराजगाम सुरोत्तमः ॥२५०॥
ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च तं ग्राहं च जलाशयात् । उजाहःराप्रमेवात्मा तरसा मधुसूदनः ॥२५१॥
जलस्थं दारयामास नक्रं चक्रेण माधवः । मोचयामास नागं द्रं पाशेभ्यः शरणागतम् ॥२५२॥
आसीद्वजः पुरा पांच्य इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः । एकदा स तपोनिष्ठो वभूत्र ध्यानतत्परः ॥२५३॥
यदृच्छया ययौ तत्र कुम्भजन्मा नृपांतिकम् । ध्यानस्थः स नृशो नैव मुर्निं वेद समागतम् ॥२५४॥
ददौ शापं मुनिर्भूप दृष्टात्मानं तु नोन्थितम् । तपोमदेनसंश्रानस्त्वयस्मान्नोत्थितोऽपि माय् ॥२५५॥
अतो भव गजो भ्रांतो मदेन विपिनेऽचिरत् । तं श्रुत्वा नृपतिः शापं तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥२५६॥
विशापं प्रार्थयामाम मुनिः प्राह द्वारे: करात् । भविष्यति विषुक्तिस्ते यदा ग्राहो धरिष्यति ॥२५७॥
पुरा तदेव गन्धर्वस्त्वप्सरोगणसेवितः । सरस्यस्मिञ्जलकीडा कर्तुं हृहः समागतः ॥२५८॥
सरस्यधर्मर्षणार्थं तं दृष्ट्वा स देवलं चिरम् । संस्थितं च यहिः कर्तुं गन्धर्वः स व्यचितयत् ॥२५९॥
स्वयं भूत्वा जले लीनस्तत्पादौ स्वकरेण हि दृढं धृत्वा कषयं तं ज्ञात्वा तमशपन्मुनिः ॥२६०॥
ग्राहवन्मे धृतौ पादौ तस्माद्ग्राहो भवात्र वै । तेन मंप्रार्थितः प्राह द्वरिष्वामुद्वरिष्यति ॥२६१॥
एवं तौ पूर्वशापेन पतितावतिसंकटे । द्वरिषुद्धृत्य तौ ताभ्यां ययौ स्वीयस्थलं पुनः ॥२६२॥

करने लगा ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ उस धोर पराक्रमी ग्राहसे ग्रस्त होकर गजराज दुःखी और निरुत्साह हो गया । उस समय इस प्रकार की परम विपत्तिको प्राप्त होकर वह श्रीहरिका चिन्तन करने लगा ॥ २४७ ॥ तदनन्तर इन्द्रियोंका निग्रह करके उसने एकाग्र मन तथा शुद्ध अन्तःकरणसे सुवर्णके समान उत्तम एक कमलपुष्प सूँडके अग्रभागसे पकड़कर शान्त भावसे मन ही मन जनार्दन भगवान्का आवाहन, पूजन, ध्यान तथा नैवेद्य अपेक्षण करके विपत्तिसे छुटकारा पानेके हेतु स्तोत्रपाठ किया ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ उसकी स्तुतिसे प्रसन्न परमेश्वर सुरोत्तम भगवान् विष्णु स्वयं गरुडपर सवार होकर वहाँ आये ॥ २५० ॥ उन अप्रमेय आत्मा मधुसूदन भगवान्के उस ग्राह तथा गजेन्द्रको जलसे शीघ्र ही बाहर निकाला ॥ २५१ ॥ उन्होंने जलमें रहनेवाले ग्राहको अपने चक्रसे मार डाला और शरणागत गजराजको पाशोंसे छुड़ा दिया ॥ २५२ ॥ वह हाथी पूर्व जन्ममें पांडचर्वशी इन्द्रद्युम्न नामका राजा था । एक बार उसने ध्यान धरके तप करना आरम्भ किया ॥ २५३ ॥ जब वह तप कर रहा था, तभी उसके पास अगस्त्य मुनि एकाएक जा पहुँचे । ध्यानमें स्थित राजाको मुनिके आनेका कुछ पता न था ॥ २५४ ॥ मुनिने अपने आनेपर राजाको खड़े होते न देखकर शाप दे दिया कि तपके घमण्डसे मेरे आनेपर भी तुम खड़े नहीं हुए ॥ २५५ ॥ इसलिए शीघ्र ही तुम बनमें मदोत्मत हाथी हो जाओ । यह सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न बारम्बार मुनिको प्रणाम करके शापसे मुक्त करनेकी प्रार्थना करने लगा । तब मुनिने कहा कि तुमको ग्राह (मगरमच्छ) पकड़ेगा, तब प्रभुके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ उन्हों दिनों हृहृ नामक गन्धर्व विशिष्ट अप्सराओंको साथ लेकर उस तालाबमें जलकीड़ा करनेके लिए आया ॥ २५८ ॥ उसने देखा कि उस सरोवरके जलमें खड़े होकर देवल मुनि बहुत देरसे अधमर्षण अर्थात् सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले मन्त्रका जप कर रहे हैं और अभी बाहर निकलना नहीं चाहते । तब वह उनको बाहर निकालनेका उपाय सोचने लगा ॥ २५९ ॥ तदनन्तर स्वयं जलमें छुटकी मारकर वह अपने हाथसे उनके पाँवोंको पकड़कर खींचने लगा । यह देखकर मुनि उसको पहिचान गये और शाप दिया-॥ २६० ॥ तूने ग्राहकी तरह भेरे पावं पकड़े हैं, इसलिए तू यहाँपर मगरमच्छ बनेगा । पुनः गन्धर्वके प्रार्थना करनेपर मुनिने कहा कि श्रीहरि तेरा इस शापसे उद्धार करेगे ॥ २६१ ॥ इस प्रकार पूर्व जन्ममें प्राप्त शापके कारण बर्तिशय भीषण संकटमें पड़े हुए उन गज-ग्राहका भगवान्मैर्त्यार

चुधितेनाथ ताक्ष्यणं प्रार्थितः प्राह तं हरिः । गच्छ भक्षस्व पतिते गजयाहकलेवरे ॥२६३ ।
 ययौ ताक्ष्यः सरः पुण्यं तावद्भूभंगगृथराट् । कलेवरांतिकं प्राप्तस्तं निहत्य खगेश्वरः ॥२६४ ॥
 पदेनैकेन भ्रूभंगमपरेण कलेवरे । धृत्वा ताक्ष्यः शुद्धदेशं भक्षणार्थमपश्यत् ॥२६५॥
 तावत्क्षीरार्णवे जांचुनदवृक्षं समीक्ष्य सः । आयामविस्तरोच्चैस्तु सहस्रयोजनं शुभम् ॥२६६॥
 तच्छास्त्रायां विशालायां यावत्तस्थौ स पक्षिराट् । तावद्भर्भजं तच्छास्त्रा वालखिल्यैरधोमुखैः ॥२६७॥
 तपद्धिः पष्टिसाहस्रं श्रिरकालं समाश्रिताः । तांस्ताद्शान्विलोक्याथ तच्छापभयशंकितः ॥२६८॥
 धृत्वा स्वचंचुना शाखां वप्राप्तं गगने पुनः । ततो दृष्ट्वा कश्यपं स्वतातं नत्वा व्यजिज्ञपत् ॥२६९॥
 वदं शुद्धां भुवं मेऽद्य कुर्वेऽहं यत्र भोजनम् । तदा तं कश्यपः प्राह शतयोजनसागरे ॥२७०॥
 लंकानाम्नी शुद्धभूमिस्तत्र त्वं कुरु भोजनम् । तत्पितुर्वचनालङ्घां ययौ ताक्ष्यः क्षणेन सः ॥२७१॥
 ग्रोच्योः पक्षयोः शाखां स्थाप्य तान्भक्षयन्मुदा । तत्यक्तैः स्थिभिस्तत्र शृंगाणि त्रीणि चाभवन् ॥२७२॥
 त्रिकूटं इति नाम्ना स लङ्घायां गिरिराडभृत् । तेषु शृंगेषु तां शाखां ताक्ष्यः संस्थाप्य संययौ ॥२७३॥
 वालखिल्यास्तपोऽन्ते ते ययुविष्णोः परं पदम् । आसीच्छाखाऽन्तराले सा लङ्घायां शृंगमूर्द्धसु ॥२७४॥
 ग्रावभूर्ता शैवलेन न विदुस्तां तु राक्षसाः । लङ्घाऽग्निना द्रवीभूता मर्दयन्ती क्षपाचरान् ॥७५॥
 पपात तदसेनासीलङ्घाभूमिहिंरण्मयी । तां दृष्ट्वा चकितो वेगाद्वने सीतां ययौ कपिः ॥२७६॥
 दृष्ट्वाऽशोके पुनः सीतां तामाह कपिकुञ्जरः । मत्स्कन्धसंस्थिता राममद्य पश्यसि जानकि ॥२७७॥
 सा प्राह मोचितामन्यैर्मां रामो न सहिष्यति । नीत्वा पुनर्मुद्रिकां त्वं राधवाय समर्पय ॥२७८॥

किया और दोनोंको साथ लेकर अपने घाम पघारे ॥२६२॥ तदनन्तर भूखे गरुडने श्रीहरिसे आहारकी प्रार्थना की । श्रीहरिने कहा कि जाओ, सरोवरके तटपर पढ़े हुए गज-ग्राहके शरीरको खा लो ॥ २६३ ॥ गरुड़ वहां गये तो उन कलेवरोंके पास भ्रूभङ्ग नामके एक गृध्रराजको देखा । देखते ही पक्षियोंके ईश गरुडने उसे मार डाला ॥ २६४ ॥ तत्पश्चात् एक टाँगसे भ्रूभङ्गको तथा दूसरी टाँगसे गज-ग्राहके शरीरोंको पकड़कर उन्हें खानेके लिए कोई शुद्ध स्थान खोजने लगे ॥ २६५ ॥ इतनेमें गरुड़को श्रीरसागरमें एक जाम्बूनद (सुवर्ण) का वृक्ष दिखायी दिया । वह लम्बाई-चौड़ाई तथा ऊँचाईमें हजार योजन परिमाणवाला या और देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता था ॥२६६॥ पक्षिराज गरुड जाकर ज्यों ही उसकी एक शाखापर बैठे, तैसे ही उसकी वह शाखा टूट पड़ी । उसके टूटनेसे उसपर बहुत कालसे रहनेवाले साठ हजार वालखिल्य ऋषि अधोमुख होकर गिरने लगे । उनकी यह दशा देखकर पक्षिराज गरुड़के मनमें ऋषियोंके शापकी शंका समा गयी ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ अतएव उस शाखाको चोंचमें पकड़कर वे आकाशमें फिर भ्रमण करने लगे । तभी उन्हें अपने पिता कश्यप दिखायी पड़े । तब नमस्कार करके उनसे निवेदन किया-॥ २६९ ॥ आप कोई ऐसी पवित्र जगह बतलाएं, जहाँ मैं भोजन कर सकूँ । तब कश्यपने कहा कि सौ योजन विस्तृत लंका नामकी विशुद्ध भूमि है, वहाँ जाकर तुम भोजन कर सकते हो । अपने पिताका बात अङ्गोकार करके गरुड़ धणभरमें लङ्घा जा पहुँचे ॥ २७० ॥ ॥ २७१ ॥ वालखिल्य ऋषियों सहित शाखाको अपनी ऊँची पाँखोंपर घरे हुए वे आनन्दसे उन मृत शरीरों-को खाने लगे, जिन्हें पाँखोंसे पकड़ लाये थे । उन गज-ग्राह तथा गीषके शरीरसे निकली हुई हड्डियोंसे वहाँ तीन बड़े भारी शिखर खड़े हो गये ॥२७२॥ उन तीनोंका लङ्घामें पर्वतराज त्रिकूट नाम पढ़ गया । गरुडने उन्हीं शिखरोंपर उस शाखाको रख दिया और चले गये ॥२७३॥ वहींपर तपस्या पूरी करके वे वालखिल्य ऋषि विष्णुके परम पदको प्राप्त हो गये । लंकामें उन शिखरोंके मध्यमें स्थित शाखा पाषाणके समान हो गया थी । इसी कारण राक्षस लोग उसे नहीं पहचान पाये थे । जब हनुमानने लङ्घाको अग्निसे जलाया, तब वह द्वितित होकर राक्षसोंका मर्दन करती हुई गिर पड़ी । उसके रससे लंकाकी भूमि सुदण्डमयी हो गयी । यह लीला देखकर हनुमान चकित हो गये और शीघ्र ही सीताके समोप आये ॥ २७४-२७६ ॥ शुणोक्तव्यमें सीताको पूर्ववत् स्थित देखकर कपिकुञ्जर हनुमान् सीतासे बोले-हे जानकी ! आप मेरे कन्दे-

इत्युक्त्वा तत्करे सीता ददौ श्रीराममुद्रिकाम् । ततस्तां मारुतिः पृष्ठा नत्वां शीत्रं ययौ पुनः ॥२७९॥
 आरुरोह सुवेलादिं चूर्णं तमकरोद्दिरिम् । एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा ददौ पत्रं सनिस्तरम् ॥२८०॥
 यद्यत्कृतं मारुतिना लंकायां तस्य मूचकम् । तद्गृह्य मारुतिर्वगान्नत्वा पृष्ठा विधिं पुनः ॥२८१॥
 तत उड्हीय वेगेन ययावाकाशवर्त्मना । कुर्वन् शब्दं महावोरं कपीनामूर्धतस्तदा ॥२८२॥
 उदद्विश्यंतरा किञ्चित्पपात भुवि मारुतिः । ततो दृष्ट्वा कर्पांस्तत्र इष्ट्वैकं मुनिसत्तमम् ॥२८३॥
 किञ्चिद्वृत्समाविष्टस्तं मुनिं प्राह मारुतिः । मया श्रीरामकार्यं तु कृतमस्ति मुनीश्वर ॥२८४॥
 पानीयं पातुमिच्छामि दर्शयस्व जलाशयम् । तर्जन्या दर्शयामास मुनिस्तस्मै जलाशयम् ॥२८५॥
 ततः स मारुतिर्मुद्रां मणिं पत्रं मुनेः पुरः । संस्थाप्य नीरं पातुं वै ययौ कासारमुत्तमम् ॥२८६॥
 ततस्तत्र कपिः कश्चिन्मुद्रिका मुनिसंनिधी । कमंडलौ प्राक्षिपत्स ययौ तावच्च मारुतिः ॥२८७॥
 गृहीत्वा तं मणिं पत्रं मुनिं पप्रच्छ मुद्रिकाम् । मुनिर्भूमंज्ञया तस्मै कमंडलुमदर्शयत् ॥२८८॥
 ततः कमंडलौ तूर्णीं मुद्रिकामवलोकयत् । तावद्दर्शाङ्गजनेयस्तस्मिन् श्रीराममुद्रिकाः ॥२८९॥
 दृष्ट्वा सहस्रशस्तत्र चकितः प्राह तं मुनिम् । कृतस्त्वमा मुद्रिकाश्वद् का सम मुद्रिका ॥२९०॥
 एतामु त्वं मुनिश्चेष्ट तदा तं मुनिरत्रवीत् । यदा यदा वायुपुत्रः सीतां तां राघवाज्ञया ॥२९१॥
 लंकां गत्वा समानीता शुद्धिमुद्रास्तदा तदा । मद्ये स्थापितास्ताश्व कपिभिश्च कमंडलौ ॥२९२॥
 निक्षिपास्तास्त्वमाः सर्वा पश्यन्तामु स्वमुद्रिकाम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा गतगर्वस्तमव्रवीत् ॥२९३॥
 कियंतो राघवाश्वात्र समायाता मुनीश्वर । मुनिस्तं प्राह निष्कास्य गणयस्वाद्य मुद्रिकाम् ॥२९४॥

पर सवार हो जायें, तो मैं आपको ले चलकर आज ही रामका दर्शन करा दूँ ॥ २७७ ॥ जानकीने कहा—मुझे दूसरा कोई छुड़ाकर ले जाय, इस बातको भगवान् राम सहन नहीं कर सकेंगे। इसलिए तुम इस अंगूठीको ले जाकर रामको दे दो ॥ २७८ ॥ इतना कहकर सीताजीने हनुमानके हाथोंमें वह मुद्रिका दे दी। तब हनुमानजी सीताकी आज्ञा ले तथा नमस्कार करके शीघ्र ही लौट पड़े ॥ २७९ ॥ उन्होंने समुद्रके किनारे-वाले पवंतपर चढ़कर उसे चूर्ण कर डाला। उस समय ब्रह्माजीने विस्तारपूर्वक एक पत्र लिखकर उन्हें दिया ॥ २८० ॥ जिसमें यह लिखा था कि लंकामें जाकर मारुतिने वया-वया काम किया है। उसको लेकर ब्रह्माजी आज्ञा ले तथा उन्हें नमस्कार करके हनुमान् पुनः वहाँसे उड़कर आकाशमार्गसे धोर तथा महान् वानरोंकी तरह शब्द करते हुए जोरोंसे चल पड़े ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ उत्तर दिशाकी ओर कुछ दूर आगे जाकर नीचे उतरे तो वहाँ उन्होंने एक मुनिको विराजमान देखा ॥ २८३ ॥ तब कुछ गर्वसे मारुतिने कहा—हे मुनीश्वर! मैं श्रीरामका काम करके आ रहा हूँ ॥ २८४ ॥ यहाँ मैं पानी पानेकी इच्छासे आया हूँ। मुझे कोई जलाशय बतलाइये। तब मुनिने उन्हें तज्जनी अंगुलीसे जलाशय बतला दिया ॥ २८५ ॥ तदनन्तर हनुमान् अंगूठी, चूड़ामणि तथा पत्र मुनिके पास रखकर उस उत्तम तालाबकी ओर जल पीने गये ॥ २८६ ॥ इतनेमें किसी बन्दरने आकर रामकी मुद्रिकाको मुनिके पास रखके कमण्डलुमें डाल दिया। उधरसे हनुमानजी भी आ पहुँचे ॥ २८७ ॥ चूड़ामणि तथा पत्रके दिश्यमें उन्होंने मुनिसे पूछा कि मुद्रिका कहाँ गयी? मुनिने भोहोंके संकेतसे कमण्डलु दिखाया ॥ २८८ ॥ जब हनुमानने कमण्डलुमें देखा तो उसमें श्रीरामकी हजारों मुद्रिकाएँ दिखायी दीं। तब हनुमानने आश्र्वयचकित होकर मुनिसे पूछा कि इतनी अंगूठियें कहाँसे आयीं, सो बताइए ॥ २८९ ॥ २९० ॥ हे मुनिश्चेष्ट! आप यह भी कहिये कि इनमेंसे मेरी मुद्रिका कौन-सी है? मुनिने उत्तर दिया कि जब-जब श्रीरामकी आज्ञासे हनुमानने लंकामें जाकर सीताका पता लबाया है और अंगूठियें मेरे सामने रखकी हैं, तब-तब बन्दरोंने उन्हें इस कमण्डलुमें डाल दी हैं। वे ही ये सब हैं। इनमेंसे तुम अपनी अंगूठी खोज लो। मुनिके इस वाक्यको सुनकर हनुमानका गर्व खर्व हो गया। तब उन्होंने मुनिसे कहा— ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ हे मुनीश्वर! यहाँ कितने राम आये हैं? मुनिने कहा—कमण्डलुमेंसे अंगूठियें निकालकर

कमंडलोरं जलिभिस्तदाऽथ मुद्रिका मुहुः । वहिः क्षिपन्नमारुतिः स नांतं तासां ददर्श सः ॥२९५॥
 पुनः कमंडलौ कृत्वा मुनिं नत्वा कपिः क्षणम् । चिंतयामास मनसि मादृशैः शतशः पुरा ॥२९६॥
 समानीतास्ति सीतायाः शुद्धिः का गणनाऽद्यमे । इति निश्चित्य मनसि गतगर्वस्तदा कपिः ॥२९७॥
 पुनर्दक्षिणमार्गेण यर्यौ यत्रांगदादयः । प्रायोपवेशनस्थास्ते तं दृष्ट्वा तुष्टमानसाः ॥२९८॥
 वभूवुर्वानिरः सर्वे समालिङ्ग्याथ तं मुहुः । ज्ञात्वा तन्मुखतः सीता दृष्टाऽशोकवने त्विति ॥२९९॥
 ययुस्ते राघवं शीघ्रं मार्गे सुग्रीवपालितम् । दृष्ट्वा मधुवनं सर्वे दृष्ट्वा तं वालिनंदनम् ॥३००॥
 फलानि भक्षयामासुर्दधिवक्त्रो न्यवेधयत् । ततस्ते ताडयामासुर्दधिवक्त्रं कपीश्वरम् ॥३०१॥
 ज्ञात्वा तं मातुलमपि सुग्रीवस्यांगदादयः । स गत्वा सकलं वृत्तं सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३०२॥
 सोऽपि श्रुत्वा जनकजा दृष्टा तैरित्यमन्यतः । नोचेन्मधुवनं रम्यं कथमङ्गनन्ति वानराः ॥३०३॥
 ततो विसर्जयामास दधिवक्त्रं कपीश्वरः । मा निषेधस्त्वया कार्यस्त्वं शीघ्रं प्रेषयस्व तान् ॥३०४॥
 ममांतेकं ततो गत्वा दधिवक्त्रस्तथाऽकरोत् । ततः सुग्रीववचनं श्रुत्वा तेन समीरितम् ॥३०५॥
 युयुस्ते वानराः सर्वे रामं नत्वा पुरःस्थिताः । ततो हर्षान्मारुतिः स ब्रह्मपत्रं न्यवेदयत् ॥३०६॥
 दत्त्वा चूडामणिं रामं काकवृत्तं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा सकलं वृत्तं ज्ञात्वा मारुतिना कृतम् ॥३०७॥
 लंकायां वायुपुत्रेण रामस्तुष्टो वभूव सः । समालिङ्ग्य हनूमंतं राघवो वाक्यमत्रवीत् ॥३०८॥
 तत्रोपकारिणश्चाहं न पश्याम्यथा मारुते । कर्तुं प्रत्युपकारं ते धन्योऽसि जगतीतिले ॥३०९॥
 परिरभो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः । अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि इरिषुङ्गन् ॥३१०॥
 यत्पादपश्युगलं तुलसीदलाद्यैः संपूज्य विष्णु पदवीमतुलां प्रयाति ।

गिन लो ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ अब हनुमान् कमण्डलुसे अंजली भर-भरकर वारम्बार अंगूठियें बाहर निकालने लगे । पर कहीं उनकी अन्त नहीं हुआ ॥ २९५ ॥ तब फिरसे उन्हें कमण्डलुमें भर दिया और मुनिको नमस्कार करके क्षणभरके लिए वे मनमें विचार करने लगे कि ओह । पहिले मेरे जैसे सैकड़ों हनुमान् जाकर सीताकी खबर ले आये हैं तो मेरी कौन-सी गिनती है । यह निश्चय करके बीर मारुति घमण्डको त्याग-कर दक्षिणमार्गमें जहाँ अङ्गदादि वानर बैठे थे, वहाँ गये । उपवासी दशामें बैठे हुए वे सब वानर हनुमानको देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २९६-२९८ ॥ वे सब उनको वार-वार हृदयसे लगाने लगे और उनके मुखसे यह सुनकर कि मैं सीताको अशोकवाटिकामें देख आया हूँ ॥ २९९ ॥ तब सबके सब तुरन्त रामकी ओर चल पड़े । रास्तेमें उन्हें सुग्रीवका सुरक्षित मधुवन दिखाई दिया । तब सब वानर वालिके पुत्र अङ्गदसे पूछकर ॥ ३०१ ॥ उस बनके फल खाने लगे । जब उसके रक्षक दधिमुखने रोका तो वे उसको मारने लगे ॥ ३०० ॥ यह जाननेपर भी कि यह सुग्रीवका मामा है, तथापि उसे पीटकर ही छोड़ा । तदनन्तर दधिमुखने जाकर सब हाल सुग्रीवको कह सुनाया । यह सुनकर सुग्रीवने समझ लिया कि उन्होंने जनकतनयाका पता पा लिया है, नहीं तो वे लोग मधुवनके फल क्योंकर खाते ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ पश्चात् कपीश्वर सुग्रीवने दधिमुखको समझा-बुझाकर लौटाया और कहा कि उन्हें रोको मत, यहाँ बेज दो ॥ ३०४ ॥ सुग्रीवकी बात मानकर उसने बैसा ही किया । पश्चात् वे सब वानर दधिमुखसे सुग्रीवका आदेश सुनकर ॥ ३०५ ॥ रामके पास गये तथा नमस्कार करके उनके सामने खड़े हो गये । तब हनुमानने सहर्ष ब्रह्माका दिया हुआ पत्र रामकों अपेण किया और चूडामणि देकर जयन्त कौविका वृत्तान्त कह सुनाया । सो सुनकर राम लङ्घामें हनुमानका किया हुआ समस्त कार्यं जान गये ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥ ब्रह्माके पत्रसे राम अतिशय सन्तुष्ट हुए । तदनन्तर राम हनुमान्-का आलिङ्गन करके बोले—॥ ३०८ ॥ हे मारुते ! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है । इस उपकारका प्रत्युपकार करनेके लिये मुझे कुछ नहीं सूझता । सचमुच तुम संसारमें धन्य हो ॥ ३०९ ॥ इस संसारमें साक्षात् परमात्माका (मेरा) परिरम्भ (आलिङ्गन) दुर्लभ है, वह तुमको प्राप्त हो गया । इस कारण है हरि-पुङ्गव ! तुम प्रिय भक्त हो ॥ ३१० ॥ जिन विष्णुके दीनों चरणकमलोंका तुलसीपत्र तथा जल आदिसे पूजन

तेनैव किं पुनरसौ परिष्ठधमूर्ती रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुंजः ॥३११॥

रामं स मारुतिः प्राह भीतभीतोऽतिकंपितः । मयाऽपराधितमिति मुद्रावृत्तं मुनेर्वचः ॥३१२॥

तच्छ्रुत्वा रामचंद्रोऽपि विहस्योवाच मारुतिम् । मयैव दर्शितं मार्गे कौतुकं मुनिरूपिणा ॥३१३॥

त्वद्द्वैषपरिहाराथं मुद्रिकां मत्करे त्विमाम् । कनिष्ठिकायां त्वं पश्य समानीता त्वयाद्य वै ॥३१४॥

तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा श्रीरामस्य करांगुलौ । ननाम गतवर्गः स रामं विष्णुममन्यत ॥३१५॥

मदयप्यस्यैव कृपया पौरुषं चेत्यमन्यत । एवं गिरीद्रजे प्रोक्तं चरित्रं सुंदराभिधम् ॥३१६॥

रामार्थं वायुपुत्रेण कृतं सर्वार्थदायकम् ॥३१७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
सुन्दरचरित्रे सीताशुद्धिर्नाम नवमः संगः ॥ ६ ॥

दशमः संगः

(राम-रावणसेनाका संघर्ष)

श्रीशिव उवाच

अथाह मारुतिं रामो मां वदस्व सविस्तरम् । लंकास्वरूपं ज्ञात्वा च प्रतीकारं करोम्यहम् ॥ १ ॥

तद्रामवचनं श्रुत्वा कथयामास मारुतिः । लंका दिव्यपुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥ २ ॥

स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाङ्गालक्षंयुता । परिखाभिः परिवृता पूर्णाभिन्नर्मलोदकैः ॥ ३ ॥

नानोपवनशोभाल्लादिव्यवापीभिरावृता । गृहैर्विचित्रशोभाल्लाद्यर्मणिस्तंभमयैः शुभैः ॥ ४ ॥

पश्चिमद्वारमासाद्य गजवाहाः सहस्रशः । उत्तरद्वारि तिष्ठन्ति वाजिवाहाः सपत्नयः ॥ ५ ॥

दशकोटिमिता सेना विविधायुधमण्डिता । लंकायाः परितो व्याप्ता सतर्का रक्षते पुरीम् ॥ ६ ॥

करके मनुष्यमात्र विष्णुके अनुपम पदको प्राप्त करता है। उन्हों साक्षात् रामके द्वारा आलिङ्गित होकर वायुपुत्र हनुमान् यदि महान् पुण्यशाली बन जायें तो इसमें आश्रय ही बना है ॥ ३११॥ तदनन्तर डरके भारे कापते हुए मारुतिने रामसे अपना गर्वलपी अपराध, मुद्रिकाका वृत्तान्त तथा मुनिका वचन कह सुनाया ॥ ३१२॥ यह सुना तो रामचन्द्रने हँसकर कहा कि यह कौतुक मैंने ही मार्गमें मुनिरूप घारण करके दिखलाया था ॥ ३१३॥ यह काम मैंने तुम्हारे गर्वको छुड़ानेके लिये ही किया था। यह देखो, जिस मुद्रिकाको तुम ले आये थे, वह तो मेरे हाथको कनिष्ठिका अंगुलीमें विद्यमान है ॥ ३१४॥ रामके हाथमें रामकी अगृड़ी देखो तो गर्व छोड़कर हनुमानने घमस्कार किया और उन्हें साक्षात् विष्णु माना ॥ ३१५॥ और यह भा माना कि इन्हींकी कृपासे मुझमें भी पौरुष आ गया है। हे गिरीद्रजे ! रामके लिये वायुपुत्रके द्वारा किया हुआ सर्वार्थसाधक सुन्दर चरित्र मैंने तुमको इस प्रकार कह सुनाया ॥ ३१६॥ ३१७॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटीकायां सुन्दरचरित्रे सीताशुद्धिर्नाम नवमः संगः ॥ ९ ॥

शिवजी बोले—हे पार्वती ! रामने मारुतिसे कहा—तुम हमको विस्तारसे लंकाका स्वरूप बताओ । लङ्काका स्वरूप जानकर मैं प्रतीकारका उपाय सोचूँगा ॥ १ ॥ रामको बात सुनकर मारुतिने कहा—हे देव ! त्रिकूट पर्वतके शिखरपर वह लङ्का नामकी दिव्य पुरी बसी हुई है ॥ २ ॥ उसके चारों ओर सोनेका गढ़ है तथा वह सोनेको अंटारियोंवाले भवनोंसे सुशोभित है। निर्मल जलसे परिपूर्ण खाईसे वह नगरी घिरी हुई है ॥ ३ ॥ अनेकानेक उपवनोंसे सुन्दर, दिव्य बावलियोंसे आवृत तथा चित्र-विचित्र शोभावाले मणियोंके लम्बोंवाले सुन्दर महलोंसे सजी हुई है ॥ ४ ॥ उसके पश्चिमी द्वारपर हजारों गजाल्ल तथा अश्वाल्ल सिपाही खड़े रहते हैं ॥ ५ ॥ इस करोड़ पैशल तथा लदार सैनिक विविध शस्त्रास्त्रोंसे सुखिजत होकर लङ्काका

तिष्ठुत्यवुद्मंख्याता गजाश्वरथपत्तयः । रक्षयति मदा लकां नानाख्कुशलाः प्रभो ॥७॥
 संक्रमैविंविधैलंका शतघ्नाभिश्च संयुता । एवं स्थितायां देवेश शृणु त्वदासचेष्टितम् ॥८॥
 दशाननवलौधस्य चतुर्थांशो मया हतः । दग्धा लंकापुरी स्वर्णप्राकारा धर्षिता मया ॥९॥
 शतघ्न्यः संक्रमाश्वैव नाशिता मे रघूदह । देव त्वदर्शनादेव लंका भस्मीभवेत्पुनः ॥१०॥
 सुवेलादिश्चोत्तरेऽस्ति परलंकाऽस्ति पश्चिमे । निकुम्भिला दक्षिणेऽस्ति तत्रास्ते योगिनीवटः ॥११॥
 पूर्वे च लघुलंकाऽस्ति सा मध्ये कातिमंडिता । त्रिकूटशिखरे रम्ये मत्पुच्छानलधर्षिता ॥१२॥
 प्रस्थानं कुरु देवेश गच्छामो लवणार्णवम् । तन्मारुतेर्वचः श्रुत्वा सुग्रीवं प्राह राघवः ॥१३॥
 सुग्रीवसंनिकान् सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय । इदानीमेव विजयो शुहूर्तस्त्वद्य वर्तते ॥१४॥
 आश्विनी शुक्लदशमी श्रवणर्क्षसमन्विता । शुभाऽद्य वानरश्रेष्ठ गच्छामो लवणार्णवम् ॥१५॥
 रक्षन्तु यूथपाः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः । नलो भवत्वग्रसरः पृष्ठे नीलोऽथ रक्षतु ॥१६॥
 सुषेणः सव्यपार्श्वे मे जाववानितरे मम । गजो गवाक्षो गवयो मैदश्वैरेऽद्य वानराः ॥१७॥
 चह्निरेतिवायवीश चतुर्दिञ्जु समन्ततः । रक्षन्तु वानरीं सेनां द्विविदाद्यास्तथाऽपरे ॥१८॥
 सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः शस्त्रधातिनः । आरुद्धा मारुतिं चाहं गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः ॥१९॥
 आरुद्धा लक्ष्मणो यातु सुग्रीव त्वं मया सह । आगच्छस्वेति चाज्ञाप्य हरीन् रामः सलक्ष्मणः ॥२०॥
 प्रतस्थे दक्षिणाशायां सेनामध्यगतो विश्वः । तदा ते कपयश्चकुर्ष्वभुःकारान् भयानकान् ॥२१॥
 वादयामासुर्वाद्यानि पणवानकगोमुखैः । वारणेद्रनिमाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥२२॥
 गतास्तदा दिवारात्रं क्वचित्स्थूर्न ते क्षणम् । अभवञ्च्छंकुना लंकां गच्छतो राघवस्य हि ॥२३॥
 ते सद्यं समतिक्रम्य मलयं च तथा गिरिम् । आययुश्चानुपूर्वयेण ते सर्वे दक्षिणार्णवम् ॥२४॥

चारों ओरसे रक्षा कर रहे हैं ॥६॥ उनमें विविध सुरंगे लगी हैं और उसके गढ़पर अनेक तोपें भी रखी हुई हैं । हे देवेश ! इस दशामें भी आपके इस दासने वहाँ जाकर जो कुछ किया, सो सुनिये ॥७॥८॥ मैंने वहाँ जाकर रावणकी चौथाई सेना मार डाली है । लङ्घापुरीको जलाकर स्वर्णप्राकार गिरा दिया है ॥९॥ हे रघूदह ! मैंने तोपें तथा सुरंगें तोड़ डाली हैं । हे देव ! अब आपके जानेमात्रसे ही लंका पुनः भस्म हो जायगी ॥१०॥ उस लंकाके उत्तर सुवेलाद्वि है । पश्चिम परलंका है । दक्षिण निकुम्भिला है । जहाँपर योगिनीवट विद्यमान है ॥११॥ पूर्वकी ओर लघु लंका है, जिसका मध्यभाग बड़ा ही रमणीक है । उस त्रिकूटके शिखरपर वसी हुई लंकाको मैंने अपनी पूँछकी आगसे जला दिया है ॥१२॥ हे देवेश ! अब आप प्रस्थान करें । हम लोग आसार समुद्रकी ओर चलें । मारुतिकी बात सुनकर रामने सुग्रीवसे कहा-॥१३॥ हे सुग्रीव ! समस्त संनिकोंको प्रस्थान करतेके लिए आज्ञा दे दो । आज इसी समय विजयप्राप्तिका शुभ मुहूर्त है ॥१४॥ आज श्रवणनक्षत्रसे युक्त आश्विन शुक्ल दशमीकी शुभ तिथि है । हे वानरश्रेष्ठ ! हमलोग आज लवणसागरकी ओर अवश्य प्रस्थान कर दें ॥१५॥ बड़े-बड़े यूथपति वानर सेनाकी आगे-पीछे और बगलसे रक्षा करें । आगे नल तथा पीछे नील रक्षा करें ॥१६॥ सुषेण मेरी बाई और तथा जाम्बवान् मेरी दाहिनी बगलमें रहें । गज, गवाक्ष, गवय और मैद ये सब वानर अग्निकोण, नैऋत्यकोण, वायव्यकोण तथा ईशानकोणमें रहकर वानरी सेनाकी चौतरफा रक्षा करें । शत्रुओंको मारनेमें निपुण द्विविद आदि वानर भी सेनाको सब ओरसे घेरकर चलें । मारुतिके कन्धेपर सवार होकर मैं आगे चलता हूँ और मेरे पीछे अंगदके कन्धेपर सवार होकर लक्ष्मण चलें । हे सुग्रीव ! तुम भी मेरे साथ चलो । इसी प्रकार अन्य सब वानरोंको 'चलो' ऐसी आज्ञा देकर लक्ष्मण सहित राम सेनाके बीच होकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये । उस समय वे वानर भयानक भूभूकार करने लगे ॥१७-२१॥ वे ढोल, मृदंग तथा गौके सुख सदृश बाजे बजाने लगे । ऋक्षरूप घारण करनेवाले तथा श्रेष्ठ हाथियोंके समान वीर सब वानर क्षणभर भी विश्राम न करके चलने लगे । लंकाके लिए प्रस्थित रामको अच्छे-अच्छे शकुन दीख पढ़े ॥२२॥२३॥ वे सद्यपर्वत तथा

कृतः सेनानिवासश्च राघवेणाविध्यसैकते । चक्रुर्मन्त्रं सागरस्य तरणार्थं प्लवंगमाः ॥२५॥
लंकायां वायुपुत्रेण कृतं दृष्टा स रावणः । प्रहस्तार्दीस्तदा प्राह कथमये भविष्यति ॥२६॥
एकेन कपिनाऽस्माकं पुरतो ज्वालिता पुरी । दृष्टा सीता वनं भग्नं राक्षसा निहता रणे ॥२७॥
ममातिलालितः पुत्रः कनीयान्निहतो रणे । तदा ते मन्त्रिणः सर्वे ददुधेयं दशाननम् ॥२८॥
राजन्नुपेक्षितोऽस्माभिर्मकटोऽयमिति स्फुटम् । वयं तवाज्ञया कुर्मो जगत् कृत्स्नमवानरम् ॥२९॥
कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसेश्वरम् । त्वया योग्यं कृतं नैतद्यद्वत्त्वा जानको हृता ॥३०॥
यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता । सर्वं समं करिष्यामि स्वस्थचित्तो भव प्रभो ॥३१॥
देहि देव ममानुजा हत्वा रामं सलक्ष्मणम् । सुग्रीवं वानरांश्चैवागमिष्यामि पुनः क्षणात् ॥३२॥
कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा तदा प्राह विभीषणः । महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्यैकतत्परः ॥३३॥

विलोक्य कुम्भश्रवणादिदैत्यान्मत्प्रमत्तान्तिविस्मयेन ।

विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो दशाननं प्राह विशुद्धद्वुद्धिः ॥३४॥

न कुम्भकर्णेन्द्रांजतौ च राजंस्तथा महापार्श्वमहोदरी तौ ।

निकुम्भकुम्भौ च तथाऽतिकायः स्थातुं न शक्ता युधि राघवाग्रे ॥३५॥

सीतां च सत्कृत्य महाधनेन दत्त्वाऽभिरामाय सुखा भव त्वम् ।

नोचेन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुरेन्द्रेरपि शंकरेण ॥३६॥

एवं शुभं रावणः स विभीषणवचो हितम् । आत्मनः प्रतिजग्राह नैवासौ सौख्यकारणम् ॥३७॥
कालेन नोदितो दैत्यो विभीषणमयावशीत् । वं बुरुषेण शत्रुस्त्वं जातो नास्त्यत्र संशयः ॥३८॥
योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्र्याद्वाक्यं हन्मि तदेव तम् । उत्तिष्ठ गच्छ दुर्बुद्धे धिक त्वां रक्षःकुलाधम ॥३९॥
रावणेनैवमुक्तः स परुषेण विभीषणः । चतुर्भिर्मन्त्रभिर्युक्तो यथौ श्रीराघवातिकम् ॥४०॥

मलयाचल होते हुए क्रमशः दक्षिण सनुद्रपर जा पहुँचे ॥ २४ ॥ रामने उस वानरी सेनाको सनुद्रके किनारे बालूमें ठहरा दिया और सब वानर मिलकर सनुद्रका पार करनेकी समस्यापर विचार करने लगे ॥ २५ ॥ उधर लड्डामें वायुपुत्र हनुमान्के कृत्यको देखकर रावणने प्रहस्तादि मन्त्रियोंको बुलाकर पूछा कि अब आगे क्या होगा ॥ २६ ॥ एक ही वानरने हमारी सम्पूर्ण लंका नगरी जला दी । उसने सीताको देख लिया, वनको उजाड़ा और राक्षसोंको मार डाला ॥ २७ ॥ मेरे अतिशय प्रिय छोटे पुत्रको भी रणमें उसने समाप्त कर दिया । वे सब मन्त्री दशाननको धैर्य दिलाते हुए कहने लगे—॥ २८ ॥ हे राजन् ! यह तो हम लोगोंने वानर समझ-कर उसका उपेक्षा कर दी थी । अब यदि आप आज्ञा दें तो हम समस्त संसारको वानरशून्य कर दें ॥ २९ ॥ कुम्भकर्णने राक्षसेश्वर रावणसे कहा—आपने यह उचित नहीं किया, जो जाकर जानकीको उठा लाये ॥ ३० ॥ यद्यपि आपने अनजानमें यह अनुचित काम किया है । तथापि मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा । हे प्रभो ! आप निश्चिन्त रहे ॥ ३१ ॥ आप मुझको आज्ञा दें तो लक्ष्मणसहित राम, सुग्रीव और सब वानरोंको मारकर छन्दरमें लौट जाऊँ ॥ ३२ ॥ कुम्भकर्णकी बात सुनकर भगवद्गुरुओंमें श्रेष्ठ तथा श्रीमान् रामकी भक्तिमें लौलीन विभीषणने प्रमत्त कुम्भकर्ण आदि दैत्योंकी ओर हृषि डालते हुए कामातुर दशाननसे विचारपूर्वक कहा—
॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! कुम्भकर्ण, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिकाय भी युद्धमें रामके सामने नहीं ठहर सकते ॥ ३५ ॥ इसलिए आप रामका प्रचुर वनसे सत्कार करें और उन्हें सीता समर्पण करके सुखसे रहें । नहीं तो सुरेन्द्र तथा शंकरका शरणमें जानेपर भो आपको वे जावित नहीं छोड़ेंगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार शुभ तथा हितभरे विभीषणके वाक्यको भी रावणने अपने प्रतिकूल ही समझा ॥ ३७ ॥ उल्लसे प्रेरित दैत्य रावणने विभीषणसे कहा—निःसन्देह तू बंबुरुषमें मेरा जानु है ॥ ३८ ॥ यदि और कोई कुछसे ऐसा कहता तो मैं उसको उसी समय मार डालता । ओ दुर्बुद्धे ! अरे राक्षसाधम ! तुझे धिकार

रावणश्चापि तं ज्ञात्वा तेन सख्यं चकार सः । हनुमतोदधेस्तीरे लंका च सिकतोद्भवाम् ॥४१॥
 कारपित्वा रघुश्रेष्ठस्तत्र मित्रं विभीषणम् । लकायाश्चैव राज्यार्थं वानरैरभ्यषेचयत् ॥४२॥
 तदा विभीषण प्राह रामचन्द्रो विहस्य च । न्यासभूता त्वियं लंका तावत्कालां तवास्ति मे ॥४३॥
 यावता रावणं हत्वा तब दास्याम्यहं शुभाम् । हनुमतस्त्वयं नाम्ना लङ्का ख्यातं गमिष्यति ॥४४॥
 हनुमलङ्काऽधेस्तारे वर्ततेऽद्यापि पावेति । विभीषणाद्रावणान्ते रामस्तां मोचयिष्यति ॥४५॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र गगनस्थः शुक्रोऽवरीत् । ग्रेषितो रावणेनैव सुग्रीवं प्राह वेगतः ॥४६॥
 त्वामाह रावणो राजा तब नास्त्यर्थविष्टवः । अहं यथहरं भार्या राजपुत्रस्य किं तत्र ॥४७॥
 किष्किन्धां याहि हरिभिस्त्वं वैरं कुरु मा मया । त धृत्वा वानराः शीघ्र बद्धन्धुलौहवंधनैः ॥४८॥
 शार्दूलश्चापि सेनां तां दृश्याऽधिपमभाषत । तच्छ्रुत्वा रावणश्चापि दीघंचितापरोऽभवत् ॥४९॥
 रामः संमन्त्रयामास तदेकान्ते स्थितः क्षणम् । विभीषणेन सुग्रीवमाहतिभ्यां समन्वितः ॥५०॥
 तीत्वार्घ्यं जलधेर्गुलमं संस्थितो बन्धुना युतः । सर्वेषां वचनं श्रोतुं राघवेणाथ सागरः ॥५१॥
 मेघवद्वर्जनां कुर्वन् वामहस्तेन धिक्कृतः । अद्यापि सागरस्तत्र तूष्णीमेव स विद्धते ॥५२॥
 ततः संमन्त्र्य रामस्तु तदा सागररोधसि । प्रायोपवेशनं चक्रे दर्भानास्तीर्य वेगतः ॥५३॥
 दिनद्वयमतिक्रम्य तृतीयदिवसे तदा । उत्थाय दर्भशयनात्पुनलक्ष्मणब्रवीत् ॥५४॥
 पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मासुपागतम् । नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ ॥५५॥
 जानाति मानुषोऽय मा किं करिष्यात वानरः । अश्य पश्य महाबाहो शार्पायष्यामि वारिधिम् ॥५६॥
 पद्मयामेवाद्य गच्छन्तु वानरा विगतज्वराः । इत्युक्त्वा चापमाकृष्य सदधे वाणमुत्तमम् ॥५७॥

है । उठ, यहांसे निकल जा ॥ ३६ ॥ रावणके इस प्रकार धिक्कारनेपर विभीषण अपने चार मन्त्रियोंको साथ लेकर श्रीरामके समीप चला गया ॥ ४० ॥ रामने परिचय पूछकर उसके साथ मित्रता कर ली । तदनन्तर रामने हनुमान्‌से समुद्रके किनारे रेताकी लंका बनवाकर उसमें अपने मित्र विभीषणका लंकाराज्यके राजाके पदपर वानरों द्वारा अभिषेक करवा दिया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब रामने हँसकर विभीषणसे कहा—मित्र ! यह लंका तुम्हारे पास तबतक धरोहररूपसे रहेगा ॥ ४३ ॥ जबतक मैं रावणको मारकर तुम्हें लंका न दे दूँ, यह लंका हनुमान्‌के नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ४४ ॥ हे पावंती ! वह हनुमान्‌की लंका अभी भी समुद्रके किनारे विद्यमान है । रावणका अन्त हो जानेपर राम उसे विभीषणसे छुड़ा लेंगे ॥ ४५ ॥ तदनन्तर आकाशमें स्थित शुक्र वोला—हे सुग्रीव ! मुझे बड़ा शीघ्रतासे रावणने तुम्हारे पास भेजा है ॥ ४६ ॥ राजा रावणने कहा है कि हमने तुम्हारो कोई हानि नहीं की है । यदि मैं राजपुत्र रामकी स्त्रीका हरण कर लाया तो इससे तुम्हारी क्या हानि हुई ॥ ४७ ॥ उन्होंने कहा है कि तुम हमारे साथ शत्रुता न करके बंदरोंको लेकर किष्किन्धा लौट जाओ । इतना कहना या कि वानरोंने उस राक्षसको पकड़कर लोहेकी जंजीरोंसे जकड़ दिया ॥ ४८ ॥ उसके साथ गुप्तरूपसे आया हुआ दूसरा शार्दूल नामका राक्षस उस विशाल सेनाको देखकर रावणके पास गया और वानरी सेनाका पराक्रम कह सुनाया । सो सुनकर रावण दड़ी भारी चिन्तामें पड़ गया ॥ ४९ ॥ इधर रामचन्द्रजी भी एकान्तमें जाकर विभीषण, सुग्रीव तथा हनुमान्‌के साथ मंत्रणा करने लगे ॥ ५० ॥ तदनन्तर वे समुद्रके जलमें कुछ दूर जाकर सबकी बात सुननेके लिये खड़े हो गये । वादमें रामने मेघकी तरह गजनं करके बाये हाथसे सागरको धिक्कारा और कहा कि तू अभी तक चुप ही है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ मंत्रणा पूरी करके राम सागरके किनारेपर आगये और कुशा विछाकर अनशन करने लगे ॥ ५३ ॥ दो दिन विताकर तीसरे दिन कुशासनसे उठ खड़े हुए और लक्ष्मणसे कहा—॥ ५४ ॥ हे अनघ लक्ष्मण ! देखो, यह दुष्टात्मा वारिधि मुझे यहां आया जानकर भी मुझसे मिलने या मेरा दर्शन करने नहीं आया ॥ ५५ ॥ यह समझता है कि यह मनुष्यमात्र है । यह मेरा क्या कर लेगा और ये वानर भी क्या कर लेंगे । हे महाबाहो ! देखो, मैं आज इसको सोख लूँगा ॥ ५६ ॥ तब नानर बिना किसी कठिनाईके पांवसे चलकर उस पार

तदा चचाल वसुधा दिशश्च तमसावृताः । चुक्षुभे सागरे वेलां भयाद्योजनमत्यगात् ॥५८॥
तिमिनक्रिया मीनाः प्रतपाः परित्रयुः । एतस्मिन्वंतरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपघृक् ॥५९॥
शनैरुपायनं रामं समर्प्य प्रणनाम सः । अथ तुष्टव दीनात्मा प्रार्थयामास राघवम् ॥६०॥
अभयं देहि मे राम लक्मामार्गं ददामि ते । इति तद्वच्चनं श्रुत्वा राघवः प्राह सागरम् ॥६१॥
अमोघोऽय महावाणः कस्मिन्देशे निपात्यताम् । लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं वाणस्यास्य पयोनिधे ॥६२॥

सागर उवाच

रामोत्तरप्रदेशेऽस्ति द्रुमकल्प इति श्रुतः । प्रदेशस्तत्र वहवः पापात्मानो दिवानिशम् ॥६३॥
वाधन्ते मां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पात्यतां शरः । रामेण मुक्तो वाणोऽसौ भणादाभीरमण्डलम् ॥६४॥
हत्वा पुनः समागत्य तृणीरे पूर्ववत्स्थितः । ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सागरे विनयान्वितः ॥६५॥
मयि सेतुं कारयस्व नलेनोपलनिर्भितम् । विश्वकर्मसुतश्चायं वरो लघोऽस्त्यनेन हि ॥६६॥
द्विजस्य जाह्नवीतोये शालिग्रामस्त्वनेन हि । त्यक्तस्तदा तेन शमः पापाणादि तरिष्यति ॥६७॥
त्वद्रस्तादिति शापोऽयं वर एवात्र स स्मृतः । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा यथौ मिथुरदृश्यताम् ॥६८॥
नलमाङ्गापयामास सेत्वर्थं रघुनन्दनः । सेतुमारभमाणस्तु विघ्नेशं स्थाप्य राघवः ॥६९॥
नवग्रहाणां पूजार्थं पापाणान्नव सादरम् । नलहस्तेन सस्थाप्य पूर्वं तत्र महोदधी ॥७०॥
ततः सागरसंयोगे स्वनाम्ना लिङ्गमुत्तमम् । स्थापयामीति निश्चित्य मारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥७१॥
काशीं गत्वा शिवाल्लिंगं माननीयमनुच्चमम् । मुहूर्तमध्ये नोचेन्मे मुहूर्तातिक्रमो भवेत् ॥७२॥
तद्रामचचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स मारुतिः । यथावाकाशमार्गेण भणाद्वाराणसीं मम ॥७३॥

जा सकेंगे । इतना कहकर रामने बनुषपर वाण चढ़ाकर ढोरी खीची ॥ ५७ ॥ उस समय पृथ्वी वैष्प उठी, सब दिशाओंमें औंधेरा छा गया, समुद्र भयसे क्षुब्ध होकर अपने किनारेसे चार कोस आगे बढ़ गया ॥ ५८ ॥ मीन, तिमि तथा झण नामकी मछलिये और मगरमच्छ आदि जलजन्तु संतम तथा व्याकुल हो गये । तब समुद्र दिव्य रूप धारण करके प्रकटा और रामको रत्नोंकी भेट दे तथा नमस्कार करके दीनभावसे प्रार्थना करके कहने लगा-॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे राम ! कृपा करके आप मुझे अभयदान दे । मैं आपको लड़ा जानेका रास्ता अभी देता हूँ । उसके बचनको सुनकर रामने कहा-॥ ६१ ॥ हे पयोनिधे ! यह मेरा महावाण अमोघ है, अर्थं नहीं जा सकता । बतलाओ, इसे कहापर गिराऊँ । इस वाणका कोई लक्ष्य बताओ ॥ ६२ ॥ सागरने कहा—हे राम ! उत्तर दिशामें द्रुमकल्प नामका देश है । वहाँ वहुतेरे पापी आभीर रहते हैं । वे मुझको रात-दिन सताते हैं । हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस वाणको वहाँ ही गिराइए । तदनुसार रामने वाण ढोड़ा तो उसने जाकर क्षणभरमें समस्त आभीरमण्डलको मार डाला और पुनः वापस लौटकर रामके तरकसमें दुर्बन्त स्थित हो गया । बादमें सागरने विनयपूर्वक रघुश्रेष्ठ रामजीसे कहा-॥ ६३-६५ ॥ हे राघव ! आप मेरे ऊपर नलके द्वारा पत्थरोंका पुल बैंधवाएँ । नल विश्वकर्माका पुत्र है । उसने जलपर पत्थर तैरानेका वर प्राप्त किया है ॥ ६६ ॥ एक बार इसने एक ब्राह्मणका पूज्य शालिग्राम उठाकर गङ्गाजीके जलमें फेंक दिया था । तब उसने शाप दिया कि जा, तेरा फेंका पत्थर भी पानीमें तैरेगा ॥ ६७ ॥ वह शाप भी वर माना जायगा । इनना कह तथा रामको नमस्कार करके समुद्र अदृश्य हो गया ॥ ६८ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने नलको उल बाँधनेकी आशा दी । सेतु बाँधते समय पहिले गणेशजीकी स्थापना की गयी ॥ ६९ ॥ पश्चात् नवग्रहोंकी इजाके लिए नलके हाथसे सादर नौ पाणोंकी समुद्रमें स्थापना करवाई गयी ॥ ७० ॥ इसके बाद ‘अपने नाम-मे मैं सागरके सङ्गमपर उत्तम शिवलिंग स्थापित करूँगा’ ऐसा निश्चय करके रामने मारुतिसे कहा-॥ ७१ ॥ हे हनुमान ! तुम काशी जाकर शिवजीसे एक उत्तम लिंग मुहूर्तमात्रमें माँग ले आओ । नहीं तो मेरा यह शुभ कुल टल जायगा ॥ ७२ ॥ रामकी आशा सुनकर हनुमानने ‘तथास्तु’ कहा और क्षणभरमें उड़कर

तत्रागत्याथ मां नत्वा रामकार्यं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वाऽथ मया देवि राघवाय हनूमते ॥७४॥
द्रे लिंगे श्यपिते श्रेष्ठे ततोऽहं कपिमत्रुवम् । मयाऽपि दक्षिणे गंतुं पूर्वमेव विनिश्चितम् ॥७५॥
अगस्तिना विशेषेण यास्यामि राघवाज्ञया । एवं तद्वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह मां पुनः ॥७६॥
कदा विनिश्चितं पूर्वं त्वयाऽत्र कुम्भजन्मना । तत्सर्वं मां वदस्वाद्य कृपां कृत्वा ममोपरि ॥७७॥
तन्मारुतिवचः श्रुत्वा ततोऽहमत्रुवं कपिम् । मारुते त्वं शृणुष्वाद्य पूर्ववृत्तं वदामि ते ॥७८॥
कदाचिन्नारदः श्रीमान्स्नात्वा श्रीनर्मदांभसि । श्रीमदोक्तारमध्यर्च्यं सर्वदं सर्वदेहिनाम् ॥७९॥
ब्रजन्विलोक्यांचक्रे पुरो विद्यं धराधरम् । संसारतापसंहारि रेवावारिपरिष्कृतम् ॥८०॥
रूपद्वयेन कुर्वते स्थावरेण चरेण च । साभिरुद्येन यथार्थाख्यामुच्चैर्वसुमतीमिमाम् ॥८१॥
अथ तं नारदं दृष्टा विन्द्यः प्रत्युज्जगाम सः । गृहमानीय विधिवत्पूजयामास सादरम् ॥८२॥
गतथ्रममथालोक्य चभाषेऽवनतो गिरिः । अघसंघः परिहृतस्त्वदंघिरजसा मम ॥८३॥
त्वदंगसंगिमहसा सहसाप्यांतरं तमः । सकलधिंकरं चाद्य सुदिनं चाद्य मे मुने ॥८४॥
प्राकृतैः सुकृतेरद्य फलितं मे चिरार्चितैः । धराधरत्वं कुलिषु मान्यं मेऽद्य भविष्यति ॥८५॥
हति श्रुत्वा तदा किंचिदुच्छ्रस्य स्थितवान्मुनिः । पुनरुचे कुलिवरः संश्रमापन्नमानसः ॥८६॥
उच्छ्रासकारणं ब्रह्मन् ब्रूहि सर्वार्थकोविद । तवाहं मार्जयाम्यद्य हृत्खेदं क्षणमात्रतः ॥८७॥
धराधरणसामध्यं भेर्वादौ पूर्वपूरुषः । वर्ण्यते समुदायात्तदहमेको दधे धराम् ॥८८॥
गौरीगुरुत्वाद्विमवानाधिपत्याच्च भृभृताम् । सम्बन्धित्वात्पशुपतेः स एको मानभृत्सताम् ॥८९॥
न मेरः स्वर्णपूर्णत्वाद्रत्नसानुतयाऽथवा । सुरसञ्चतया वाऽपि क्वापि मान्यो मतो मम ॥९०॥

आकाशमार्गसे (शिवकी) वाराणसी (काशी) नगरीमें आगये ॥७३॥ वहाँ आकर उन्होने मुझको नमस्कार करके रामके कार्यके लिये निवेदन किया । हे देवि ! उस निवेदनको सुनकर मैने रामके लिए हनुमानको दो उत्तम लिंग दिये और कहा कि हे कपि ! मैने भी दक्षिण दिशामें जानेका बहुत दिनोंसे निश्चय कर रखा है ॥७४॥ ७५॥ यह निश्चय अगस्त्य मुनिके साथ हुआ था । पर वादमें सोचा कि जब विशेष-रूपसे रामको आज्ञा होगी, तभी जाऊंगा । मेरे मुखसे यह सुनकर मारुतिने मुझसे फिर प्रश्न किया—॥७६॥ आपने पहिले कब और कहाँपर कुम्भजन्म (अगस्त्य) के साथ यह निश्चय किया था । यह सब हाल कृपा करके कहें ॥७७॥ मारुतिकी बात सुनकर मैने कहा—हे मारुते ! मैं तुमको पूर्ववृत्तान्त बताता हूँ, सुनो ॥७८॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि नर्मदा नदीके पवित्र जलमें स्नान करके समस्त देहवारी प्राणियोंको सब कुछ देनेवाले ओंकारेश्वर शिवकी पूजा करके जा रहे थे । रास्तेमें संसार भरके तापको दूर करनेवाला तथा रेवाके जलसे परिप्लत विद्युपवर्त सामने दिखाई दिया ॥७९॥ ८०॥ वह स्थावर तथा जंगम इन दो रूपोंसे इस वसुमती पृथ्वीको यथार्थ नाम प्रदान कर रहा था ॥८१॥ नारदको देखकर वह पर्वत सामने आया तथा उन्हें अपने धरपर ले जाकर सादर विवित् पूजन किया ॥८२॥ नारदजीका श्रम दूर हो जानेपर विन्द्याचल विनश्च होकर कहने लगा कि आपके चरणरजसे मेरा पापपुञ्ज नष्ट हो गया ॥८३॥ हे महामुने ! आपके दैहिक तेजके संसर्गसे अनेक मनोव्यथा पैदा करनेवाला मेरे हृदयका अन्धकार दूर हो गया । आज मेरे लिए बड़ा शुभ दिन है ॥८४॥ चिरकालसे उपाजित मेरे प्राकृत पुण्य आज सफल हो गये । आजसे मैं पर्वतोंमें माननीय पर्वत माना जाऊंगा ॥८५॥ यह सुनकर मुनिने कुछ लम्बो साँस ली । यह देखा तो धबराकर पर्वतने कहा—हे सब अर्थोंको जानेवाले ब्रह्मन् ! इस उच्छ्रासका क्या कारण है ? आपके हृदयका खेद मैं क्षणभरमें मार्जित कर दूँगा ॥८६॥ ८७॥ पूर्वं पूर्वयोंने मेर आदि सब पर्वतोंको मिलाकर पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ बतलाया है, पर मैं अकेला ही उसको धारण कर सकता हूँ ॥८८॥ अभी गौरीका पिता होनेसे, पर्वतोंका अविष्टि होनेसे तथा पशुपति शिवका सम्बन्धी होनेके कारण केवल हिमालय ही सज्जनोंके मानका पात्र है ॥८९॥ मेरी समझमें तो सोनेसे भरा हुआ तथा रत्नमय शिखरोंवाला

परं शतं न किं शैला इलाकलनकेलयः । इह संति सतां मान्या मान्यास्ते तु स्वभूमिषु ॥९१॥
 मंदेहदेहसंदोहा उद्यैक्याश्रिताः । निषधश्चीपधिधरोऽप्यस्तोऽप्यस्तमितप्रभः ॥९२॥
 नीलश्च नीलनिलयो मंदरो मंदलोचनः । सर्पालयः स मलयो रायं नावाप रैवतः ॥९३॥
 हेमकूटत्रिकूटाद्याः कूटोत्तरपदास्तु ते । किञ्चिक्थक्रौचसद्याद्या भारसद्या न ते भुवः ॥९४॥
 इति विष्यवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टचित्तयत् । अखर्वगर्वसंसर्गो न महत्त्वाय कल्पते ॥९५॥
 श्रीशैलमुख्याः किं शैला नेह संत्यमलश्रियः । येषां शिखरमात्रादिदर्शनं मुक्तये सताम् ॥९६॥
 अद्यास्य बलमालोच्यमिति ध्यात्वाऽब्रवीन्मुनिः । सत्यमुक्तं हि भवता गिरिनारं विवृण्वता ॥९७॥
 परः शैलेषु शैलेन्द्रो मेरुस्त्वामवमन्यते । मया निःश्वसितं चैतन्ययि चापि निवदितम् ॥९८॥
 अथवा मद्विधानां हि केयं चिता महात्मनाम् । स्वस्त्यस्तु तुभ्यमित्युक्त्वा यया म व्योमवर्तमना ॥९९॥
 गते मुनौ निनिद स्वमतावोद्दिवमानसः । चित्ते विचारयामास मेरोः श्रेष्ठ्य कथं त्विति ॥१००॥
 मेरु प्रदक्षिणं कुर्यान्नित्यमेष दिवाकरः । सग्रहक्षेगणो नूनं मन्यमानो बलाधिकम् ॥१०१॥
 इति निश्चित्य विष्यादिर्वृथे स मृधेक्षणः । निरुद्ध्य ब्राधनमध्वानं स्वस्थोऽभृद्गग्नांगणे ॥१०२॥
 ततः प्रभाते शूर्योऽसौ दिशि याम्यां समुद्यतः । गंतुं रुद्धं स्वपंथानं दृष्टाऽस्वस्थोऽभवचिरम् ॥१०३॥
 योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने । यः स्वस्थश्च निमेषाद्वायाति नापि चिरं स्थितः ॥१०४॥
 गते वहुतिथे काले प्राच्योदीच्या भृशादिताः । चण्डरश्चेष्व करव्रातपातसंतापतापिताः ॥१०५॥
 पाश्चात्या दाक्षिणात्याश्च निद्रामुद्रितलोचनाः । श्रमिता एव दृश्यते सतारग्रहमंवरम् ॥१०६॥
 स्वादास्वधावपट्कारवज्जिते जगतीतले । पंचयज्ञक्रियालोपाच्चकम्पे भुवनत्रयम् ॥१०७॥

क्या देवताओंका निवासस्थान होनेपर भी मेरु विशेष माननीय नहीं है ॥१०॥ क्या पृथ्वीको धारण करने-
 वाले अन्य सैकड़ों पर्वत इस संसारमें नहीं हैं ? क्या वे सभी पर्वत सज्जनोंके मान्य हैं ? नहीं, यदि हीं भी तो
 केवल अपने-अपने स्थानोंपर ॥११॥ उदयाचल मन्द है । वह राक्षसोंको आश्रय देनेकी कृपा करनेमें ही समर्थ
 है । निषधगिरि औषधिमात्र धारण करता है । अस्ताचल निस्तेज हो गया है ॥१२॥ नीलगिरि नोले
 पत्तरोंका समूहमात्र है । मन्दराचल मन्दहस्ति है । मलय पर्वत सर्पोंका घर है । रंवत निर्धन है ॥१३॥ हेमकूट
 तथा त्रिकूट आदि केवल कूट उत्तरपदवाले ही हैं । किञ्चिक्वा, क्रौञ्च और सह्य पर्वत भी पृथ्वीके बोझको
 धारण करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥१४॥ विन्ध्याचलकी इस बातको सुनकर नारदने मनमें विचार किया कि
 बर्दिला प्राणी महत्त्वके योग्य नहीं होता ॥१५॥ क्या इस संसारमें श्रीशैल आदि पर्वत निर्मल, कान्ति-
 सम्मन्त तथा यशस्वी नहीं हैं ? जिनके शिखरको देखनेमात्रसे शुद्ध अन्तःकरणवाले महान् पुरुषोंको मुक्ति मिल
 जानी है ॥१६॥ अतएव आज इसके बलकी परीक्षा करनी चाहिए । ऐसा विचार करके नारद मुनिने कहा—
 हुमने पर्वतोंका बल ठीक बर्णन किया है ॥१७॥ पर पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुपर्वत तुम्हारा अपमान करता है । वह
 हुमसे भी अपनेको बहुकर मानता है । बस, यही कारण है कि मैंने लम्बा श्वास लिया था और यह बात
 हुमसे भी कह दी ॥१८॥ अथवा हम जैसे महात्माओंको इस बातकी क्या चिता है । तुम्हारा कल्याण
 हो । इतना कहकर वे व्योममार्गसे चले गये ॥१९॥ नारद मुनिके चले जानेपर अतिशय चिन्ताकुल होकर
 विन्दपर्वतने अपने आपको बड़ी निन्दा की और सोचने लगा कि मेरुकी इतनी बड़ी महिमा क्यों है ? ॥१००॥
 वही तथा नक्षत्रों सहित सुर्यनारायण प्रतिदिन उसकी परिक्रमा करते हैं । सम्भवतः इसीसे उसको अपने
 कानाधिक्य तथा महत्त्वका अभिमान है ॥१०१॥ ऐसा निश्चय करके विन्ध्याचलने उसकी समृद्धि देखने-
 की इच्छासे अपना शरीर बहुत ऊपरको बढ़ाया और सूर्यके रास्तेको रोककर आकाशरूपी आँगनमें खड़ा हो गया
 ॥१०२॥ प्रातःकाल सूर्यने दक्षिण दिशाकी ओर जानेको प्रस्थान किया । तब रास्ता रुका देखकर वे वहीं
 रुक गये । जब बहुत दिन बीत गये, तब सूर्यके प्रवण्ड किरणममूङ्के तापसे पूर्वं तथा उत्तर दिशाके लोप
 लगने लगे ॥१०३-१०५॥ पश्चिम तथा दक्षिण दिशाके लोगोंकी आँखें निद्रासे मुँदी रहीं । वे जब

ततः सुरा विधेवक्यादगस्ति तद्विरेणुरुम् । प्रार्थयामा सुश्रावैत्य स मुनिविंहलोऽभवत् ॥१०८॥
 तदाऽगस्तिर्भयोक्तः स गच्छ त्वं दक्षिणां दिशम् । वाकपाशेन गिरि वद्ध्वा मा खिद त्वं भजस्व माम् ॥१०९॥
 अहमप्यचिरेणैव तव खेदापनुत्तये । सेतौ श्रीरामपूजायै यास्यामि दक्षिणां दिशम् ॥११०॥
 हति मद्वचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्तुष्टु मनास्तदा । मुक्त्वा काशीं ययौ विघ्यं लोपामुद्रासमन्वितः ॥१११॥
 तमगस्त्यं सपत्नीकं दृष्ट्वा विघ्योऽतिकंपितः । अतिखर्वतरो भूत्वा विविक्षुरवनीमित्र ॥११२॥
 आज्ञाप्रसादः क्रियतां किं करोमीति चाङ्गवीत् । तद्विन्द्यवचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह च सादरम् ॥११३॥
 विन्द्य साधुरसि प्राज्ञो मां च जानासि तच्यतः । पुनरागमनं चैन्मे तावत्खर्वतरो भव ॥११४॥
 इत्युक्त्वा दक्षिणामाशामगस्तिः स ययौ तदा । वेषमानो गिरिः प्राह पुनर्जन्माद्य मे ऽभवत् ॥११५॥
 उच्छ्वरो द्वादशाब्दैः स मुनिं पश्यति दक्षिणे । नागतं तं मुनिं दृष्ट्वा पुनः खर्वोऽवतिष्ठते ॥११६॥
 अद्य श्वो वा परश्वो वा द्यागमिष्यति वै मुनिः । इति चिन्तामहामारैर्गिरिराक्रांतवत्स्थितः ॥११७॥
 नाद्यापि मुनिरायाति नाद्यापि गिरिरेधते । अरुणोऽपि च तत्काले कालज्ञोऽश्वानकालयत् ॥११८॥
 जगत्स्वास्त्यमवापोऽचैः पूर्ववद्धानुसंचरैः । स मुनिर्दण्डकं गत्वा मदाक्यं संस्मरन्हृदि ॥११९॥
 करोति मत्प्रतीक्षां च तस्माद्यास्याम्यहं कपे । इत्युक्तो मारुतिः काश्यां मया देवि विसर्जितः ॥१२०॥
 जगामाकाशमागेण शीघ्रं रामं स मारुतिः । किंचिद्दर्वसमाविष्टो लिंगद्वयसमन्वितः ॥१२१॥
 तद्रवं राघवो ज्ञात्वा सुश्रीवादीन् वचोऽब्रवीत् । मुहूर्तातिक्रमो मे ऽद्य भविष्यति ततस्त्वहम् ॥१२२॥
 कृत्वा लिंगं सैकतं च सेत्वादौ स्थापयामि वै । इत्युक्त्वा वानरान् सर्वान्मुनिभिः परिवेष्टितः ॥१२३॥

भी देखते तो आकाशमें यह और नक्षत्र ही विद्यमान दिखायी देंते थे ॥ १०६ ॥ संसारमें स्वाहा, स्वधाकार, वषट्कार, अग्निहोत्र तथा पंचयज्ञकी क्रियाओंके लोप हो जानेसे तीनों लोक कौप उठे ॥ १०७ ॥ पश्चात् ब्रह्माजीके कहनेसे देवताओंने जाकर विन्द्य पवर्तके गुरु अगस्त्य मुनिसे प्रार्थना की । तब मुनि धबराकर यहाँ काशीमें आये ॥ १०८ ॥ मैंने (शिवजीने) अगस्त्य मुनिसे कहा कि तुम दक्षिण दिशाकी ओर जाओ । वहाँ जाकर विन्द्याचलको अपने वाञ्छालमें बाँधकर निश्चिन्त भावसे मेरा भजन करना ॥ १०९ ॥ कालान्तरमें मैं भी तुम्हारा खेद दूर करनेके लिए सेतुबन्धपर रामको पूजा प्राप्त करनेके लिए शीघ्र ही दक्षिण प्रदेशमें आऊंगा ॥ ११० ॥ मेरे इस कथनको सुनकर अगस्त्यमुनि प्रसन्नतापूर्वक उसी समय काशी छोड़कर अपनी स्त्री लोपामुद्राके साथ विन्द्यपवर्तकी ओर चल पड़े ॥ १११ ॥ सपत्नीक मुनिको देखकर विन्द्याचल कौपने लगा और मानो पृथ्वीमें बुस जाना चाहता हो, इस प्रकार अतिशय छोटा रूप धारण करके बोला कि मैं आपका दास हूँ । मुझे कुछ आज्ञा देनेकी कृपा करें । विन्द्यकी बात सुनकर अगस्त्य मुनि बोले— ॥ ११२ ॥ ॥ ११३ ॥ हे विन्द्य ! तुम साधु पुरुष तथा बुद्धिमान् हो और मुझे भली आति जानते हो । अतः जवतक मैं उघरसे लौटकर पुनः यहाँ न आऊं, तब तक तुम इस प्रकार वामनरूपसे नीचा सिर किये खड़े रहो ॥ ११४ ॥ इतना कहकर अगस्त्य दक्षिणकी ओर चले गये । तब कम्पित होकर विन्द्यने कहा कि आजके दिन मेरा पुनर्जन्म हुआ है ॥ ११५ ॥ बारह वर्ष बाद जब उसने सिर उठाकर दक्षिणकी ओर देखा तो मुनि नहीं दिखायी दिये । तब फिर उसने बैसे ही नीचा सिर कर लिया ॥ ११६ ॥ आज, कल या परसोंतक मुनिको यहाँ अवश्य आ जाना चाहिये । इस प्रकार सोचता हुआ विन्द्य बड़ी चिन्ता करने लगा ॥ ११७ ॥ परन वे मुनि आज तक गाये और न पवर्त खड़ा हुआ । कालकी गतिको जाननेवाले सूर्यके सारथी अरुणने भी उसी समय अपने धोड़ोंको हाँक दिया ॥ ११८ ॥ तब सूर्यके संचारसे जगत् पूर्ववत् पुनः स्वस्थ हुआ । वे अगस्त्य मुनि दण्डकवनमें जाकर मेरे वचनका स्मरण करते हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । इस कारण है कपि हनुमान । मैं वहाँ अवश्य जाऊंगा । हे देवि । इतना कहकर मैंने मारुतिको काशीसे विदा किया ॥ ११९ ॥ १२० ॥ तब मारुति शीघ्र आकाशमार्गसे रामके पास चले । उस समय मेरे दो लिंग प्राप्त करके उनके मनमें कुछ अभिमान हुआ ॥ १२१ ॥ रामने इस गर्वको जान लिया और सुप्रीव आदिसे कहा कि प्रतिष्ठाका मुहूर्त बीता जा रहा है । इसलिए मैं बालूका लिंग बनाकर सेतुके इस छोरपर स्थापित किये देता हूँ । तदनुसार सब मुनियों और

सैकतं स्थापयामास लिङ्गं रामो विधानतः । तदा सस्मार मनसि कौस्तुभं रघुनन्दनः ॥१२४॥
 तावद्यर्थी मणिः शीघ्रं खात्कोटितप्नोपमः । तं बवंध मणिं कण्ठे कौस्तुभं रघुनन्दनः ॥१२५॥
 मण्युद्भवैर्धनैर्वस्त्रैरश्वाभरणधेनुभिः । दिव्याच्चैः पायसाद्यैश्च पूजयामास तान् मुनीन् ॥१२६॥
 ततस्ते मुनयस्तुष्टा राघवेणातिपूजिताः । ययुः स्वीयाश्रमान् मागं तान्ददर्शं स मारुतिः ॥१२७॥
 पप्रच्छ मारुतिर्विप्रान् यूयं केन प्रपूजिताः । तेऽप्युचुलिङ्गमाराध्य राघवेणव पूजिताः ॥१२८॥
 तत्तेषां वचनं श्रुत्वा क्रोधाविष्टोऽभ्यचितयत् । वृथाऽहं श्रमितस्तेन रामेणाद्य प्रतारितः ॥१२९॥
 इत्थं वदन्ययौ राम क्रोधात्स्वीयं पदद्वयम् । भुवि संताद्य पतितस्तदा भूम्यां पदद्वयम् ॥१३०॥
 गतं कपिस्तदा राममब्रवीत्कि न मे स्मृतः । सीताशुद्धिर्मया लंकां गत्वानीतेति साऽद्य हि ॥१३१॥
 तस्य मेऽद्योपवासोऽत्र काशीं प्रेष्य त्वया कृतः । किमर्थं श्रमितश्वाहं यदीत्थं ते हृदि स्थितम् ॥१३२॥
 अभविष्यन्मया ज्ञात चेत्पूर्वं हृदतं तव । काशीमहं तहिं गत्वा किमर्थं लिंगमानये ॥१३३॥
 एकं त्वदर्थमानीतमपरं लिंगमुत्तमम् । मयाऽत्मार्थं समानीतं तवाग्रे किं करोम्यहम् ॥१३४॥
 एवं क्रोधयुतं वाक्यं किंचिद्द्रव्यसमन्वितम् । रामः श्रुत्वा कपि प्राह कपे त्वं सत्यवागसि ॥१३५॥
 यथैतत्स्थापितं लिंगं समुत्पाटय त्वं बलात् । स्थापयामि त्वयानीतं काश्या विश्वेश्वराभिधम् ॥१३६॥
 तथेत्युक्त्वा मारुतिः स सैकतस्येश्वरस्य च । संवेष्य मस्तके पुच्छं बलेनान्दोलयन्मुहुः ॥१३७॥
 वृष्टिं तत्कपे: पुच्छं पपात भुवि मूर्छितः । जहसुर्वानराः सर्वे न चचालेश्वरस्तदा ॥१३८॥
 स्वस्थो भूत्वा मारुतिः स गतगर्वस्तदाऽभवत् । ननाम परया भक्त्या प्रार्थयामास तं मुहुः ॥१३९॥
 मायाऽपराधितं राम तत्क्षमस्व कृपानिधे । तदाह मारुतिं रामस्त्वे मलिंगोत्तरे त्विदम् ॥१४०॥

बानरोंको बुलाकर रामने विविवत् बालूके लिंगको स्थापित कर दिया । पश्चात् भगवान् रामने कौस्तुभ मणिका स्मरण किया ॥ १२२-१२४ ॥ स्मरण करते ही करोड़ों सूर्यके समान प्रभाशाली वह मणि आकाशमांगसे आ गया । तब रघुनन्दन रामने उस मणिको कंठमें बीब लिया ॥ १२५ ॥ उस मणिसे प्राप्त धन, वस्त्र, आभरण, अश्व, घेनु, दिव्य पकवान तथा पायस आदिसे रामने मुनियोंका पूजन-सत्कार किया ॥ १२६ ॥ श्रीरामसे पूजा प्राप्त करके प्रसन्न वे मुनि अपने-अपने आश्रमोंको जा रहे थे, तभी रास्तेमें उन्हें मारुतिने देख लिया ॥ १२७ ॥ तब हनुमानने उनसे पूछा कि आपकी पूजा किसने की है ? उन्होंने उत्तर दिया कि रामने शिवलिंगकी आराधना तथा स्थापना करके हम लोगोंकी पूजा की है ॥ १२८ ॥ हनुमानने उनकी बात सुनी तो कुद्ध होकर विचारने लगे कि रामने आज मुझसे व्यर्थ इतना परिव्रम कराके ठगा है ॥ १२९ ॥ यह विचारते हुए वे क्रोधसे रामके पास गये और जोरसे उन्होंने अपने दोनों पाँवोंको जमीनपर पटका । इससे उनके दोनों पाँव पृथ्वीमें धूंस गये । बादमें हनुमानने रामसे कहा कि क्या आपको मेरा स्मरण नहीं था ? जिस हनुमानने कामे सीताकी खोज की थी और लौटकर आपको उनकी खबर दी थी ॥ १३० ॥ १३१ ॥ उसी हनुमानको आज आपने काशी भेजकर ऐसा उपहास किया ? यदि आपके मनमें यहीं था तो फिर मुझे इस तरह व्यर्थ क्यों सताया ? ॥ १३२ ॥ यदि मुझे आपका अभिप्राय ज्ञात हो जाता तो मैं कभी काशी जाकर वे दो शिवलिंग न लाता ॥ १३३ ॥ इनमेंसे एक आपके लिए और दूसरा उत्तम शिवलिंग अपने लिये ले जाया हूँ । अब मैं इस आपवाले शिवलिंगको क्या कहूँ ! ॥ १३४ ॥ इस प्रकार कुछ क्रोध तथा गर्वयुक्त हनुमानका वाक्य सुनकर रामने कहा कि हे कपे ! तुम्हारा कहना सत्य है ॥ १३५ ॥ अब तुम यदि इस मेरे स्थापित लिंगको पूँछमें लंपटकर उखाड़ लो तो मैं तुम्हारे काशीसे लाये हुए विश्वेश्वरलिंगको यहाँ उत्तर स्थापित कर दूँ ॥ १३६ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर हनुमानने उस बालूके लिंगके ऊपरी भागमें पूँछ लंपटकर बारम्बार खूब जोरसे हिलाया ॥ १३७ ॥ जिससे सहसा उनकी पूँछ टूट गयी । वे जमीनपर गिर पड़े और मूर्छित हो गये । परन्तु बालूका लिंग तनिक भी नहीं हिला । यह देखकर सब बानर हँसने लगे ॥ १३८ ॥ अबात् मारुति स्वस्थ हो तथा गर्व छोड़कर भक्तिसे रामको नमस्कार करके प्रार्थना करने लगे—॥ १३९ ॥

विश्वनाथा भिर्घं लिंगं स्वीयं संस्थापयाधुना । तथेति मारुतिलिङ्गं स्थापयामास सादरम् ॥१४१॥
 मारुतेर्थं लिंगाय ददौ रामो वरं तदा । असंपूज्य विश्वनाथं मारुते त्वत्प्रतिष्ठितम् ॥१४२॥
 ममादौ पूजयन्त्यत्र ये नरा लिङ्गमुच्चमम् । रामेश्वराभिर्घं सेतौ तेषां पूजा वृथा भवेत् ॥१४३॥
 इत्युक्त्वा तं पुनः प्राह रामो राजीवलोचनः । मदर्थं यत्समानीतं त्वया लिङ्गं महत्तमम् ॥१४४॥
 विश्वनाथस्य तत्त्वाणामस्तु देवालये चिरम् । अनचिंतमवन्यां तदप्रतिष्ठितमत्तमम् ॥१४५॥
 अग्रं कालान्तरेणाहं तच्चापि स्थापयामि वै । तत्तत्र वर्ततेऽद्यापि लिङ्गं विश्वेश्वरान्तिके ॥१४६॥
 अप्रतिष्ठापितं भूम्यां न केनापि प्रपूजितम् । पुनः प्राह कपिं रामस्त्वमत्र छिन्नलांगुलः ॥१४७॥
 वस भूम्यां गुप्तपादः स्मरन्स्वगर्वितं त्विदम् । ततः कपिः स्वीयमूर्ति स्थापयामास स्वांशतः ॥१४८॥
 छिन्नपुच्छा गुप्तपादा सा तत्राद्यापि वर्तते । पतितो मूर्च्छितो यत्र मारुतिस्तत्र तद्वरम् ॥१४९॥
 वभूव मारुतेर्नाम्ना तीर्थं पापप्रणाशनम् । रामस्तत्राकरोत्पुण्यं स्वनाम्ना तीर्थमुच्चमम् ॥१५०॥
 स्वांशेन स्थापयामास मूर्तिं तत्र रघुद्वहः । सेतुमाधवनाम्नी सा वर्ततेऽद्यापि पार्वति ॥१५१॥
 स्वनाम्ना लक्ष्मणश्चापि चकार तीर्थमुच्चमम् । ततो रामः स्वहस्तेन स्पृष्टा मारुतिलांगुलम् ॥१५२॥
 चकार पूर्ववद्रम्यं दृढसन्धिप्रसादितः । तत्पुच्छवेष्टनाजातः कृशो रामेश्वरमस्तकः ॥१५३॥
 स तथेच कृशोऽद्यापि तत्रास्ति शिवमस्तकः । तदारम्य त्यक्तगर्वश्चाभूद्रामे स मारुतिः ॥१५४॥
 ततोऽहं सैकतालिङ्गादाविभूय रघुद्वहम् । अब्रुवं देवि तत्सर्वं शृणुप्व ते वदाम्यम् ॥१५५॥
 राघवेन्द्र रघुश्रेष्ठ शृणु वृत्तं पुरातनम् । एकदाऽहं पुरा भूम्यां मलिनाम्बरसंयुतः ॥१५६॥
 भिक्षार्थं कौतुकाद्विप्ररूपेणाविचरं सुखम् । ऋषीणामाश्रमाद्येषु द्यतटंतं मां विलोक्य च ॥१५७॥

हे राम ! मेरा जो अपराध हुआ हो, उसे क्षमा करें । क्योंकि आप कृपानिविं हैं । तदनन्तर रामने कहा—
 हे मारुति ! तुम मेरे स्थापित लिङ्गसे उत्तरकी ओर इस विश्वनाथ नामके अपने लिङ्गको स्थापित करो ।
 'तथास्तु' कहकर मारुतिने सादर शिवलिङ्गकी स्थापना कर दी ॥१४०॥१४१॥ तब रामने उस मारुतिलिङ्गको
 वरदान देते हुए कहा—हे मारुते ! तुम्हारे हारा स्थापित विश्वनाथलिङ्गकी पूजा किये बिना जो सेतुबंधरामे-
 श्वरकी पूजा करेगा, उसकी पूजा व्यर्थ हो जायगी ॥१४२॥१४३॥ इतना कहकर रामने फिर हनुमान्‌से कहा
 कि जो तुम मेरे लिए उत्तम लिङ्ग लाये हो ॥१४४॥ वह विश्वनाथलिङ्ग यों ही इस देवालयमें पढ़ा
 रहे । बहुत कालतक यह उत्तम लिङ्ग घरतीपर अपूजित ही पढ़ा रहेगा ॥१४५॥ आगे चलकर बहुत दिनों बाद
 उसकी भी मैं अवश्य स्थापना करूँगा । वह लिङ्ग अभी भी वहाँ विश्वेश्वरलिङ्गके पास पढ़ा हुआ है ॥१४६॥ न
 अभी उसकी प्रतिष्ठा हुई है और न कोई उसकी पूजा हो करता है । रामने फिर हनुमान्‌से कहा कि तुम्हारी पूँछ
 यहींपर छिन्न हुई है । अतः तुम यहींपर भूमिमें छिन्नपुच्छ तथा गुप्तपाद होकर अपने गर्वका स्मरण करते हुए
 पड़े रहो । तब हनुमान्‌ने अपने अंशसे वहीं अपनी मूर्ति स्थापित कर दी ॥१४७॥१४८॥ अभी भी वहीं
 हनुमान्‌की छिन्नपुच्छ और गुप्त पाँवकी मूर्ति विद्यमान है । जहाँपर मारुति मूर्छित होकर गिरे थे, वह उत्तम
 स्थान मारुतिके नामसे पवित्र तथा पापोंको नष्ट करनेवाला तीर्थ प्रसिद्ध हुआ । वहीं ही रामने भी अपने नामसे
 एक उत्तम तीर्थ बनाया ॥१४९॥१५०॥ रामने वहाँ अपने अंशकी एक मूर्ति भी स्थापित कर दी । सेतु-
 माधव नामकी वह मूर्ति अभी भी वहीं प्रस्तुत है ॥१५१॥ हे पार्वति ! लक्ष्मणने भी वहीं अपने नामका उत्तम
 तीर्थं स्थापित किया । पश्चात् रामने अपने हाथसे शूकर हनुमान्‌की पूँछको पूर्ववत् सुन्दर तथा दृढ़ सन्धियुक्त
 बनाकर हनुमान्‌को प्रसन्न कर लिया । पूँछसे लपेटे जानेके कारण रामेश्वरका मस्तक कुछ दब गया
 था ॥१५२॥१५३॥ वह शिवमस्तक अभी भी बैसा ही चिपटा है । तबसे हनुमान् रामके समक्ष सर्वथा
 गर्वरहित हो गये ॥१५४॥ हे देवि ! उस समय बालूके लिङ्गमेंसे प्रकट होकर मैंने रघुद्वह रामसे जो कुछ
 कहा था, वह सब तुमको सुनाता हूँ । ज्यान देकर सूनो ॥१५५॥ मैंने कहा—हे राघवेन्द्र ! हे रघुश्रेष्ठ !
 तुम्हें मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ । एक समय कौसुकक्षा मैं पुराने कपड़े पहिन तथा ग्राहणका

मद्रूपमोहिताः सर्वा कृष्णिपत्न्यः सहस्रशः । मत्पृष्ठे ताः समाजमुर्मर्तुभिर्वारिता अषि ॥१५८॥
 तदा ते चुक्षुभुः सर्वे मामज्ञात्वा मुनीश्वराः । ददुः शार्पं महाघोरं क्रोधसविग्नमानसाः ॥१५९॥
 स्त्यर्थं मोहिता नार्यस्त्वया तस्माद्द्विजाथम् । पतत्वद्य रतेरंगं लिंगं भुवि च नो गिरा ॥१६०॥
 एवं द्विजैर्यदा शसोऽपतल्लिंगं तदा भुवि । द्विजच्छश्वस्य मे राम गतोऽहं गुपतां तदा ॥१६१॥
 द्विजनायोऽप्यदृष्ट्वा मां जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति । तल्लिंगं वृत्तधे भूम्यां गगनं व्याप्य संस्थितम् ॥१६२॥
 तदृदृष्ट्वा चकितो वेधास्तस्यांत द्रष्टुमुद्यतः । पश्यतस्तस्य कोट्यब्दैर्नान्तमसीच्च वेधसः ॥१६३॥
 तदा मामेत्य स विधिर्भयाद्गृहं न्यवेदयत् । अकाले प्रलयस्त्वद्य शम्भोऽनेन भविष्यति ॥१६४॥
 तदा मया पूर्ववृत्तं विधिं सश्राव्य सादरम् । त्रिशूलो वेधसे दत्तस्तं छेन्तु सोऽत्रवीच्च माम् ॥१६५॥
 कथं तेऽङ्गं दारयेऽहं त्वमेव छेन्तुमर्हमि । ततो मयार्कखंडानि छतानि तस्य राघव ॥१६६॥
 त्रिशूलेनापि क्षिप्तानि भूम्यां निपतितानि हि । तज्जातान्यत्र लिंगानि ज्योतिःसंज्ञानि द्वादश ॥१६७॥
 उँकारः सोमनाथश्च त्यम्बको मल्लिकार्जुनः । नागेशो वैद्यनाथश्च काशीविडवेश्वरस्त्वहम् ॥१६८॥
 केदारेशो महाकालो भीमेशो घृमृणेश्वरः । एवमेकादश ज्ञेया ज्योतिलिङ्गमयाः शुभाः ॥१६९॥
 गन्धमादननाम्नेशो मेरोरीशानदिक्स्थितः । आमीचिचरं न कस्यापि मानवस्याक्षिगोचरः ॥१७०॥
 तदा ते मुनयः सर्वे शिवं बुद्ध्वा तु लिङ्गतः । ददुवरे पुनलिङ्गं तवाम्तु गिरिजाप्रिय ॥१७१॥
 ततः प्रलयवातेन गन्धमादननामकम् । तन्मेरोरुत्तरं शृङ्गमेकदाऽत्रापत्त्वुवि ॥१७२॥
 तदिदं द्युविधसंयोगे दक्षिणे सागरांभसि । गन्धमादननाम्नेदं शृंगं पद्यात्र राघव ॥१७३॥
 गन्धमादननाम्नेशं लिंगं द्वादशमं त्विदम् । त्वन्प्रतिष्ठितलिंगस्य हीशान्यामन्तिके स्थितम् ॥१७४॥

रूप घरकर आनन्दसे भिक्षाके लिए पृथिवीपर विचर रहा था । इस प्रकार कृष्णियोंके आश्रममें घूमता हुआ उड़े देखकर संकहों कृष्णिपत्नियां मेरे रूपपर मोहित हो गयी । पतियोंके रोकनेपर भी वे नहीं रुकी और मेरे पांछ पीछे घूमने लगी ॥ १५६-१५८ ॥ तब वे सब मुनीश्वर मुझे न पहिचानकर बहुत चकराय और कुद्ध हाकर उन्होंने मुझ बढ़ा भयानक शाप दे दिया ॥ १५९ ॥ उन्होंने कहा—अरे अधम ब्रह्मण ! तूने रति करनके लिए हमारी स्त्रियोंको मोहित कर लिया है । इससे तेरे रतिका सावन अङ्ग अर्थात् लिङ्ग हमारे कहनेसे कटकर जमानपर गिर पड़े ॥ १६० ॥ हे राम ! उनके शापसे द्विजवेशवारी मेरा लिङ्ग कटकर तुरन्त जमानपर गिर पड़ा । बादमें मैं अन्तर्धान हो गया ॥ १६१ ॥ मुझे न देखकर वे द्विजोंका स्त्रियों भी अपन-अपन घर चली गयी । तदनन्तर वह लिङ्ग इस प्रकार बढ़ा कि आकाश तक व्याप्त हो गया ॥ १६२ ॥ वह देखकर ब्रह्मा बहुत चकित हुए और उसका अन्त दखनके लिए उद्यत हो गये । कराढ़ों वपं तक पता लगानपर भा ब्रह्माको जब मेरे लिङ्गका अन्त नहीं मिला ॥ १६३ ॥ तब मेरे पास आकर उरते हुए उन्होंने कहा—हे शंभा ! इससे तो अकालम ही प्रलय होना चाहता है ॥ १६४ ॥ मैंने ब्रह्माको पूर्व वृत्तात सुनाकर सादर उनके हाथमें उस लिङ्गको काटनेके लिए अपना त्रिशूल दे दिया । तब ब्रह्माने कहा—॥ १६५ ॥ मैं भला आपके अगका कंस काट सकता हूँ । आप ही इस काटे । हे राघव ! तब मैंने उस लिंगके बारह ढुकड़ कर डाल ॥ १६६ ॥ फिर त्रिशूलसे हा उठाकर उनका दृच्छापर इधर-उधर फेंक दिया । वे ही बारहों ढुकड़ वहांपर बारह ज्योतिलिङ्ग नामसे विवरित हुए ॥ १६७ ॥ काकारनाथ, सोमनाथ, त्यम्बकेश्वर, मलिलकार्जुन, नागेश, वैद्यनाथ, काशीविश्वनाथ, केदारनाथ, कदारेश्वर, महाकाल, और घृमृणेश्वर ये बारह शुभ ज्योतिलिङ्ग हैं ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ बारहवाँ लिङ्ग गवमादन पवित्रके इशान काणदाल जिल्लरपर बहुत काल तक स्थित रहकर भा किसा मनुष्यका दृष्टिम नहीं आया ॥ १७० ॥ तब मुनियोंने लिंगके द्वारा शिवको पहिचानकर पुनः बर दिया—हे गिरिजाप्रिय ! तुम्हारे फिर लिंग हा जाय ॥ १७१ ॥ तदनन्तर एक समय वह मेरुका गंधमादन नामक उत्तरी शिल्पर प्रलयवायुस उड़कर यहाँ आ गिरा ॥ १७२ ॥ हे राघव ! इस गंधमादन शिल्परको तुम यहाँ दक्षिणी समूद्रके संगमपर जलमें देख सकते हो ॥ १७३ ॥ बारहवाँ भंडमादन

एतावत्कालपर्यंतं नेदं कैश्चिद्दिलोकितम् । अघ त्वया वानरार्द्धस्तुं सपृष्टं विमोक्षदम् ॥१७५॥
 त्वत्प्रतिष्ठितलिंगस्य प्रसादादवनीतले । ख्यातिं गतं त्विदं लिंगं यस्मात्तस्माद्रघूतम् ॥१७६॥
 अस्य लिंगस्य यज्जयोतिर्मदीयं त्वत्प्रतिष्ठिते । यास्यत्यद्य सैकतेऽत्र लिंगे सेतौ गिरा मम ॥१७७॥
 ज्योतिर्लिङ्गं द्वादशमं तव रामेश्वराभिधम् । बदंत्यत्र जनाः सर्वे श्वारम्य रघूतम् ॥१७८॥
 पूजोत्सवादिकं कर्म यद्यत्किञ्चिद्दिरा मम । तवैव लिंगे तत्सर्वमस्तु रामेश्वरे सदा ॥१७९॥
 अहं चापि मुनेवर्वाक्यादगस्तोस्त्वद्विरापि च । त्यक्त्वा काशीमागतोऽस्मि त्वश्चिङ्गेऽस्मिन्वसाम्यहम् ॥
 प्रणमेत्सेतुवधे यः पुमान् रामेश्वरं शिवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते तदनुग्रहात् ॥१८१॥
 त्वं बदाय रघुश्रेष्ठ वरं येन जनाः सदा । स्नानार्थमानयिष्यन्ति मणिकणिंजलं मम ॥१८२॥
 ममैतद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो रघुनायकः । जगाद स्नात्वा सेतुवधे रामेशं परिपश्यति ॥१८३॥
 संकल्प्य नियतो भूत्वा गृहीत्वा सेतुबालुकाम् । करंडिकाभिर्यत्नेन गत्वा वाराणसीं शुभाम् ॥१८४॥
 क्षिप्त्वा तां बालुकां त्यक्त्वा वेण्यां बालुकरंडिकाम् ।

आनीय गंगासलिलं रामेशमभिष्यति च ॥१८५॥

समुद्रे त्यक्तवद्धारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम् । संकल्पेन विना गंगा रामेशं नाममिष्यति ॥१८६॥
 आगता चेत्तदा ज्ञेयः संकल्पः पूर्वजन्मनि । कृतोऽस्तीत्यत्र मद्वाक्याभात्र कार्या विचारणा ॥१८७॥
 एवं नानावरान्नामो यावलिंगाय सोऽव्रीत् । तावत्तत्र समायातः कुम्भजन्मा मुनीश्वरः ॥१८८॥
 ननाम शंकरो रामं रामोऽपि प्रणनाम तम् । तदा मुनिः प्राह रामं प्रसादात्तव राघव ॥१८९॥
 दर्शनं विश्वनाथस्य जातं मेऽद्यात्र वै चिरात् । अद्यात्र तुष्टिर्जाता मे लिंगमत्र करोम्यहम् ॥१९०॥
 इत्युक्त्वा स्थापयामास स्वनाम्ना लिंगमुत्तमम् । रामेश्वराग्निदिग्भागे कुम्भजन्मा मुदान्वितः ॥१९१॥

लिंग तुम्हारे प्रतिष्ठित लिंगकी ईशानदिशामें पास ही विद्यमान है ॥ १७४ ॥ इतने समय तक इसको किसीने नहीं देखा था । पर आज वानरसहित तुमने इस मोक्षप्रद लिंगको स्पष्ट देख लिया है ॥ १७५ ॥ तुम्हारे द्वारा स्थापित लिंगकी महिमासे ही पृथ्वीपर इसकी प्रसिद्धि हुई है । इस कारण है रघूतम ! इस लिंगकी जो ज्योति है, वह ज्योति तुम्हारे द्वारा स्थापित बालुकामय लिंगमें मेरे कहनेसे आज ही चली आयगी ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ हे रघूतम ! आजसे बारहवाँ ज्योतिलिङ्ग तुम्हारा स्थापित रामेश्वर ही दुनियाके सब मनुष्योंमें प्रसिद्ध होगा ॥ १७८ ॥ मेरे वचनसे पूजा आदि सब उपचार सदा तुम्हारे रामेश्वर लिंगका ही होगा ॥ १७९ ॥ मैं भी अगस्त्य मुनिके तथा तुम्हारे कहनेसे काशी छोड़कर यहाँ आ गया हूँ और अब तुम्हारे इस लिंगमें ही निवास करूँगा ॥ १८० ॥ जो मनुष्य सेतुवन्ध रामेश्वरको प्रणाम करेगा, वह मेरी कृपासे ब्रह्महत्या आदि भयानक पापोंसे भी मुक्त हो जायगा ॥ १८१ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप मुझे यह वर दें कि सब लोग मुझे स्नान करानेके लिए सदा काशीकी मणिकणिकाका जल लाकर चढ़ाया करें ॥ १८२ ॥ हे पार्वती ! मेरे इस वचनको सुनकर श्रीराम हर्षित होकर बोले कि जो मनुष्य सेतुवन्धमें स्नान करके रामेश्वर शिवका दर्शन करेंगे ॥ १८३ ॥ फिर दृढ़ संकल्पसे सेतुकी बालुकाको काँवरमें रखकर प्रेम तथा यत्नसे काशीमें ले जाकर गंगाके प्रवाहमें डालेंगे और उस काँवरको वहाँ छोड़कर दूसरी काँवरके द्वारा गंगाजल लाकर उससे रामेश्वरका अभिषेक करेंगे ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ वहाँ उस काँवरको भी समुद्रमें फेंककर निःसंदेह ब्रह्मपदको प्राप्त होंगे । जबतक दृढ़ संकल्प न होगा, तब तक रामेश्वर आना न होगा ॥ १८६ ॥ कदाचित् कोई जागया तो यही जानना चाहिए कि उसके पूर्वजन्मका संकल्प था । मेरे कहनेसे आप इस बातमें तमिक भी संदेह न करें ॥ १८७ ॥ इस प्रकार राम जब अनेक वर दे रहे थे, तभी वहाँ कुम्भजन्म (अगस्त्य) मुनि आ पहुँचे ॥ १८८ ॥ उन्होंने वहाँ आकर शिव तथा रामको प्रणाम किया । तब रामने भी मुनिको प्रणाम किया । अगस्त्य मुनिने रामसे कहा— हे राघव ! आपके मनुष्यहसे मुझे आज बहुत दिनके बाद विश्वनाथका दर्शन प्राप्त हुआ है । इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है । इसलिए मैं भी यहाँ एक लिंग स्थापित करता हूँ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ इतना कहकर अगस्त्य मुनिने भी बप्तमें नामदे एक उत्तम

पूजयामास तलिंगमगस्तीश्वरनामकम् । नत्वा स्तुत्वा विश्वनाथं रामं रामेश्वरं तथा ॥१९२॥
 दृष्टा पुरातनं लिंगं गंधमादननामकम् । यद्यौ स्त्रीयाश्रमं तुष्टः कुंभजन्मा मुनीश्वरः ॥१९३॥
 सेरौ रामेश्वरस्यैव देवि देवालये शुभे । दिश्याग्नेश्यामगस्तीशमीशान्यां गंधमादनम् ॥१९४॥
 वतेऽद्यापि द्वे लिंगे कश्चिज्ञानाति वा न वा । प्रसिद्धोऽभूच्च रामेशः स्वर्गमृत्युरसातले ॥१९५॥
 वर्तो रामाज्ञया सेतुं नलः कर्तुं मनो दधे । किंचिद्वर्वसमाविष्टस्तज्जातं राघवेण हि ॥१९६॥
 यावदेकां शिलां त्यक्त्वा नलोऽन्यां प्राक्षिपच्छिलाम् ।

तावत्तरं गक्खोलैः सागरस्य इतस्ततः ॥१९७॥

गच्छंतिस्म शिलाः सर्वास्ता दृष्टा खिन्नमानसः । गतगर्वस्तदा रामं नलो वृत्तं न्यवेदयत् ॥१९८॥
 रामः श्रुत्वा नलं प्राह रामेति द्वेऽक्षरे मम । दृष्टोः संधिसिद्धथर्थं पृथग्विलिखतां द्वयोः ॥१९९॥
 सर्वत्रैवं लिखित्वा हि दृढः संधिर्भविष्यति । तथेति रामवचनात्तथा चक्रे नलस्तदा ॥२००॥
 कृतः पंचदिनैः सेतुः शतयोजनमुत्तमः । कृतानि प्रथमेनाह्वा योजनानि चतुर्दश ॥२०१॥
 द्वितीयेन तथा चाह्वा योजनानां च विंशतिः । तृतीयेन तथा चाह्वा योजनान्येकविंशतिः ॥२०२॥
 चतुर्थेन तथा चाह्वा द्वाविंशतिरिति श्रुतम् । पंचमेन त्रयोविंशद्योजनानां शतं त्विति ॥२०३॥
 विस्तृतो द्वादश प्रोक्तो योजनानि दृष्टन्मयः । एवं वर्वंध सेतुं स नलो वानरसत्तमः ॥२०४॥
 ये मज्जांति निमज्जयति च परान् ते प्रस्तरा दुस्तरे वाधीं येन तरंति वानरभटान् संतारयतेऽपि च ।
 नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः श्रीमदाशरथः प्रतापमहिमा सोऽयं समुज्जूम्भते ॥२०५॥
 तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम् । आरुह्य मारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यंगदं तथा ॥२०६॥
 जगाम वायुवल्लंकासंनिधिं सेनया वृतः । असंख्याताः सुवेलादिं रुहुः प्लवगोत्तमाः ॥२०७॥

लिङ्ग स्थापित किया । मुनिने आनन्दके साथ रामेश्वरके अग्निकोणमें उसकी स्थापना की ॥ १९१ ॥ इस प्रकार
 मुनिने अगरतीश्वर नामक लिंगकी पूजा करके विश्वनाथ, रामेश्वर एवं श्रीरामकी रत्नि तथा प्रणाम करनेके
 अनन्तर पुरातन गंधमादन लिंगका दर्शन किया और प्रसन्न होकर अपने आश्रमको चले गये ॥ १९२ ॥ १९३ ॥
 हे देवि ! सेतुबंध रामेश्वरके देवालयमें ही आग्नेयकोणमें अगरतीश्वर तथा ईशानकोणमें गन्धमादनेश्वरका
 लिंग अभी भी विद्यमान है । उन्हें कोई इन नामोंसे जानता है और कोई नहीं भी जानता । रामेश्वरका लिंग
 स्वर्ग, पाताल तथा मृत्यु इन तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया ॥ १९४ ॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे नलने कुछ
 गर्वयुक्त होकर पुल बाँधना आरम्भ कर दिया । रामको इस गर्वका पता लग गया ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ इसके
 बाद नलने जलमें एक पत्थर डालकर दूसरा ज्यों ही डाला, त्यों ही समुद्रकी तरंगित लहरियोंसे सब शिलाएं
 इधर-उधर छितराने लगीं । यह देखा तो खिन्नमन हो तथा गर्व त्यागकर नल रामके पास गये और सब
 वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ यह सुनकर रामने नलसे कहा कि मेरे नामके 'रा म' ये दो अक्षर
 पत्थरोंको एक साथ मिलानेके लिये दोनों शिलाओंकी बगलमें लिख दो ॥ १९९ ॥ ऐसा लिख देनेसे
 सब एक दूसरेके साथ दृढ़तासे जुड़ जायेंगे और संधि (सौंस) न रहेगो । नलने भी 'तथास्तु' कहकर रामके
 क्षयनानुसार ही किया ॥ २०० ॥ ऐसा करनेपर पाँच दिनमें सौ योजन लम्बा, सुन्दर और दृढ़ सेतु बन गया ।
 पहिले दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन इक्कीस, चौथे दिन बाईस और पाँचवें दिन तेहसि
 योजन पुल बैंधा । इस प्रकार सौ योजन पूरे हो गये ॥ २०१-२०३ ॥ उसमें भी बारह योजन एकमात्र पत्थर-
 का ही पक्का पुल बनाया गया । इस तरह बानरोत्तम नलने सेतु बाँधकर तैयार किया ॥ २०४ ॥ जो पत्थर
 स्वयं ढूबते और दूसरोंको ढूबाते हैं, वे ही दुस्तर समुद्रमें स्वयं तैरने तथा दूसरोंको तारने लग गये ।
 यह गुण न पत्थरका है, न समुद्रका और न बानरोंका । परन्तु यह गुण तो केवल दशरथतनय रामका
 ही है । जिनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥ २०५ ॥ उस पुरुषके द्वारा बानरगण सौ योजन सागर शीघ्र ही
 पार कर गये । राम हनुमानके कंधे तथा लक्ष्मण अङ्गदके कंधेपर चढ़कर वायुवेगसे सेनाके साथ लंकाके पास

ततः सैन्ययुतो रामः सुवेलादिं ययौ मुदा । दिदृक्षु राघवो लंकामारुरोहाचलं शुभम् ॥२०८॥
 सुवेलादिं महारम्यं तरुवल्लिविराजितम् । ददर्शे लंकां विस्तर्णीं रामश्चित्रघ्वजाकुलाम् ॥२०९॥
 चित्रप्रासादसंचाधां स्वर्णप्राकारतोरणाम् । परिखाभिः शतधनीभिः संक्रमैश्च विराजिताम् ॥२१०॥
 प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरम् । पश्यन्तं कपिसैन्यं तं सन्ददर्श रघुद्वहः ॥२११॥
 ततो रामेण मुक्तः स शुको गत्वा दशाननम् । कपिसैन्यं दर्शयन्तं बोधयामास रावणम् ॥२१२॥
 सीतां प्रयच्छ रामाय लंकाराज्ये विभीषणम् । कृत्वा तं शरणं याहि नो चेद्रामाश्च मोक्ष्यसे ॥२१३॥
 तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधाच्छ्रुकं धिक्कृत्य वै मुहुः । दृतैर्गहाद्वहिः कृत्वा रामसेना व्यलोक्यत् ॥२१४॥
 शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं वरिष्ठो ब्रह्मवित्तमः । अयजत् क्रतुभिर्देवान् विरोधो राक्षसैरभूत् ॥२१५॥
 वज्रदंष्ट्रं हति रुयातस्तदैको राक्षसो महान् । मांसान्नं याचितं दृश्या मुनिना कुंभजन्मना ॥२१६॥
 शुकभार्याविपुर्धृत्वा नरमांसं समर्पयत् । तदा श्रमः शुकस्तेन त्वं रक्षो भव मा चिरम् ॥२१७॥
 रक्षः कृतं पुनर्धर्यानाज्ञान्वा तत्प्राथितोऽब्रवीत् । रामस्य दर्शनं कृत्वा बोधयित्वा दशाननम् ॥२१८॥
 त्वं प्राप्त्यसि निजं रूपं तस्माज्जातः शुको द्विजः । सुवेलशिखरे संस्थः संमंत्रय कपिभिस्ततः ॥२१९॥
 सूचनार्थं रिषुं रामोऽङ्गदं लंकामचोदयत् । सोऽपि रामाज्या गत्वा नानानीत्युच्चरैस्तदा ॥२२०॥
 रावणं बोधयामास सभायां लाङुलासने । संस्थितोऽभीतवद्वालितनयः स्वस्थमानसः ॥२२१॥
 शृणु रावण मद्वाक्यं हितं ते प्रवदाम्यहम् । सीतां सत्कृत्य सधनां प्रयच्छ राघवं जवात् ॥२२२॥
 रामं नारायणं विद्धि विद्रेषं त्यज राघवे । यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम् ॥२२३॥
 तरन्ति भक्तिपूतास्ते इतो रामो न मानुपः । मद्वाक्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे ॥२२४॥

जा पहुँचे । वानरोंमें उत्तम असंख्य वानर सुवेल पर्वतपर जा चढ़े ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ उनके पीछे राम भी अपनी सेनाके साथ सहर्षं सुवेलगिरिपर गये । वहाँ जाकर राम लंकाको देखनेके लिए उसके एक सुन्दर शिखरपर चढ़े ॥ २०८ ॥ वह पर्वत बड़े मनोहर वृक्षों तथा लताओंसे मंडित था । वहाँ रामने बड़ी विस्तृत, रंग-विरंगी व्यजाओंसे व्याप्त, अनेक प्रकारके भवनोंसे सधन, स्वर्णके गढ़ तथा तोरण युक्त खाईं, सुरंगों तथा तोपोंसे विराजित लंकाको देखा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ वहाँसे रामने एक प्रासाद (महल) के ऊपर विस्तीर्ण प्रदेशमें बैठकर कपिसेनाको देखते हुए दशकन्धर रावणको देखा ॥ २११ ॥ तदनन्तर रामने केद किये हुए शुकको छुड़वा दिया । उसने जाकर रावणको वानरी सेना दिखायी और समझाया—॥ २१२ ॥ तुम सीता रामको दे दो, लङ्घाका राज्य विभीषणको दे दो और रामकी शरणमें चले जाओ । नहीं तो राम तुमको जीवित नहीं छोड़े ॥ २१३ ॥ यह सुनकर क्रोधसे पागल रावणने शुकको बार-बार बिकारा और दूतोंसे बाहर निकलवाकर रामकी सेना देखने लगा ॥ २१४ ॥ शुक पहिले एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था । उसने यज्ञ द्वारा देवताओंको प्रसन्न किया था । इस कारण राक्षसोंसे उसका विरोध हो गया ॥ २१५ ॥ तदनन्तर एक दिन वज्रदंष्ट्रं नामक राक्षसने अगस्त्य मुनिको शुकसे मांसान्न मांगते देखकर शुककी स्त्रीका रूप धारण करके मनुष्यका मांस पकाकर मुनिको परोस दिया । तब मुनिने कुद्ध होकर शुकको शाप दे दिया कि जा, तू शीघ्र राक्षस हो जा ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ पुनः शुकके प्रार्थना करनेपर मुनिने व्यान घरके देखा तो मालूम हुआ कि यह तो एक राक्षसका कृत्य है । तब मुनिने कहा—हे शुक ! तू रामका दर्शन करके और रावणको समझाकर फिरसे अपने स्वरूपको प्राप्त हो जायगा । इसी कारण अब वह शुक पुनः ब्राह्मण हो गया । इबर रामने सुवेल पर्वतके शिखरपर बैठकर वानरोंको आमन्त्रित किया और शत्रुको सूचना देनेके लिए अंगदको लंका भेजा । उसने जाकर रामकी आज्ञासे अनेक नौतिवाक्यों द्वारा रावणको समझाया ॥ २१८-२२० ॥ सभामें अपनी पूँछका मोड़ा बनाकर उसपर बैठे हुए अंगदने निर्भय होकर स्वस्थ भनसे रावणको समझाते हुए कहा—॥ २२१ ॥ हे रावण ! मैं तुमको हितका उपदेश देता हूँ, मुझे । मेरी सलाह मानो और घनसे सीताका सल्कार करके झटपट रामको दे जाओ ॥ २२२ ॥ रामको साक्षात् नारायण समझो

एवं नानाविधेद्विक्यैरंगदेनातिवोधितः । सोऽयं नीत्युत्तराण्यस्य नाश्रूणोद्भानरस्य च ॥२२५॥
 उवाच क्रोधसंयुक्तो वानरं स दशाननः । भीषयसेऽयं किं मां त्वं रावणं लोकरावणम् ॥२२६॥
 येन सर्वे जिता देवाः कैलासः कंपितो मया । तस्य मेऽग्रे मर्कटं त्वं कत्थसे किं मुखाऽयं हि ॥२२७॥
 क्षणेन राघवौ हत्वा हत्वा सुग्रीवमारुती । हत्वा विभीषणं त्वां च वानरान् भक्षयाम्यहम् ॥२२८॥
 रावणस्य वचश्चेत्यं श्रुत्वा प्राहांगदश्च तम् । जानाम्यहं पौरुषं ते वलिपाशविचूर्णित ॥२२९॥
 शिवपादांगुष्ठ मारनम्रकलासपीडित । सहस्रार्जुनवीरात्मसंभवक्रीडनमृग ॥२३०॥
 श्वेतद्वीपस्थप्रमदाकरताडितसन्मुख । विष्णुपुत्रोऽयं वै ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतः स्मृतः ॥२३१॥
 तत्सुतः कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभृदिद्रनामकः । तेनैव युद्धकाले तु बद्ध्वा कागगृहस्थित ॥२३२॥
 पर्यकोपरि संबद्धमन्मूत्रक्षालितानन । इति तद्वाक्यशरावाततर्जितः स दशाननः ॥२३३॥
 दृतानात्तापयामास ताडनीयो मुखे त्वयम् । तथेत्युक्त्वा राक्षसास्ते शख्दहस्ताः सहस्रशः ॥२३४॥
 अंगदं दृद्रुतुः शीघ्र तान् दृष्ट्वा वानरोत्तमः । मर्दयामास पुच्छेन तान्सर्वान् क्षणमात्रतः ॥२३५॥
 रावणास्येषु संताद्य स्वकराभ्यां मुहूर्महुः । तद्वस्तुपादौ पुच्छेन पूर्वं बद्ध्वा सविस्तरम् ॥२३६॥
 ततश्चोद्धीय वेगेन ययौ प्रासादमस्तकः । सुवेलाद्रौ राघवेन्द्रं तारेयः स विहायसा ॥२३७॥
 अगदं राघवो दृष्ट्वा प्रासादान्वितमस्तकम् । उवाच किं कृतं वाल प्रासादोऽयं त्वया कथम् ॥२३८॥
 समानीतोऽत्र लंकाया मित्रायेयं पुरी मया । अपिताऽस्ति ततो मित्रवस्त्वदं न स्पृशाम्यहम् ॥२३९॥
 तद्राघववचः श्रुत्वा चकितः स तदांगदः । प्रासादं मस्तके दृष्टोऽधर्वाक्षिभ्यामाह राघवम् ॥२४०॥

और उनसे द्वेष वरना छोड़ दो । जिनके चरणकमलरूपी जहाजका आश्रय लेकर जानी लोग भृत्यसे पवित्र मन होकर इस संसाररूपी समुद्रको अनायास पार कर जाते हैं, वे राम मनुष्यमात्र नहीं हैं । हे राजेन्द्र ! परि अपने कुलकी कुशलता चाहते होओ तो मेरा कहा करो ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ इस प्रकार विविध वाक्योंसे अङ्गदने उसे बहुत समझाया, परन्तु उसने अङ्गदका एक भी नीतिपूर्ण वाक्य नहीं सुना ॥ २२५ ॥ प्रत्युत कुद्ध होकर रावणने अङ्गदसे कहा—अरे नीच ! तू आज सब लोकोंको रुलानेवाले मुझ रावणको डराने आया है ? ॥ २२६ ॥ अरे ! मैंने संपूर्ण देवताओंको जीतकर कैलास तकको कैपा दिया है । ऐसे मुझ वीरके सामने अरे मर्कट ! तू क्यों व्यर्थका बकवास कर रहा है ॥ २२७ ॥ मैं क्षणभरमें राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण, तुझे और सब वानरोंको मारकर खा सकता हूँ ॥ २२८ ॥ इस प्रकार रावणका गर्वभरा वाक्य सुनकर अङ्गदने कहा—हे वलिपाशसे विचूर्णित ! हे शिवपादांगुष्ठसे आनन्द कैलाससे पीडित ! हे वीरात्मा कात्तवीर्यके ऋडामृग ! हे श्वेतद्वीपकी स्त्रियोंके हाथसे ताडित मुखवाले रावण ! मैं तेरे बलको जानता हूँ । यह भी मुझे मालूम है कि विष्णुके पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके पुत्र कश्यप, कश्यपके पुत्र इन्द्र और इन्द्रके पुत्र वालिने तुमको युद्धके समय वाँधकर कारागारमें डाल रखवा था । वहाँ तुम्हारा मुख चारपाईमें बड़े रहनेके कारण मेरे मल-मूत्रसे भर जाता था । अङ्गदके इन वाक्यरूपी वाणोंसे विद्ध होकर रावण उनेजित हो उठा ॥ २२९-२३३ ॥ उसने दूतोंको आज्ञा दी कि मार-मारकर इसका मुँह लाल कर दो । तब “तपास्तु” कहकर हजारों राक्षस हाथमें शस्त्र लेकर अङ्गदकी ओर झपटे । उन्हें देखकर वानरोत्तम अङ्गदने अपनी दुँड़की मारसे उन सबको क्षणभरमें घराशायी कर दिया ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ तदनन्तर पूँछसे रावणके हाथ पाँव चन्द्र-भाँति वाँधकर अंगदने उसके मुखोंपर खूब तमाचे लगाये ॥ २३६ ॥ तत्पश्चात् वहाँसे उड़कर कारपुत्र अंगद आकाशमार्गसे सुवेल पर्वतपर रामके पास लौट गये । उड़ते समय रावणका महल भी उनके सिरपर बैठकर चला आया ॥ २३७ ॥ रामने अंगदको मस्तकपर महल लिये आते देखकर हहा—हे वालिपुत्र ! तुम इस महलको क्यों उठा लाये ? ॥ २३८ ॥ मैंने लंकापुरो मित्र विभीषणको अपेण कर दी है । इसलिए मैं तो मित्रकी इस वस्तुको छू भी नहीं सकता ॥ २३९ ॥ रामकी यह बात सुनकर अङ्गद चकित हो गये । जब अङ्गदने ऊपरकी ओर आँखें कीं तो अपने सिरपर मकान देखकर रामसे

न ज्ञातोऽयं मया राम प्रासादो मस्तकेन मे । उत्पाटितश्च लंकायाः समानीतस्तवांतिकम् ॥२४१॥
 पुनर्नीत्वाऽयं लंकायामेन संस्थापयाम्यहम् । इत्युक्त्वा परिवृत्याथ राघवस्याज्ञयांगदः ॥२४२॥
 प्रासादं पूर्ववृत्स्थाप्य लंकायां स ययौ पुनः । सुवेलाद्रौ राघवेन्द्रं नत्वा वृत्तं न्यवेदयत् ॥२४३॥
 यद्यत्कृतं तु लंकायां संवादं रावणस्य च । रामोऽपि श्रुत्वा तत्सर्वं स्मित्वा तं परिष्वजे ॥२४४॥
 अथ श्रीरामचन्द्रोऽपि सुवेलाद्रौ स्थितस्तदा । लीलया चापमादाय मुमोच शरमुत्तमम् ॥२४५॥
 तेन छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा । लंकायां राक्षसेन्द्रस्य प्रासादे संस्थितस्य च ॥२४६॥
 चिन्छेद निमिषाधेन कपीनां पश्यतां प्रभुः । एतस्मिन्मन्तरे तत्र रामाये संस्थितो महान् ॥२४७॥
 न दत्तां जानकीं श्रुत्वा रावणेनांगदास्यतः । क्रोधेन महताविष्टः सुग्रीवः प्लवगाग्रणीः ॥२४८॥
 ययावुद्दीय लङ्कायां दशास्यं राक्षसैर्युतम् । प्रासादसंस्थितं छत्रहीनं प्रव्यग्रमानसम् ॥२४९॥
 सुग्रीवो रावणं गत्वा जघान दृढमुष्टिना । पातयामास भूम्यां तं वरसिहासनात्तदा ॥२५०॥
 चक्रतुस्तौ बाहुयुद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् । उच्चार्णिकरहृदस्तैः कपीशराक्षसेश्वरौ ॥२५१॥
 तदासीज्जर्जरांगः स रावणः कपिधाततः । दुद्रुवे बाहुयुद्धं तत्त्वक्त्वा गेह विलजितः ॥२५२॥
 तदाऽच्छिद्य तन्मुकुटं ययौ रामं कपीश्वरः । ननाम राघवं भक्त्या वृत्तं सर्वं न्यवेदयत् ॥२५३॥
 तं समालिंग्य रामोऽपि सुग्रीवं प्राह सादरम् । मामपृष्ठा कथं बन्धो गतस्तूष्णीं दशाननम् ॥२५४॥
 त्वज्ञीवितं विष्वनं चेत्तर्हि किं सीतया मम । भविष्यति न सौख्यं हि मेदशं साहसं कुरु ॥२५५॥
 ततो भेरीमृदंगाद्यैर्वायैस्ते वानरोत्तमाः । लङ्कां संवेष्यामासुश्रुतुद्विरिषु संस्थिताः ॥२५६॥
 तदा तं मुकुटं रामोऽङ्गदाय रावणस्य च । ददौ तुष्टो दशेशाय लङ्कां रोद्धुं प्रचोदयत् ॥२५७॥

बोले—॥ २४० ॥ हे राम ! मुझे तो इस बातका पता भी नहीं था कि मेरे मस्तकपर मकान है और लंकासे उखड़कर यहाँ आपके पास तक चला आया है ॥ २४१ ॥ मैं इसको फिरसे जाकर लङ्कामें रख आता हूँ । इतना कह और रामकी आज्ञा पाकर अंगद तुरन्त लौटे ॥ २४२ ॥ वे उस प्रासादको पूर्ववृत् लङ्कामें रखकर पुनः रामके पास आ गये और नमस्कार करके सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २४३ ॥ लङ्कामें जाकर उन्होंने जो कुछ किया था और रावणके साथ जो संवाद हुआ था, वह सब रामसे कहा । सो सुनकर रामने उनको हृदय-से लगा लिया ॥ २४४ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने सुवेलाद्रिपर खड़े होकर लीलापूर्वक एक उत्तम वाण घनुषपर चढ़ाकर छोड़ा ॥ २४५ ॥ उससे लंकाके महलपर स्थित राक्षसेश्वर रावणके दसों मुकुट तथा हजारों छत्र कटकर क्षणभरमें बानरोंके समक्ष आ गिरे । इतनेमें रामके आगे खड़े सुग्रीवने जब अंगदके मुखसे यह सुना कि रावण सीताको देनेके लिये तैयार नहीं है । तब अतिशय कुपित होकर बानरोंमें अग्रणी सुग्रीव उड़कर लंकामें वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि महलपर छत्र तथा किरीटरहित अत्यन्त व्यग्र मनसे रावण बैठा था ॥ २४६-२४७ ॥ वहाँ जाकर सुग्रीवने रावणको जोरसे एक मुक्का मारा । जिससे दशानन सिंहासनसे जमीनपर गिर पड़ा ॥ २५० ॥ तदनन्तर कपीश सुग्रीव तथा राक्षसेश्वर रावणका आपसमें घोर मल्लयुद्ध होने लगा । वे एक दूसरेको उठा-उठाकर चित्त-पट करने लगे । जिससे कि उनके हाथ-पूर्वि तथा छाती द्वारा निर्मम प्रहारके कारण बड़ी चोट लगती थी ॥ २५१ ॥ अन्तमें सुग्रीवकी मारसे रावणके सब अंग जर्जरित हो गये । तब रावण बाहुयुद्ध करके लज्जाके मारे घरमें भाग गया ॥ २५२ ॥ उसी समय उसका मुकुट छीनकर कपीश्वर सुग्रीव रामके पास आ गये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके सब समाचार कहा ॥ २५३ ॥ रामने आदरके साथ सुग्रीवका आलिंगन किया और कहा—हे बन्धो ! तुम हमसे बिना कहे चुपकेसे रावणके साथ युद्ध करने क्या चले गये ? ॥२५४॥ कहीं तुम्हारे प्राण संकटमें पड़ जाते तो हम सीताको पा करके भी कौन-सा सुख भोगते । अबसे कभी ऐसा साहस नहीं करना ॥ २५५ ॥ बादमें नगाड़ा मृदंग तथा तुड़ही आदि बाजे बजाते हुए सब बानरयोद्धाओंने लंकाको घेर लिया और चारों दरवाजोंको रोककर खड़े हो गये ॥ २५६ ॥ तत्पश्चात् रामने वह रावणका मुकुट प्रसन्न होकर सेनापति अंगदको दे दिया और लंकाको घेरनेके लिये

अङ्गदं दक्षिणद्वारं वायुपुत्रं तु पश्चिमम् । नलं सैन्येन प्राग्द्वारं सुषेण द्वारमौत्तरम् ॥२५८॥
 यपुस्ते राघवं नत्वा लंकां स्वस्वचलैर्युताः । तां लंकां रुधुः सर्वं चतुर्द्वारेषु वानराः ॥२५९॥
 दशास्वोऽपि गृहं गत्वा सुग्रीवजर्जरीकृतः । तस्थौ तूष्णीं स रहसि स्मरन्सुग्रीवपौरुषम् ॥२६०॥
 माली सुमाली च तथा माल्यवान्वान्धवास्त्रयः । मातामहा रावणस्य ते संमन्त्रय परस्परम् ॥२६१॥
 दशाननं वोधयितुं तेभ्यस्त्वेको ययौ जवान् । माल्यवानिति नाम्ना यो बुद्धिमान्स्नेहसंयुतः ॥२६२॥
 प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशांतेनांतरात्मना । शृणु राजन् वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेष्टितम् ॥२६३॥
 यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा । तदादि पुर्या दृश्यते निमित्तानि दशानन ॥२६४॥
 धोराणि नाशहेतूनि तानि मे बदतः शृणु । खराः स्तनितर्निधोषाः मेषाः प्रतिभयंकराः ॥२६५॥
 शोणितान्यभिर्वर्षन्ति लंकामुष्णेन सर्वदा । सीदन्ति देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलन्ति च ॥२६६॥
 कालिका पांडुरैर्दत्तैः प्रहसंतेऽग्रतः स्थिताः । खरा गोषु प्रजायते मूषका नकुलेः सह ॥२६७॥
 माजारेण तु युध्यते पन्नगा गरुडेन च । करालो विकटो मुँडः पुरुषः कृष्णपिंगलः ॥२६८॥
 कालो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते । एतान्यन्यानि दृष्टानि निमित्तान्युद्धवंति च ॥२६९॥
 अतः कुलस्य रक्षार्थं शांतिं कुरु दशानन । सीता सत्कृत्य सधनां रामायाशु प्रयच्छ भोः ॥२७०॥
 मातामहवचश्चेत्थं श्रुत्वा तं रावणोऽत्रवीत् । रामेण प्रेषितो नूनं भाष्ये त्वमनग्निम् ॥२७१॥
 गच्छ वृद्धोऽसि वंधुस्त्वं सोढं सर्वं त्वयोदितम् । इतो वा कर्णपद्मीं दहत्येतद्वचस्तव ॥२७२॥
 हत्युकः स रावणेन माल्यवान्स गृहं ययौ । रावणोपि सभां गत्वा चोदयामास राक्षसान् ॥२७३॥
 पूर्वद्वारं तु धूम्राक्षं वज्रदंष्ट्रं तु पश्चिमम् । नरांतकं दक्षिणं तमुत्तरं च महोदरम् ॥२७४॥

भेजा ॥ २५७ ॥ अङ्गदको दक्षिणी दरवाजेपर, वायुपुत्र हनुमानको पश्चिम द्वारपर, नलको सेनाके साथ पूर्वद्वारपर और सुषेणको उत्तरी दरवाजेपर जानेको कहा ॥ २५८ ॥ वे सब रामको नमस्कार करके अपनी-अपनी सेना लेकर गये और लंकाके चारों दरवाजोंको रोककर खड़े हो गये ॥ २५९ ॥ उबर रावण भी सुग्रीवके हाथसे मार खाकर धायल हो धर जाकर एकान्तमें मन मारके बैठ गया और सुग्रीवके पुरुषार्थका स्मरण करने लगा ॥ २६० ॥ तब रावणके नाना माली, सुमाली तथा माल्यवान् इन तीनों भाइयोंने आपसमें राय की और रावणको समझानेके लिए इन तीनोंमें से बुद्धिमान् तथा स्नेही माल्यवान् उसके पास गया ॥ २६१ ॥ ॥ २६२ ॥ वह शान्तिपूर्वक वीर राक्षसेश्वर रावणको समझाते हुए कहने लगा—हे राजन् ! मेरी बात सुन लें, फिर जंसी आपकी इच्छा हो वैसा करिएगा ॥ २६३ ॥ हे दशानन ! जबसे रामकी प्यारी सीता लंकामें आयी है, तबसे यहाँ बराबर अपशकुन हो देखनेमें आते हैं ॥ २६४ ॥ वे सब भयानक और नाशके निमित्त हैं । उनको मैं कहता हूँ, आप सुनें । मेष तीव्र गर्जनके शब्द करते हुए लंकामें गरम खूनको सतत वर्षा करते हैं । शिवलिंग खिन्न देखनेमें आते हैं । वे कभी पसीजते हैं और कभी काँपने लगते हैं ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ आगे खड़ी कालीकी मूर्तिएँ पीले-पीले दाँत निकालकर हँसती हैं । गायोंके पेटसे गधे पंदा होते हैं । चूहे न्योलों तथा बिलियोंसे लड़ते हैं । साँप गरुडके साथ युद्ध करते हैं । कभी-कभी कराल काल सिर मुड़ाए काले-पीले पुरुषका रूप धारण करके लोगोंको पकड़ता हूँआ दीखता है । इनके अतिरिक्त और भी अनेक अशकुन प्रकट होते दीखते हैं ॥ २६७-२६९ ॥ इसलिए हे दशानन ! कुलकी रक्षाके लिये शान्ति धारण करो और सीताका आदर-सत्कार करके प्रचुर धनके सहित श्रीघ्र रामको सौंप आओ ॥ २७० ॥ यह सुनकर रावणने अपने नानासे कहा कि अवश्य तुम रामके द्वारा यहाँ इस प्रकार अनग्नि (ऊटपटांग) बातें करनेके लिये भेज गये हो । अस्तु, जो हुआ सो हुआ । अब तुम यहाँसे निकल जाओ । वृद्ध तथा सगे नाना होनेके नाते इतनी बातें मैंने सह ली । तुम्हारा बातें हमारे कानोंको जलाये दे रही हैं ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ रावणके एसा कहनेपर माल्यवान् अपने घेर चला गया । रावणने भी सभामें जाकर राक्षसोंको आशा दी ॥ २७३ ॥ तदनन्तर लंकाके पूर्वद्वारपर धूम्राक्षको, पश्चिमी द्वारपर वज्रदंष्ट्रको, दक्षिणी द्वारपर नरांतकको और उत्तरी

प्रेषयामास सैन्येन वस्त्राद्यैस्तोषितान् जवात् । चत्वारस्तेऽपि नत्वा तं रावणं संगरं ययुः ॥२७५॥
एवं रामरावणयोः सैन्यानि च परस्परम् । ययुस्तानि सम्मुखानि संगरार्थं महास्वनैः ॥२७६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
युद्धचरिते रामरावणसेनासंयोगो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(श्रीरामके द्वारा रावणका वध)

श्रीशिव उवाच

अथ ते राक्षसाः सर्वे द्वारेभ्यः क्रोधम् चिंडताः । निर्गत्य भिंदिपालैश्च खड्डैः शूलैः परश्वधैः ॥ १ ॥
कुन्तैः शरैः शतधनीभिः संक्रमैः शक्तिभिर्दृढम् । निजघ्नुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः ॥ २ ॥
राक्षसांश्च तदा जघ्नुर्वानरा जितकाशिनः । वृक्षग्रावैः पर्वतैश्च मुष्टिभिः करताढनैः ॥ ३ ॥
ते हयैश्च गजैश्चैव रथैः कांचनसभिभैः । रक्षोव्याघ्रा युयुधिरे नादयन्तो दिशो दश ॥ ४ ॥
एवं परस्परं चक्रुर्युद्धं वानरराक्षसाः । नलो जघान धूम्राक्षं वज्रदंष्ट्रं स मारुतिः ॥ ५ ॥
नरांतकं स तारेयः सुषेणस्तं महोदरम् । चतुर्थशावशेषेण निहतं राक्षसं बलम् ॥ ६ ॥
तदांगदाद्याश्रत्वारो महावाद्यमहोदरस्त्रैः । प्रणेम् राममागत्य जयधोषप्रपूरिताः ॥ ७ ॥
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादो यथा तदा । सर्पास्त्राद्याकुलं रामं चकार वंधुवानरैः ॥ ८ ॥
रामः सस्मार ताक्ष्यं स ताक्ष्यः सापं न्यवारयत् । ततः स्वस्थो ब्रह्मवरादंतर्धानं गतोऽसुरः ॥ ९ ॥
सर्वास्त्राकुशली व्योम्निं ब्रह्माख्वेण समन्ततः । ववर्ष शरजालानि ब्रह्माक्षं मानयंस्तदा ॥ १० ॥
क्षणं तूष्णीमुवासाथ रामः स वंधुवानरैः । ततः स्वस्थो रघुश्रेष्ठो ददर्श पतितं बलम् ॥ ११ ॥
मूर्छागतं ब्रह्मपाशैस्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् । चापमानय सौमित्रे ब्रह्माख्वेणासुरान् क्षणात् ॥ १२ ॥

द्वारपर महोदरको वस्त्रादिके दानसे तन्तुष्ट करके शीघ्र देनाके साथ भेज दिया । वे लोग भी रावणको नमस्कार करके युद्धभूमिपर गये ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ इस प्रकार राम-रावणकी सेनाएँ परस्पर युद्ध करनेके लिए भीषण गजंन करती हुई एक दूसरेके सामने जा डटीं ॥ २७६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायांरामरावणसेनासंयोगो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

शिवजो बोले—बादमें वे सब महाकाय तथा महाबली राक्षस बड़े क्रोधके साथ दरवाजोंसे निकल-निकल कर बर्छी, तलवार, त्रिशूल, भाला, बाण, तोप तथा शक्तियें लेकर बानरी सेनाको दृढ़ताके साथ मारने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ विजयी बानर भी वृक्ष, पत्थर, पर्वत, मुक्के तथा यप्पड़ोंसे राक्षसोंको पीटने लगे ॥ ३ ॥ उधर राक्षस भी दशों दिशाओंको गुञ्जाते हुए धोड़े, हाथी तथा सुवर्णसृष्टि रथोंपर आरुड़ होकर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार बानर और राक्षस आपसमें लड़ने लगे । नलने धूम्राक्षको और मारुतिने वज्रदंष्ट्रको मारा ॥ ५ ॥ तारासुत अङ्गदने नशान्तको मारा और सुषेणने महोदरको भार डाला । इस प्रकार राक्षसोंकी सेना चार भागोंमेंसे केवल एक भाग बाकी रही और सब मार दी गयी ॥ ६ ॥ तब अंगदादि चारों वीरोंने जयच्छनि करते हुए सोत्साह बाजे-गाजेके साथ रामके पास जाकर प्रणाम किया ॥ ७ ॥ अपने सैन्यको निहत देखकर मेघनादने सर्पास्त्रसे वार्धकर भाई लक्ष्मण तथा बानरों सहित रामको व्याकुल कर दिया ॥ ८ ॥ तब रामने गारुडास्त्रका स्मरण किया । उसने आकर उस सर्पास्त्रका निवारण किया । तब वह असुर मेघनाद ब्रह्माके वरके प्रतापसे अन्तर्धान हो गया और सभी शस्त्रास्त्रोंको चलानेमें कुशल इन्द्रजित अलक्षित होकर आकाशसे चारों तरफ ब्रह्मास्त्र द्वारा बाणोंकी वर्षा करने लगा । उस समय ब्रह्मास्त्रकी मर्यादा रखनेके लिये बन्धु तथा बानरों सहित राम क्षणभरके लिए चुप हो गये । तदनन्तर जब स्वस्थ होकर रामने निहारा तो अपनी सेनाको

भस्मीकरोमि तच्छ्रुत्वा लङ्घामिद्रजयो ययौ । विलपतौ स्वसान्निध्ये यत्र वायुजराक्षसौ ॥१३॥
 वरदानाङ्गाणस्तौ दृष्टा रामः स जीवितौ । तावृताच रघुश्रेष्ठो युवाभ्यां जांबवान् रणे ॥१४॥
 गत्वाऽस्ति जीवितश्चेद्विवाच्यस्तहिं गिरा मम। उपायं चितयस्वाद्य वानराणां सुजीवने ॥१५॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तौ विभीषणमारुती । निश्चाये तौ विचिन्वतौ जांबवंतं प्रजग्न्मतुः ॥१६॥
 उल्मृकहस्तौ तं दृष्टा प्रोचत् राघवेरितम् । जांबवानपि तां रामगिरं श्रुत्वाऽतिहर्षितः ॥१७॥
 निमीलिताक्षः प्रोवाच कौ युवां वायुजो रणे । चेदस्ति जीवितस्तहिं जीवयिष्यति वानरान् ॥१८॥
 तदा विभीषणः प्राह त्वया त्यक्त्वांगदादिकान्। पृच्छयतेऽद्य कथं वायुपुत्रस्य परमादरात् ॥१९॥
 तदा विभीषणं प्राह जांबवानृक्षसत्तमः । रुद्रावतारः संज्ञे वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥२०॥
 न ज्ञेयः कपिरेवात्र तस्मात् त्वं विलोक्य । तदाऽत्रवीजजांबवंतं नत्वा स वायुनन्दनः ॥२१॥
 यं त्वं पृच्छसि सोऽद्याहं जीवितोऽस्म्यद्य मारुतिः । विभीषणो द्वितीयोऽयं यस्त्वया परिभाषते ॥२२॥
 तदा स जांबवांस्तुष्टो मारुतिं वाक्यमव्रीत् । गत्वा क्षीरनिधिं वेगाद्व्रोणाद्रिं त्वं समानय ॥२३॥
 तथेत्युक्त्वा त्वरन् गत्वा गंधर्वगोऽपि तं नगम् । कामधेन्वा स्वोयधर्मनेत्रलेपात्प्रदशितम् ॥२४॥
 उत्पाद्य पुष्पवद्भूत्वाऽन्यामास कपिर्जवात् । पर्वतोऽद्ववल्लीनामवद्यायामृतोपमम् ॥२५॥
 सुगंधं जीवयिष्यति राक्षसाश्रेति शंकया । निहतान् राक्षसान्सर्वास्तदा ताक्ष्यं विभीषणौ ॥२६॥
 चिक्षिष्टुः सागरे तान् राघवस्याज्ञया क्षणात् । तदानीं तं गिरिं दृष्टा सुपेणः स भिपम्बरः ॥२७॥
 पर्वतोऽद्ववल्लीभिर्जीवयामास तान् कर्पीन् । ततः शाखामृगाः सर्वे समुत्स्युविंजृमिभताः ॥२८॥
 द्रोणाचलं यथास्थाने स्थापयामास मारुतिः । कुवेरार्पितदिव्यांभः प्रमृज्य नयनषु च ॥२९॥

ब्रह्मपाणसे मूँछित होकर जमीनपर पड़ी देखा । सो देखकर उन्होंने लक्षणसे कहा—हे सीमित्रे ! धनुष लाओ, मैं इन सब असुरोंको भस्म कर दूँगा । यह सुनकर मेघनाद लङ्घाको भाग गया । उस समय रामने अपने पास ही विलाप करते हुए तथा ब्रह्माके वरदानसे जीवित वायुपुत्र और विभीषणको देखकर उन दोनोंसे कहा—तुम लोग रणांगणमें जाववान्के पास जाओ और यदि वे जीवित हों तो उन्हें मेरा सन्देश सुनाते हुए कहो कि वानरोंके जीवित होनेका कोई उपाय हो सके तो सांचे ॥३-१५॥ रामका आज्ञा सुनकर मारुति तथा विभीषण अंगरात्रिके समय जाववान्को खोजने निकले ॥१६॥ दोनोंने हाथोंमें मशालें ले लीं । खोजते-खोजते जब जम्बवान् मिले तो उन्हें रामका सदेश सुना दिया । जांबवान् यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥१७॥ आँखोंको निमीलित किये हुए ही वे बाले कि तुम दोनों कौन हो ? यदि वायुपुत्र हनुमान् इस रणक्षेत्रमें जीवित हों तो वे सब वानरोंको जिला लेंगे ॥१८॥ तब विभीषणने कहा—हे जांबवान् ! तुमने अंगद आदि वीरोंको उड़ाकर बड़े आदरके साथ वायुपुत्रको ही, क्यों पूछा ? ॥१९॥ ऋक्षोंमें श्रेष्ठ जाववान्ने विभीषणको उत्तर दिया कि प्रतापी वायुपुत्र हनुमान् साक्षात् रुद्रके अंशसे उत्पन्न हुए हैं ॥२०॥ उनको केवल कपि ही न समझो । अब तुम उनका पता लगाओ । तब हनुमान्ने नमस्कार करके जांबवान्से कहा—॥२१॥ जिसको आप पूछ रहे हैं, वह मारुति जीवित खड़ा है । दूसरा जो आपसे बातें कर रहा है, वह विभीषण है ॥२२॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर जांबवान्ने मारुतिसे कहा—तुम क्षीरसागर जाकर शीघ्र द्रोणाचलको ले आओ ॥२३॥ ‘तथास्तु’ कहकर हनुमान् शीघ्र चल दिये और गन्धवौं द्वारा सुरक्षित तथा कामधेनुका दसोना लगे नेत्रोंसे दिखाई देते हुए उस पर्वतको उखाड़कर फूलकी तरह शीघ्र उठा ले आये । इधर इस शङ्कासे कि पर्वतोत्पन्न वल्लियोंकी अमृतोपम सुगन्धिसे राक्षस भी जो जायेंगे, गरुड तथा विभीषणने उन्हें रामकी आज्ञासे उठा-उठाकर समुद्रमें फेंक दिया । अब बंद्यवर सुपेणने द्रांणगिरिको देखकर पर्वतोत्पन्न बृद्धियोंसे उन मरे हुए वानरोंको जिलाना आरम्भ किया । सहसा वे सब वानर जैभाई ले लेकर खड़े होने लगे ॥२४-२५॥ तदनन्तर मारुति पुनः द्रोणाचलको दयास्थान रख आये और कुवेरके दिये हुए दिव्य जलको आँखोंमें लगाकर वे रणमें राम आदि अन्तर्हितोंको देखने लगे । उसी समय रावणने भी अतिनाद, प्रदृस्त,

अन्तहितानां गमाद्या इर्षनं प्रापुद्वाहवे । ततः संप्रेषयामास रावणः स्वीयमंत्रिणः ॥३०॥
 अतिनादः प्रहस्तश्च महानाददरीमुखाः । देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवांतकनरान्तकौ ॥३१॥
 सारणाद्या बलैरन्ये युयुधुर्वानरैः सह । तान्सर्वानिंगदाद्यास्ते हत्वा तस्युर्विजिताः ॥३२॥
 तदा कुम्भनिकुम्भां द्वौ कुम्भर्णसुनोच्चमां । रावणः प्रेषयामास युद्धार्थं तौ प्रजग्मतुः ॥३३॥
 तदा कुम्भो जम्बवता निहतश्च रणाजिरे । अंगदेन निकुम्भश्च हतः श्रुत्वा दशाननः ॥३४॥
 अतिकायं स्वीयपुत्रं प्रेषयामास संगरम् । अतिकायेन सौमित्रिः कृत्वा संगरमुखणम् ॥३५॥
 शरेण पातयामाम लङ्घायां तच्छरो महत् । तदा यथौ रावणः स स्वयं युद्धाय वेगतः ॥३६॥
 सुहृनिमत्रजन्युर्युक्तो वेष्टिः पुरवामिभिः । रणे विभीषण दृष्ट्वा कोपाच्छक्तिं मुमोच सः ॥३७॥
 पृष्ठे विभीषणं कृत्वा यवावग्रे न लक्षणः । हृदि सताडितः शक्त्या पपात भुवि लक्षण ॥३८॥
 लक्षणं नगरीं नेतुं तं यथौ स दशाननः । न चचाल भुजस्तस्य सौमित्रेः शेषरूपिणः ॥३९॥
 तं नेतुकामं हनुमान् हृदि मुष्ट्या व्यताढयत् । तेन मुष्टिप्रहारेण पपात रुधिरं वमन् ॥४०॥
 आनयामास सौमित्रिं मारुतिः कपिवाहनीम् । रथारुद्धो रावणोऽपि विव्याध मारुतिं शरैः ॥४१॥
 ततः क्रुद्धन् रामेण वाणेन हृदि ताडितः । साश्वध्वजं रथं दूतं राघवो धनुरोजसा ॥४२॥
 छत्रं पताकां तरसा चिच्छेद शितसायकं । अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किरीटं रविप्रभम् ॥४३॥
 ततस्तं व्याकुलं दृष्ट्वा रामो रावणमवृतीत् । गच्छाय लङ्घामाश्वस्तः श्वस्त्रं पश्य चलं मम ॥४४॥
 ततो लङ्घानतशिरा यथौ लङ्घां दशाननः । रामोऽपि लक्षणं दृष्ट्वा मूर्छित प्राह मारुतिम् ॥४५॥
 द्रोणाचलं समार्नाय जीवयेन तथा कपीन् । तथेति स यथौ वगात्तज्ञात्वा स दशाननः ॥४६॥
 प्रार्थ्यित्वा कालनेमि तद्विद्वनार्थं मचोदयत् । स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत् ॥४७॥
 तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः स्थितः । मारुतिश्वाश्रमं दृष्ट्वा जलं पातुं विवेश तम् ॥४८॥

महानाद, दर्शिमुख, देवशत्रु, निकुम्भ, देवान्तक तथा नरान्तक आदि मंत्रियोंको भेजा ॥३९-३१॥ सारणादि देख्योंने भी वहुन-सी सेना लेकर वानरोंके साथ युद्ध किया । अङ्गद आदि वानर उन सबको मारकर गर्जन करने लगे ॥३२॥ तब कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भ तथा निकुम्भको रावणने युद्धन् लिए भेजा ॥३३॥ नुमित्रापुत्र लक्षणने उनके साथ घोर युद्ध करके उनके सिरोंको बाणसे काटकर लङ्घामें फेंक दिया । तब रावण स्वयं लड़नेके लिए निकल पड़ा ॥३४-३६॥ उसके साथ मित्र सुहृद् तथा पुरवासी लोग भी गये । रावणने रणमें विभीषणको देखकर उसपर शक्तिका प्रहार किया ॥३७॥ यह देखकर लक्षणने विभीषणको पीछे कर लिया और स्वयं आगे लड़े हा गये । जिससे वह शक्ति लक्षणके हृदयमें लगी और वे धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥३८॥ उन्हें नगरमें उठा ले जानेके लिये दशानन आगे बढ़ा और उनको उठाना चाहा, पर शेषावतारस्वरूप लक्षणका एक हाथ भी रावणसे नहीं हिला ॥३९॥ उस समय अवसर देखका हनुमानने रावणकी छातीमें एक मुख का मारा । उस मुष्टिप्रहारसे रावणके युखसे रुधिर निकलने लगा और वह धरतीपर गिर पड़ा ॥४०॥ तदनन्तर मारुति लक्षणको कपिसेनामें उठा ले आय । तभी रावण रथगर सवार होकर मरुतिकी बाणोंसे बीघने लगा ॥४१॥ यह देखकर कुदू रामने रावणके हृदयमें बाण मारा और अश्व तथा ध्वजा सहित रथको, सारथीको, वनुषको, छत्रको तथा पताकाको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट निराया । अर्धचन्द्राकर बाणसे उन्होंने उसका सूर्यके समान तेजस्वी किरोट भी काट डाला ॥४२॥४३॥ पश्चात् रावणको व्याकुल देखकर रामने कहा—जा, लङ्घामें भाग जा और आश्वस्त होकर कल फिर मेरा बल देखना ॥४४॥ तब रावण नीचा मुख किये लङ्घामें चला गया । रामने लक्षणको मूर्छित देखकर मारुतिसे कहा—॥४५॥ पूर्ववत् द्रोणाचल लाकर लक्षणको जिलाओ । ‘तथास्तु’ कहकर हनुमान् चल पड़े । इस बातका पता लगनेपर दशाननने कालनेमिसे प्रार्थना करके उसको हनुमानके रास्तेमें दिघ्न डालनेके लिए भेजा । उसने जाकर हिमवान् पर्वतके पास एक तपो-वनकी रचना की ॥४६॥४७॥ वहाँ वहुतसे शिष्योंको साथ लेकर वह स्वयं मुनिवेष धारण करके बैठ गया ।

मुनिना मानितश्चापि जलकुम्भः प्रदर्शितः । मारुतिः प्राह त्रिसिंहे नैव देन भविष्यति ॥४९॥
 तं पुनः प्राह स मुनिस्तटाकं निकटस्थितम् । गच्छाक्षिणी पिधाय त्वं जलं पित्र यथासुवम् ॥५०॥
 आगच्छाशु पुनश्चात्र सुखं तिष्ठ ममान्तिकम् । जानामि ज्ञानदृष्ट्याऽहं लक्ष्मणश्चोत्थितस्त्विति ॥५१॥
 गृहाण मत्रान् मत्तस्त्वं यैश्च पश्यसि तं गिरिम् । गोपितं त्वद्य गधवैर्यं तं त्वं नेतुमिच्छसि ॥५२॥
 प्लवंगानां जीवनार्थं लङ्घायां वेगतः कपे । मत्तस्त्वं लब्धविद्यः सन् ददस्व गुरुदक्षिणाम् ॥५३॥
 तथेति मारुतिर्गत्वा कासारमपिवज्जलम् । पिधाय नेत्रे तावत्तमग्रमन्मकरी तदा ॥५४॥
 सोऽपि तां दारयामास धृत्वास्ये सा ममार ह । ततोऽन्तरिक्षे सा प्राह दिव्यरूपा तु मारुतिम् ॥५५॥
 पुराऽहं मुनिना स्पृश्या प्रार्थिता न रतिर्मया । दत्ता शस्त्राऽस्मिप त्वत्तो मे निष्कृतिस्तेन कीर्तिता ॥५६॥
 धान्यमालीति विरुद्धाताऽप्सराः पूर्वं भवांतरे । आश्रमे यस्त्वया दृष्टः कालनेमिर्महासुरः ॥५७॥
 रावणप्रेषितो मार्गे स्थितस्तं जहि वेगतः । तथेति मारुतिर्गत्वा मुनिं प्राह त्वरान्वितः ॥५८॥
 मुष्टि बद्ध्वा दृढां घोरां गृहाण गुरुदक्षिणाम् । इत्युक्त्वा ताढयामास हृदि त मुष्टिना तदा ॥५९॥
 पपात भुवि रक्तं स वमन् प्राणान् जहौ क्षणात् । ततः क्षीरानिधिं गत्वा जित्वा गंधर्वसत्तमान् ॥६०॥
 द्रोणाचलं गृहीत्वा स यावद्गच्छति मारुतिः । विहायसाऽतिवेगेन लङ्घां तावच्च वे पथि ॥६१॥
 भरतेन शरं मुक्त्वा पर्वतो भुवि पातितः । भरतं मारुतिर्दृष्टा रामोऽयमिति विहूलः ॥६२॥
 उवाच मधुरं वाक्यं कथमत्र समागतः । जितः किं रावणेन त्वं रणं त्यक्त्वा पलायितः ॥६३॥
 एव मुक्तोऽपि भरतः पुनस्तं मारुतिं वरम् । मत्वाऽयं राक्षसश्चेति संदधे निशितं शरम् ॥६४॥

मारुति रास्तेमें मुनिका आश्रम देखकर उसमें जल पीनेके लिए गये ॥ ४८ ॥ मुनिने मारुतिका सम्मान किया और जल पीनेके लिये उनको एक भरा घड़ा दिखाया । तब हनुमानने कहा कि इतनेसे मेरी तृप्ति नहीं होगी ॥ ४९ ॥ तब मुनिने उन्हें एक तालाब दिखाया और कहा कि वहाँ जाकर तुम अँखोंको बन्द करके आनन्दपूर्वक जल पी लो ॥ ५० ॥ बादमें आकर यहाँ मेरे पास शान्तिसे बैठा । मुझे ज्ञानदृष्टिसे पता लग गया है कि लक्ष्मण उठ खड़ा हुआ है । इसलिए अब चिन्ताकी कोई बात नहीं है ॥ ५१ ॥ दूसरी बात यह है कि मैं तुम्हें कुछ ऐसे मन्त्र बताऊंगा कि जिनसे तुम्हें गन्धवौं द्वारा रक्षित वह पर्वत दिखलाई दे जायगा, जिसको कि तुम ले जाना चाहते हो ॥ ५२ ॥ उसको लङ्घामे ले जाकर तुम बानरोंको शीघ्र जिला सकते हो । इस प्रकारकी विद्या मुझसे ग्रहण करनेके बाद तुम्हें मुझे गुरुदक्षिणा भी देनी होगी ॥ ५३ ॥ ‘वहूत अच्छा’ कहकर मारुतिने तालाबपर जाकर जल पिया, परन्तु नेत्र बन्द होनेके कारण उस समय एक मकरीने आकर उन्हें पकड़ लिया ॥ ५४ ॥ तब मारुतिने उसका मुँह पकड़कर चोर डाला । जिससे वह मकरी मर गयो । पश्चात् वह दिव्य रूप धारण करके आकाशमें जाकर मारुतिसे बालो—॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें एक मुनिने मुझको दुराचार करनेके लिए कहा, परन्तु जब मैंने उन्हें रति नहीं दी । तब उन्होंने मुझे मकरी होनेका शाप देकर कहा कि तेरा निस्तार मारुतिसे होगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्ममें मैं धान्यमाली नामको विरुद्धात अप्सरा थी । यहाँ आश्रममें जो एक मुनि बैठा हुआ आपने देखा है, वह कालनेमि नामका महान् राक्षस है ॥ ५७ ॥ रावणने उसको आपके मार्गमें विघ्न डालनेके लिए भेजा है । आप शीघ्र जाकर उसको मार डालें । ‘अच्छी बात है’ कहकर मारुति तुरन्त वहाँ पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन्होंने हृष्ट मुक्का बाँधकर ‘यह लो अपनी गुरुदक्षिणा’ ऐसा कहते हुए उसकी छातीमें जोरसे मुक्का मारा ॥ ५९ ॥ उस प्रहारसे वह जमीनार लुढ़क पड़ा । उसके मूँहसे रक्त बहने लगा और क्षणभरमें वह मर गया । तदनन्तर क्षीरसागर जा तथा गन्धवौंको जीतकर द्रोणाचलको लिये हनुमान् आकाशमार्गसे जा रहे थे कि रास्तेमें भरतने वाण मारकर उनके हाथसे वह पर्वत गिरा दिया । हनुमान् भरतको देख उन्हें ध्रमवश राम समझकर घवरा गये ॥ ६०-६२ ॥ उन्होंने मधुर वाणीमें कहा—है राम ! आप यहाँ कहाँसे और क्यों आ गये ? क्या आपको रावणने जीत लिया ? अथवा रण छोड़कर आप यहाँ भाग आये हैं ॥ ६३ ॥ मारुतिके इतना कहनेपर भी भरतने उन्हें राक्षस समझकर मारनेके लिए एक

वाणहस्तं तमालोकप भुभुकारं विधाय सः । नैवायं राघवश्चेति मत्वा ध्यात्वा क्षणं हृदि ॥६७॥
 भरतं मारुतिः प्राह रामदूतोऽद्य मे वलय् । पश्यसि त्वं तद्विरं तां श्रुत्वा तं भरतोऽब्रवीत् ॥६८॥
 वंधुना मम रामेण कुतो वद समागमः । तत्र जातं सविस्तारं दण्डकारण्यवासिना ॥६९॥
 ततस्तं मारुतिर्वृत्तं संश्राव्य राघवस्य तु । भरतेनेषुणा दत्तं गिरिं धृत्वा ययौ पुनः ॥७०॥
 लङ्कां गत्वा स वल्लीभिर्जीवयामास लक्षणम् । वानरांश्च भरतस्य रामं वृत्तं न्यवेदत् ॥७१॥
 पुतर्नीत्वा यथास्थानं तं संस्थाप्य मदाचलम् । लक्ष्मणो जीवितश्चेति संश्राव्य भरतं पुनः ॥७०॥
 ययावाकाशमार्गेण लङ्कां गन्तुं मनो दधे । नृपानाकारयामास साकेतं भरतोऽपि सः ॥७१॥
 साहाय्यार्थं राघवस्य लङ्कां गन्तुं मनो दधे । ततः सभायामासीनो रावणः प्राह राक्षसान् ॥७२॥
 गच्छधर्वं त्वरितं दूताः पाताले तौ भगवत्तौ । ऐरावणो महानुग्रहस्तथा मैरावणो महान् ॥७३॥
 तयोर्मे कथनीयं हि युद्धवृत्तं वयस्ययोः । तथेति ते गता दूतास्तौ तद्वृत्तं न्यवेदयन् ॥७४॥
 तौ श्रुत्वा विहृलात्मानी लङ्कायां समवस्थितौ । रामं च लक्षणं हन्तुं निशायां तौ समागतौ ॥७५॥
 ददशेतुस्तौ पुच्छस्य परिघं हि हनूमतः । कपीनां तत्र सेनायास्तदाकाशान्महावलौ ॥७६॥
 निषेततुः कपोनां तु सेनायां रामलक्ष्मणौ । किंचिद्विनिद्रितौ इष्टा शिलायां संगरथ्रमात् ॥७७॥
 निन्यतुस्तौ शिलां शीघ्रं पातालं निजमन्दिरम् । एतस्मिन्नंतरेऽदृष्ट्वा सेनायां रामलक्ष्मणौ ॥७८॥
 मारुतिः पादमार्गेण तयोः पातालमाययौ । एतस्मिन्नंतरे मार्गे लङ्कादक्षिणदिक्कटे ॥७९॥
 निकुंभिलायां स्वपतिं कपोती प्राह गुच्छिणी । नाथाद्य नरमांसं मे भोक्तुं स्पृहयते मनः ॥८०॥
 स प्राहाद्य समानीतौ वर्तेते रामलक्ष्मणौ । रसातलं हि दैत्याभ्यां देव्यग्रेतौ वधिष्यतः ॥८१॥
 अथ शस्तद्वधे जाते मांसमानीय तेऽप्येते । तद्वाक्यं मारुतिः श्रुत्वा किंचित्तोषयुतो ययौ ॥८२॥

और तेज बाण घनुषपर चढ़ाया ॥ ६४ ॥ उनको हाथमें बाण लिये देख भाषति भू-भू करके मनमें यह सोचकर कि ये राम नहीं है ॥ ६५ ॥ भरतसे बोले कि 'मैं रामका दूत हूँ । आज तुम देख लो ।' उनका यह वाक्य सुनकर भरतने कहा - ॥ ६६ ॥ दण्डकारण्यवासी मेरे भाई रामके साथ तुम्हारा समागम कहाँ हुआ ? सो विस्तारपूर्वक कहो । तब मारुति भरतको सब हाल सुनाकर भरत द्वारा दिये हुए उस पर्वतको पुनः उठाकर चल पड़े ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ लङ्कामें जा तथा जड़ियोंसे लक्षण तथा वानरोंको जीवित करके उन्होंने रामको भरतका समाचार कह सुनाया ॥ ६९ ॥ फिर वहाँसे ले जाकर द्रोणाचलको उसके स्थानपर रख आये और भरतको लक्ष्मणके जीवित हो उठनेका शुभ समाचार भी सुना दिया ॥ ७० ॥ इतना काम करके हनुमान् पुनः बड़ी तेजीके साथ लङ्कामें लौट आये । उधर भरतने अपोध्यामें सब राजाओंको एकत्र करके लङ्कामें जाकर रामको सहायता देनेका विचार किया । तभी सभामें वैके रावणने भी राक्षसोंको बुलाकर कहा-॥ ७१ ॥ ७२ ॥ हे दूतों ! तुम लोग शीघ्र पातालमें जाकर वहाँ रहनेवाले महान् उग्र ऐरावण तथा महान् मैरावण इन दोनों मेरे मित्रोंको यहाँके युद्धका समाचार सुनाओ । 'तथाऽस्तु' कहकर वे दूत वहाँ गये और उन दोनोंको सब वृत्तांत निवेदन कर दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ यह सुनकर वे दोनों बड़ी आतुरताके साथ लङ्कामें आ पहुँचे और रात्रिके समय राम-लक्ष्मणका हृण करनेके लिये रामके शिविरमें गये ॥ ७५ ॥ वहाँ उन दोनोंने वानरोंकी सेनाके चारों ओर हनुमान्को पूँछका बना हुआ दुर्गम परिघ देखा । तब महावलान् उन दैत्योंने आकाश-मार्गसे कूदकर कपियोंकी सेनामें प्रवेश किया । वहाँ राम-लक्ष्मणको एक शिलापर युद्धधर्मसे थककर सोते हुए देख उन दोनोंने उस शिला समेत राम-लक्ष्मणको उठा लिया और पातालमें ले गये । रास्तेमें लङ्काके दक्षिण किनारे निकुम्भिला गुफामें स्थित एक गर्भवती कपोतिका अपने पतिसे कह रही थी कि हे नाथ ! आज मुझे नरमांस खानेकी इच्छा हो रही है ॥ ७६-७० ॥ पतिसे कहा-आज दो दैत्य राम-लक्ष्मणको रसातलमें ले आये हैं । वे दोनों देवीके समुख मारे जायेंगे ॥ ८१ ॥ कल उनका वध हो जानेपर मैं